आप्तवाणी

श्रेणी - १

8 7

दादा भगवान कथित

आप्तवाणी

श्रेणी-१

मूल गुजराती संकलन : डॉ. नीरूबहन अमीन

हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

6 5

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो,

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलम् १

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय २

ॐ नमः शिवाय ३

जय सच्चिदानंद

समर्पण

इस विकराल कलिकाल के संसार सागर में उठे अशांति के
झंझावात में जागृतिक मानव-मन नैया को किनारे लगाने हेतु,
मनशांति - बंदरगाह की खोज कर रहे जन सामान्य के लिए,
संसार कल्याण की भावना से प्रेरित,
वात्सल्य मूर्ति ज्ञानीपुरुष 'दादा भगवान' के श्री मुख से
प्रवाहित हुई यह ज्ञान सरिता रूपी आप्तवाणी,
निश्चय ही अलौकिक वरदान सिद्ध होगी।
तूफान में फँसी उनकी जीवन नैया को यह दादाई कुतुबनुमा
सही मंजिल का दिशा दर्शन करवाएगा, इस भावना के साथ
आप्तवाणी श्रृंखला की यह प्रथम कड़ी
दादा जी के आश्रित बने मुक्त स्वजनों द्वारा
विनम्र भाव से मुमुक्षु जनों को सादर समर्पित।

आप्त विज्ञापन

हे सुज्ञजन ! तेरा ही 'स्वरूप' आज मैं तेरे कर कमलों में आ रहा हूँ। कृपा करके उसका परम विनय करना ताकि तू अपने आप, अपने ही 'स्व' के परम विनय में रहकर स्व-सुखवाली, पराधीन नहीं ऐसी, स्वतंत्र आप्तता का अनुभव करेगा।

यही है सनातन आप्तता, अलौकिक पुरुष की आप्तवाणी की।

यही है सनातन धर्म, अलौकिक आप्तता का।

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

१. ज्ञानी पुरुष की पहचान
२. सर्व दु:खों से मुक्ति
३. कर्म का सिद्धांत
४. आत्मबोध
५. मैं कौन हूँ ?
६. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
७. भुगते उसी की भूल
८. एडजस्ट एवरीव्हेयर
९. टकराव टालिए
१०. हुआ सो न्याय
११. चिंता
१२. क्रोध
१३. प्रतिक्रमण
१४. दादा भगवान कौन ?
१५. पैसों का व्यवहार
१६. अंत:करण का स्वरूप
१७. जगत कर्ता कौन ?
१८. त्रिमंत्र
१९. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
२०. प्रेम
२१. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
२२. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य
२३. दान
२४. मानव धर्म
२५. सेवा-परोपकार
२६. मृत्यु समय, पहले और पश्चात
२७. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
२८. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
२९. क्लेश रहित जीवन
३०. गुरु-शिष्य
३१. अहिंसा
३२. सत्य-असत्य के रहस्य
३३. चमत्कार
३४. पाप-पुण्य
३५. वाणी, व्यवहार में...
३६. कर्म का विज्ञान
३७. आप्तवाणी - १
३८. आप्तवाणी - ३
३९. आप्तवाणी - ४
४०. आप्तवाणी - ५
४१. आप्तवाणी - ८

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।**

★ **दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।**

‘दादा भगवान’ कौन ?

जून १९५८ की एक संध्या का करीब छह बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन। प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रगट हुए । और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घण्टे में उनको विश्व दर्शन हुआ। ‘मैं कौन ? भगवान कौन ? जगत कौन चलाता है ? कर्म क्या ? मुक्ति क्या ?’ इत्यादि जगत के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सन्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करने वाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से । उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात बिना क्रम के, और क्रम अर्थात सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात लिफ्ट मार्ग। शॉर्ट कट!

आपश्री स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन ?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि “यह दिखाई देनेवाले दादा भगवान नहीं हैं, वे तो ‘ए.एम.पटेल’ हैं। हम ज्ञानी पुरुष हैं, और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं। सभी में हैं। आप में अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।” ‘व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं’, इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया।

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय के बाद नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थीं। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कई जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवाते थे, जो नीरूमाँ के देहविलय के पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हजारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

'मैं तो कुछ लोगों को अपने हाथों सिद्धि प्रदान करनेवाला हूँ। पीछे अनुगामी चाहिए कि नहीं चाहिए? पीछे लोगों को मार्ग तो चाहिए न?''

– दादाश्री

परम पूज्य दादाश्री गाँव-गाँव, देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षु जनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे। आपश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरूबहन अमीन (नीरूमाँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थीं। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरूमाँ वैसे ही मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी। पूज्य दीपकभाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। नीरूमाँ की उपस्थिति में ही उनके आशीर्वाद से पूज्य दीपकभाई देश-विदेशो में कईं जगहों पर जाकर मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान करवा रहे थे, जो नीरूमाँ के देहविलय पश्चात् आज भी जारी है। इस आत्मज्ञानप्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, जिम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

ग्रंथ में मुद्रित वाणी मोक्षार्थी को मार्गदर्शन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी, लेकिन मोक्षप्राप्ति हेतु आत्मज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी है। अक्रम मार्ग के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग आज भी खुला है। जैसे प्रज्वलित दीपक ही दूसरा दीपक प्रज्वलित कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आत्मज्ञानी से आत्मज्ञान प्राप्त कर के ही स्वयं का आत्मा जागृत हो सकता है।

निवेदन

आत्मविज्ञानी श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, जिन्हें लोग 'दादा भगवान' के नाम से भी जानते हैं, उनके श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहार ज्ञान संबंधी जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता हैं।

ज्ञानीपुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान संबंधी विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस आप्तवाणी में हुआ है, जो नये पाठकों के लिए वरदानरूप साबित होगी।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, परंतु यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में कईं जगहों पर कोष्ठक में दर्शाये गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जब कि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिये गए हैं।

अनुवाद संबंधी कमियों के लिए आप से क्षमाप्रार्थी हैं।

आप्तवाणियों के लिए
परम पूज्य दादाश्री की भावना

'ये आप्तवाणियाँ एक से आठ छप गई हैं। दूसरी चौदह तक तैयार होनेवाली हैं, चौदह भाग। ये आप्तवाणियाँ हिन्दी में छप जाएँ तो सारे हिन्दुस्तान में फैल जाएँगी।'

- दादाश्री

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) के श्रीमुख से वर्षों पहले निकली यह भावना अब फलित हो रही है।

आप्तवाणी-१ का हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। भविष्य में और भी आप्तवाणियों तथा ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध होगा, इसी भावना के साथ जय सच्चिदानंद।

पाठकों से...

- ❖ 'आप्तवाणी' में मुद्रित पाठ्यसामग्री मूलतः गुजराती 'आप्तवाणी' श्रेणी-१ का हिन्दी अनुवाद है।
- ❖ 'आप्तवाणी' में 'आत्मा' शब्द का उपयोग संस्कृत और गुजराती भाषा की तरह पुल्लिंग में किया गया है।
- ❖ जहाँ-जहाँ 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग किया गया है, वहाँ-वहाँ पाठक स्वयं का नाम समझकर पठन करें।
- ❖ 'आप्तवाणी' में अगर कोई बात आप समझ न पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें।

संपादकीय

सर्वज्ञ 'दादा भगवान' की प्रकट सरस्वती स्वरूप, वाणी का यहाँ संकलन किया गया है।

जिनके सुचरणों में काल, कर्म और माया स्थिर हो जाएँ, ऐसे परमात्मा स्वरूप ज्ञानी-पुरुष की हृदयस्पर्शी प्रकट वाणी ने कई लोगों को दिव्य चक्षु प्रदान किए हैं। आशा है कि जो कोई इस महाग्रंथ का, 'सत्य जानने की कामना' से पठन करेगा उसे अवश्य ही दिव्यचक्षु की प्राप्ति हो, ऐसा है, बशर्त उसके अंदर ऐसी दृढ़ भावना हो कि मुझे केवल 'परम सत्य' ही जानना है, और कुछ नहीं जानना। यदि दूसरा कुछ जानने की ज़रा सी भी गुप्त आकांक्षा रही तो उसका कारण मताग्रह ही होगा। 'परम सत्य' जानने की एकमेव तमन्ना और मताग्रह ये दोनों विरोधाभास है। आग्रह और मत मतांतर के द्वारा कभी मुक्ति या मोक्ष संभव नहीं है। पूर्ण रूप से निराग्रही, निष्पक्षपात होने पर ही कार्य सफल होगा। मोक्ष तो ज्ञानीपुरुष के चरणों में ही है। ऐसे मोक्षदाता ज्ञानीपुरुष की यदि पहचान हो जाए, उनसे तार जुड़ जाए तो नकद मोक्ष हाथों में आ जाए। ऐसा नक़द मोक्ष अनेक लोगों ने प्राप्त किया है और वह भी केवल एक ही घंटे में! मानने में नहीं आए, पहले कभी सुनने में नहीं आई हो ऐसी अभूतपूर्व बात है यह, फिर भी अनुभव की गई हक़ीक़त है!

मोक्ष अति-अति सुलभ है, पर ज्ञानीपुरुष की भेंट होना अति-अति दुर्लभ है। भेंट होने पर उनकी पहचान होना, तो अति-अति सौ बार दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ है।

परम सत्य जानने की कामना रखनेवाले के लिए ज्ञानीपुरुष का वर्णन, उनकी पहचान हेतु बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। ज्ञानीपुरुष की पहचान कैसे करें? उन्हें कैसे पहचानें?

ज्ञानीपुरुष की पहचान केवल उनकी वीतराग वाणी के द्वारा संभव है। अन्य कोई साधन इस काल में नहीं है। प्रचीन काल के लोग आध्यात्मिक रूप से इतने विकसित थे कि ज्ञानी की आँखें देखकर ही

उनकी वीतरागता पहचान लेते थे। ज्ञानीपुरुष एक क्षण के लिए भी वीतरागता से परे नहीं होते हैं।

ज्ञानीपुरुष की पहचान उनके गुणों से ही हो सकती है, पर आम आदमी के लिए उनके गुणों को पहचानना कठिन कार्य है।

ज्ञानीपुरुष में १००८ गुण होते हैं, जिनमें प्रधान चार गुण ऐसे होते हैं, जो अन्य किसी को प्राप्त नहीं होते।

१) ज्ञानी में सूर्य जैसा प्रताप होता है। अत्यंत प्रतापी पुरुष होते हैं। प्रताप उनकी आँखों में ही झलकता है। यह प्रताप तो वे जब दिखाएँ तब ही पता चलता है।

२) उनमें चंद्रमा जैसी सौम्यता होती है। उनकी सौम्यता ऐसी होती है कि उसकी ठंडक के कारण किसी को भी ज्ञानी के पास से हटने को मन ही नहीं करता। उनकी यह सौम्यता तो सूर्य के ताप को भी ठंडा करने की क्षमता रखती है। कैसा भी आगबबूला हुआ मनुष्य आए, लेकिन उनकी आँखों की सौम्यता देखकर बर्फ की तरह ठंडा हो जाता है। प्रताप और सौम्यता दोनों एक साथ केवल ज्ञानी में ही देखने को मिलते हैं। अन्यथा कुछ लोगों में अकेला प्रताप होता है, तो सौम्यता नहीं होती और सौम्यता होती है, तो प्रताप नहीं होता। पूर्ण ज्ञानी की एक आँख में प्रताप और दूसरी आँख में सौम्यता होती है।

३) सागर जैसी गंभीरता होती है। जिस किसी ने जो कुछ दिया उसे अपने में समा लेते हैं और ऊपर से आशीर्वाद देते हैं।

४) उनकी स्थिरता, अडिगता तो मेरु पर्वत जैसी होती है। एक भी बाह्य संयोग उनकी आंतरिक स्थिरता को हिला नहीं सकता। ऐसी अडिगता और संगी चेतना में बड़ा अंतर है। यदि कोई दीये की ज्योत पर, बिना हिलाए, हाथ रखता है तो वह स्थिरता नहीं कहलाती। वह तो हठाग्रह है। अहंकार है। ज्ञानी संपूर्ण रूप से निर्अहंकारी होते हैं, सहज होते हैं। देह के असर से उन्हें कोई लेना-देना नहीं होता। ज्ञानी तो, जहाँ

जलने की संभावना हो वहाँ प्रथम तो हाथ ही नहीं डालते और भूल से यदि डाल दिया तो तुरंत हटा लेते हैं। देह भी सहज स्वभावी होती है। बाकी अंदरूनी ज्ञान स्थिरता ग़ज़ब की होती है। किसी भी संयोग में अंदर का एक भी परमाणु विचलित नहीं हो, उसे असली स्थिरता कहते हैं। अंदर में ज़रा भी दख़ल नहीं हो, ज़रा सी जलन नहीं हो उसी का नाम स्थिरता। बाहरी जलन तो देह के स्वभाविक गुणों का परिणाम होती है। उसका आंतररिक परिणिती से कोई संबंध नहीं है।

ज्ञानी में अपार करुणा होती है, करुणा के सागर होते हैं। उनमें दया का अंश तक नहीं होता। दया तो अहंकारी गुण, द्वंद्वगुण है। दया के प्रतिपक्ष में निर्दयता कहीं किसी कोने में पड़ी ही होती है। वह तो निकले तब पता चलता है। ज्ञानी द्वंद्वातीत होते हैं। ज्ञानी की आँखों में से निरंतर अमृतवर्षा होती रहती है। इस पेट्रोल की अग्नि में धूँ-धूँ करके जल रहे संसार के सारे जीवों को कैसे स्थायी ठंडक पहुचाऊँ यही भावना उनके दिल में निरंतर बहा करती है।

ज्ञानी में शिशु समान निर्दोषता होती है। शिशु में नासमझी की निर्दोषता होती है, जबकि ज्ञानी संपूर्ण समझदारी के शिखर पर रहकर भी निर्दोष होते हैं। वे खुद, दृष्टि निर्दोष करके, स्वयं निर्दोष हुए होते हैं और सारे संसार को निर्दोष ही देखते हैं। आड़ापन तो नाममात्र को नहीं होता, ज्ञानी में। आड़ापन, अहंकार का प्रत्यक्ष गुण है। मोक्ष की गली बहुत संकड़ी है। उसमें आड़े रहकर जा पाना संभव नहीं है। सीधा होकर चलने पर ही उस पार जा सकें, ऐसा है। आड़ापन तो मोक्षमार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। ज्ञानी की सरलता तो संसार की सभी ऊँचाईयों को छूकर ऊपर उठी हुई होती है। संपूर्ण निर्अहंकारी पद पर विराजमान होने के कारण जैसा कहें वे वैसा करने को तैयार होते हैं। कोई कहे, 'इस कुर्सी से उतर जाइए।' तो वे कहेंगे, 'चल भैया ऐसा करता हूँ।' कोई चाहे कैसी भी शरारत करे, पर ज्ञानी उसका प्रतिभाव नहीं देते। ज्ञानी के साथ कोई शरारत करे, तब ही पता चले कि उनमें कितनी वीतरागता है! शरारत करने पर नाग की तरह फन फैलाए, तो समझना कि यह ज्ञानी नहीं हो सकते।

ज्ञानीपुरुष में आग्रह का एक परमाणु भी नहीं होता। वे संपूर्ण निराग्रही होते हैं। आग्रह तो विग्रह है और निराग्रह से मोक्ष है। भगवान ने किसी भी बात का आग्रह रखने को मना किया है। केवल मोक्ष हेतु ही ज्ञानीपुरुष का आग्रह रखना, क्योंकि उनके चरणों में ही मोक्ष है। ज्ञानी मिलें और उनकी कृपादृष्टि प्राप्त हो जाए, तो सहज रूप से मोक्ष हाथों में आ जाए ऐसा है।

ज्ञानी का प्रेम, शुद्ध प्रेम है और वही परमार्थ प्रेम का अलौकिक झरना होता है। वह प्रेम-झरना सारे संसार की अग्नि शांत करता है।

सब से बड़ी बात तो यह है कि ज्ञानीपुरुष पूर्णतया निष्पक्ष होते हैं। पक्ष लेनेवाले तो मतांध कहलाते हैं। मतांध कभी सत्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। वह तो जब पूर्ण रूप से निष्पक्षता उत्पन्न हो, तभी सर्वज्ञ पद की प्राप्ति होती है। अरे! ज्ञानी तो अपने मन-वचन और काया का भी पक्ष नहीं लेते, तभी तो उन्हें सर्वज्ञ पद प्राप्त होता है। यदि एक भी पक्ष की बात रहे, तो वे एक पक्षीय कहलाएँगे, सर्वज्ञ नहीं कहलाएँगे। ज्ञानीपुरुष की सभा में तो क्रिश्चियन, मुस्लिम, वैष्णव, जैन, स्वामीनारायण, पारसी, खोजा आदि सभी अभेद भाव से बैठते हैं और हर एक को ज्ञानीपुरुष अपने धर्म के आप्त पुरुष प्रतीत होते हैं। एक अज्ञानी के लाख मत होते हैं और लाख ज्ञानियों का एक ही मत होता है।

ज्ञानी एक ओर सर्वज्ञ होते हैं, तो दूसरी ओर अबुध भी होते हैं, तनिक भी बुद्धि नहीं होती। बुद्धि प्रकाश पूर्णरूप से अस्त हो, तब सर्वज्ञ पद बाजे गाजे के साथ पुष्पमाला लेकर सामने से प्रकट होता है। ऐसा नियम ही है कि जो अबुध होता है वही सर्वज्ञ होता है।

ज्ञानी की वाणी, वर्तन और विनय मनोहारी होते हैं। उनकी वाणी, वर्तन और विनय तो कहीं देखने में नहीं आएँ ऐसे अनुपम होते हैं। संपूर्ण स्यादवाद वाणी कि जिससे किसी भी जीव के दृष्टिबिंदु को ज़रा सी भी ठेस न लगे ऐसी होती है। उनके वचन हृदय में उतर जाते हैं और योग्य समय (ज़रूरत हो तब) पर वापस प्रतिबोध के रूप में प्रकट होता है।

ज्ञानी द्वारा बोया गया बोध बीज ठेठ मोक्ष तक ले जाता है। वह कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। ज्ञानी का वचनबल तो ग़ज़ब का होता है।

ज्ञानीपुरुष कौन कि जिन्हें संसार में जानने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहा है। पुस्तकें पढ़ना या किसी भी श्रेणी में उत्तीर्ण होना शेष नहीं रहा है। उन्हें माला नहीं फेरनी पड़ती, कुछ भी करने को या जानने को बाकी नहीं है। वे तो सर्वज्ञ होते हैं और संसार में मुक्त मन से विचरते हैं।

ज्ञानीपुरुष की दशा अटपटी होती है। आम आदमी को उसका अंदाजा नहीं होता। ज्ञानीपुरुष को आश्रम का श्रम नहीं होता। उनकी न ध्वजा, न पंथ, न बाड़ा, न कोई बोर्ड होता है, न तो भगवा, न ही श्वेत वस्त्र होते हैं, वे सीधे-सादे भेष में घूमते हैं। फिर सामान्य जीव उन्हें कैसे पहचान पाएँ? फिर भी उनकी पहचान में भूल-चूक नहीं हो, इसलिए शास्त्र कहते हैं कि ज्ञानीपुरुष तो वही हैं कि जो निशदिन आत्मा के उपयोग में ही रहते हैं, उनकी वाणी अनुभव गम्य होती है। उन्हें कोई अतरंग स्पृहा नहीं होती, गर्व या गारवता (सांसारिक सुखों में डूबे रहना) नहीं होती। संसार की किसी चीज़ के वे भिखारी नहीं होते। मान, विषय, लक्ष्मी या शिष्य के भी भिखारी नहीं होते हैं। संपूर्णतया अयाचक पद की प्राप्ति के बाद ही ज्ञान-प्रकाश प्रकट होता है। जो पूर्णरूप से तरण तारणहार हुए हों, वे ही दूसरों को तारते हैं।

ज्ञानीपुरुष में तो कई उच्च सांयोगिक प्रमाण एकत्र हुए होते हैं, उच्च नामकर्म होता है, यशकर्म होता है। कुछ किए बगैर ही कार्य सिद्धि का यश अनायास ही उन्हें मिल जाता है। उनकी वाणी मनोहारी होती है। लोकपूज्य पद होता है और ऐसे तो अनेकों गुण हों, तब ज्ञानीपुरुष प्रकट होते हैं।

ज्ञानीपुरुष को पुस्तक नहीं पढ़नी होती, माला नहीं फेरनी पड़ती, वहाँ पर भक्त और भगवान का भेद नहीं होता। भगवान शब्द तो विशेषण है और जिन्हें भगवत् गुणों की प्राप्ति होती है, उनके लिए भगवान शब्द विशेषण के रूप में प्रयोग होता है।

जब तक भूल होती है, तब तक सिर पर भगवान होता है। भूल रहित हों, तो कोई भगवान भी ऊपरी नहीं। ज्ञानीपुरुष में एक भी भूल नहीं होती, इसलिए न तो कोई उनका ऊपरी होता है और न ही कोई अन्डरहैन्ड। खुद संपूर्ण स्वतंत्र होते हैं।

ज्ञानी का प्रत्येक कर्म दिव्यकर्म होता है। एक भी कर्म कहीं भी बंधनकर्ता नहीं होता। संसार के लौकिक कर्म अपने बीज डालकर जाते हैं जबकि ज्ञानी के कर्म मुक्ति देकर जाते हैं। अरे! वे तो मुक्त पुरुष ही होते हैं, इतना ही नहीं पर अनेकों को मुक्ति प्रदान करने का सामर्थ्य रखते हैं।

ज्ञानी निर्ग्रंथ होते हैं। सारी ग्रंथियों का छेदन हो गया होता है। ज्ञानीपुरुष को त्यागात्याग संभव नहीं है। यह बात खुद भगवान ने ही प्रकट की है। ज्ञानी में नवीनता नहीं होती और जिस दशा में ज्ञान प्रकट हुआ हो वही दशा हमेशा के लिए होती है। इसलिए ही उनकी दशा अटपटी होती है। लोग त्याग के आधार पर ज्ञानी खोजने निकलें, तो पहचान कैसे होगी?

ज्ञानीपुरुष के तीन गुण यदि कोई सीख ले, तो उसका काम बन जाए और मुक्ति पा जाए। वे तीन गुण हैं, कोम्प्रेसिबल, फ्लेक्सिबल और टेन्साइल।

कोम्प्रेसिबल यानी संकोचनशील, चाहे जितना दबाव आए, पर वे उसे सहन करने की क्षमता रखते हैं और तुरंत यथास्थित हो जाते हैं। फ्लेक्सिबल यानी जैसे मोड़ें वैसे मुड़ जाते हैं, पर कभी भी टूटते नहीं हैं! और टेन्साइल यानी चाहे जितना भी तनाव हो झेल सकते हैं!

इन तीन गुणों के कारण संसार व्यवहार में कहीं कोई मुश्किल नहीं आती और बिना किसी अंतराय के मोक्ष में पहुँचा जा सकता है।

ज्ञानीपुरुष गुरुतम-लघुत्तम होते हैं। ज्ञानी को यदि कोई गधा कहे, तो वे कहेंगे, 'उससे भी लघु हूँ भैया, लघुत्तम हूँ। तू पहुँच नहीं पाए उतना

लघुतम हूँ।' और यदि कोई ज्ञानीपुरुष को आचार्य कहे, तो उसे कहेंगे, 'भैया, तू यदि उससे भी अधिक की प्राप्ति चाहता है, तो उससे भी ऊपर के पद में हैं, हम भगवान हैं।' जो जैसा पाना चाहे, वैसा समझे, तो उसका काम हो जाए। आत्मा स्वयं अगुरु-लघु स्वभाव का है।

संसार में 'आप्तपुरुष' केवल ज्ञानीपुरुष ही कहलाते हैं। आप्त यानी हर तरह से विश्वसनीय। सांसारिक बातों के लिए ही नहीं पर मोक्ष प्राप्ति हेतु भी अंत तक विश्वसनीय होते हैं। जब तक खुद को आत्मा का भान नहीं हुआ है, आत्मा की पहचान नहीं हुई, तब तक ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है। ज्ञानीपुरुष मूर्तिमान मोक्ष स्वरूप होते हैं। उन्हें देखकर अपना आत्मा प्रकट करना होता है। ज्ञानीपुरुष खुद पारसमणि कहलाते हैं और अज्ञानी तो लोहा है, जो उन्हें छूते ही सोना बन जाता है। पर यदि वे बीच में अंतरपट (पर्दा) नहीं रखें तो। ज्ञानीपुरुष अनंत बोधकला, अनंत ज्ञानकला और अनंत प्रज्ञाकला के स्वामी होते हैं, जिसे जो चाहिए वह ले जाओ और अपना काम निकाल लो।

आत्मज्ञान हेतु ज्ञानीपुरुष के पास जाना ही होगा। बिना जानकार के तो कोई साधारण चीज़ भी नहीं मिलती है, इसलिए निर्विकल्प समाधिस्थ ऐसे ज्ञानीपुरुष के पास जाना ही पड़ता है। ज्ञानीपुरुष 'शुद्ध चैतन्य' को हाथों में ही रख देते हैं। ज्ञानीपुरुष चाहें सो करें, पर फिर भी वे निमित्तभाव में ही रहते हैं। किसी भी वस्तु के कर्ता ज्ञानी नहीं होते हैं।

प्रत्येक शास्त्र अंत में तो यह कहकर रूक जाता है कि तुझे प्रकट आत्मा की प्राप्ति करनी है, तो तू ज्ञानी की शरण ले। प्रकट दीया ही दूसरा दीये प्रज्वलित कर सकता है, इसलिए 'गो टु ज्ञानी', क्योंकि 'ज्ञानी' सदेह आत्म स्वरूप हुए होते हैं अर्थात् तरण तारणहार होते हैं।

ज्ञानी निरंतर वर्तमान में ही विचरते हैं, भूत या भविष्यकाल में नहीं होते। निरंतर वर्तमान में ही बरतते हैं। उनकी दृष्टि में गिलास टूट गया वह भूतकाल और अब क्या होगा, उसके विचार और चिंता, वह

भविष्यकाल। ज्ञानी काल के छोटे से छोटे अविभाज्य लघुतम अंश में ही रहते हैं। सारे ब्रह्मांड के प्रत्येक परमाणु से अवगत होते हैं। सारे ज्ञेयों के ज्ञाता-दृष्टा ही होते हैं। समय और परमाणु तक पहुँचना, वह तो ज्ञानी का ही काम!

'गत वस्तु का शोच नहीं, भविष्य की वांछना नहीं, वर्तमान में बरतें सो ही ज्ञानी।'

'परम विनय' और 'मैं कुछ भी नहीं जानता', इन दो ही चीज़ों के साथ जो ज्ञानी के पास पहुँचा, वह पार उतरा ही समझो। अरे! केवल एक ही बार यदि ज्ञानी के चरणों में सर्व भाव समर्पित करके परम विनय से जिसने सिर झुकाया, उसका भी मोक्ष हो जाए, ऐसा ग़ज़ब का आश्चर्य है!

इन 'दादा भगवान' ने कभी सपने में भी किसी की विराधना नहीं की है, केवल आराधना ही की है। इसलिए 'दादा भगवान' का नाम लेकर सद्भाव से जो कुछ भी किया जाए, वह अवश्य फलदायी होगा ही!

ज्ञानी का वर्णन करने में वाणी असमर्थ है, कलम रुक जाती है।

ज्ञानी तो अतुलनीय और नापे न जा सकें, ऐसे होते हैं। उन्हें नापना या तोलना मत। यदि ज्ञानी का तोल करने गए, तो कोई छुड़ानेवाला नहीं मिलेगा, ऐसे चारों बंध पड़ेंगे। अपनी तराजू से कहीं ज्ञानी को तोला जाता है? उन्हें नापने जाएगा तो तेरी मति का नाप निकल जाएगा! जिसका एक अक्षर भी मालूम नहीं हो, उसका तोल कैसे होगा? ज्ञानी बुद्धि से नहीं तोले जाते। ज्ञानी के पास तो अबुध हो जाना चाहिए। बुद्धि तो उल्टा ही दिखाती है। यदि ज्ञानी की बात समझ में नहीं आती तो समझना कि उतना आड़ापन अंदर भरा पड़ा है। यदि ज्ञानी के पास भूल से भी आड़ापन दिखाया तो कभी मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। अरे! मोक्ष तो ज्ञानी के चरणों में ही है और वहीं सीधा नहीं रहा तो मोक्ष कैसे पाएगा?

एक घर तो डायन तक छोड़ती है। इसलिए ज्ञानी को छोड़कर और

कहीं भी बखेड़ा कर आया तो हल निकल आएगा, पर ज्ञानी के पास तो विनय में ही रहना, वर्ना भारी बंध पड़ जाएगा।

ज्ञानी का विरोध चलेगा पर विराधना नहीं चलेगी। ज्ञानी की आराधना यदि नहीं हो तो हर्ज नहीं पर विराधना तो भूलकर भी मत करना। इसका सदैव ध्यान रखना। ज्ञानी का पद तो आश्चर्य का पद कहलाता है उसकी विराधना में मत पड़ना।

ज्ञानीपुरुष के प्रति विभाव का पैदा होना ही विराधना कहलाती है। ज्ञानीपुरुष ही खुद का आत्मा है इसलिए ज्ञानी की विराधना यानी खुद के आत्मा की विराधना करने जैसा है। खुद 'खुद के' ही विराधक हुए।

स्वभाव से जो टेढ़ा है, उसे तो विशेष रूप से सावधान रहना होगा, क्योंकि ज्ञानी की एक विराधना असंख्य काल के लिए नर्कगति बंधवा देती है।

जिन्हें तीन लोक के नाथ वश में हैं, वहाँ पर यदि सरल नहीं हुआ तो और कहाँ पर सरल होगा? ज्ञानीपुरुष के पास तो पूर्ण सरलता हो, तभी काम होगा।

प्रस्तुत ज्ञानग्रंथ के प्रकाशन का प्रयोजन मुख्यतः सात्विक विचारकों, वैज्ञानिक मानसवाले वैचारिक वर्ग और संसारी ज्वाला से तप्त जनसमुदाय की आत्मशांति हो, वही है। ऐसी हार्दिक भावना है कि इस भयावह कलियुग के दावानल में सतयुग जैसी आत्मशांति की अनुभूति कराने में प्रस्तुत ग्रंथ एक प्रबल परम निमित्त सिद्ध होगा। शुद्ध भाव से इसी प्रार्थना के साथ!

- डॉ. नीरूबहन अमीन

अनुक्रमणिका

	पेज नं.
धर्म का स्वरूप	१
संसार सर्जन	४
संसार एक पहेली	४
'व्यवस्थित' शक्ति	६
भगवान का एड्रेस	७
भगवान ऊपरी और मोक्ष	८
रिलेटिव धर्म : रियल धर्म	१०
क्रमिक मोक्षमार्ग : अक्रम मोक्षमार्ग	११
कॉमनसेन्स	१३
सांसारिक संबंध	१३
सुख और दु:ख	१५
प्रारब्ध-पुरुषार्थ का विरोधाभासी अवलंबन	१५
अविरोधाभासी अवलंबन	१८
आत्मा-अनात्मा	२०
दिव्यचक्षु से मोक्ष	२१
पुनर्जन्म	२२
मन-वचन-काया, इफेक्टिव	२३
आधि - व्याधि - *उपाधि*	२६
संसार और ब्रह्म	२७
मन-वचन-काया का भूतावेश	२८
आगम-निगम	२९
पूरण- गलन	२९
सांसारिक विघ्न निवारक 'त्रिमंत्र'	३२
चिंता और अहंकार	३३
प्राप्त को भोगो	३६
ध्यान और अपध्यान	३७
गतिफल-ध्यान और हेतु से	४०
बुद्धि के उपयोग की मर्यादा	४२
अविरोध वाणी प्रमाण	४३
ज्ञानी और धर्म का स्वरूप	४४
निर्दोष दृष्टि	४६
कैफ़ और मोक्ष	४७
मन-वचन-काया की बला	४७
मोक्ष ही उपादेय है	४८
संसार महापोल	५१
मनुष्यों की निराश्रितता	५२
कुदरती तंत्र संचालन-भौतिक विज्ञान	५३
भौतिक डेवेलपमेन्ट-आध्यात्मिक डेवेलपमेन्ट	५५
प्राकृतिक साहजिकता	५७
साधक दशा	५८
पुण्य और पाप	५९
संकल्प-विकल्प	६२
सर्जन-विसर्जन	६२
पुरुष और प्रकृति	६३
त्रिगुणात्मक प्रकृति	६५
आत्मा, सगुण-निर्गुण	६६
प्राकृत पूजा-पुरुष पूजा	६७
प्रकृति धर्म- पुरुष धर्म	६८
प्राकृत बगीचा	६९
वैराग्य के प्रकार	७०
आत्मा का उपयोग	७०
मनुष्यपन का डेवेलपमेन्ट	७३
माया और मुक्ति!	७३
सुख के प्रकार	७४
मल-विक्षेप-अज्ञान : राग-द्वेष-अज्ञान	७५
वाणी का विज्ञान	७७
मौन-परमार्थ मौन	८०
अंत:करण	८१
मन कैसा है? विचार क्या है?	८२
कार्य प्रेरणा मन से है	८५
ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध	८७
मन पर सवार हो जाइए	८८
लक्ष्मी जी कहाँ बसती हैं?	९०
मन का संकोच-विकास	९१
मन के वक्र परिणाम	९२
मन का स्वभाव	९३
मन की गाँठें कैसे विलय हों?	९५
मन फिज़िकल है	९७
मन के प्रकार	९७
मन-आत्मा का ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध	९९
बुद्धिप्रकाश- ज्ञानप्रकाश	१००
बुद्धि के प्रकार	१००
बुद्धि का आशय	१०२
गणपति : बुद्धि के अधिष्ठाता देव	१०३

पेज नं.
बुद्धिजन्य अनुभव और ज्ञानजन्य अनुभव १०४
मतभेद क्यों? १०७
चोखा व्यापार करें १११
लक्ष्मी जी की कमी क्यों है? ११२
बुद्धिक्रिया और ज्ञानक्रिया ११३
जहाँ बुद्धिभेद वहाँ मतभेद ११५
अवधान की शक्ति ११७
अंत:करण का तीसरा अंग : चित्त ११९
ज्ञानी ही शुद्ध आत्मा दे सकते हैं १२१
चित्त प्रसन्नता १२३
अहंकार १२५
त्याग किसका करना है १२६
भुगतनेवाला कौन है? १२७
निकाल दो अहंकार की रुचि १२९
हँसते मुख से ज़हर पी लें १३०
अदीठ तप क्या है? १३३
मान-अपमान का बहीखाता १३४
अहंकार का ज़हर १३६
अहंकार का समाधान १३७
अटकण और सेन्सिटिवनेस १३८
अंत:करण का संचालन १३९
ऐच्छिक और अनिवार्य १४३
जगत् का अधिष्ठान १४६
निश्चेतन चेतन १५२
मनुष्य देह मोक्ष का अधिकारी १५५
इच्छा १५७
भाव यानी क्या? १६०
सज्जनता-दुर्जनता १६१
देह के तीन प्रकार १६३
देहाध्यास कब टूटे? १६७
देह की तीन अवस्थाएँ १६८
मनुष्य देह का प्रयोजन १७२
आचार, विचार और उच्चार १७२
उद्वेग १७५
निद्रा १७८
स्वप्न १७९
भय १८३
हिताहित का भान १८५

पेज नं.
लाइफ-एडजस्टमेन्ट्स १८६
टकराव १८७
इकॉनोमी १८८
विषय १९०
प्रेम और आसक्ति १९९
नैचुरल लॉ - भुगते उसी की भूल २०२
निजदोष दर्शन २०७
भूलें २११
आड़ाई-स्वच्छंदता २१७
शंका २२१
मताग्रह २२३
दृष्टिराग २२३
बैरभाव २२४
संसार-सागर के स्पंदन २२५
क्लेश २२९
वास्तव में सुख-दु:ख क्या है? २३३
दोष दृष्टि २३४
स्मृति २३६
असुविधा में सुविधा २३७
चार्ज और डिस्चार्ज २३९
मोह का स्वरूप २४५
माया २४८
क्रोध २५०
लोभ २५१
कपट २५३
क्रोध-मान-माया-लोभ की खुराक २५३
होम डिपार्टमेन्ट-फॉरेन डिपार्टमेन्ट २५५
संयोग २५६
प्राकृत संयोग २६४
योग-एकाग्रता २६७
निर्विकल्प समाधि २६८
ध्याता-ध्येय-ध्यान २७०
गुरु किल्ली २७४
अक्रम ज्ञान - क्रमिक ज्ञान २७५
चौरासी लाख योनियाँ-चार गति की भटकन क्यों? २७५
प्रज्ञा २७९

आप्तवाणी

श्रेणी - १

धर्म का स्वरूप

धर्म अर्थात् क्या?

वस्तु स्वगुणधर्म में परिणामित हो, वह धर्म।

धर्म यानी वस्तु का स्वभाव और वही उसका धर्म कहलाता है।

उदाहरण के रूप में, सोना, सोना कब कहलाता है? जब उसके गुणधर्म सोने के दिखाई दें, तब। अंगूर यदि कड़वे लगें, तो क्या कहेंगे? अंगूर अपने गुणधर्म में नहीं है। पीतल को यदि बफिंग करके रखा हो, तो वह हूबहू सोने जैसा ही लगता है, लेकिन सुनार के पास ले जाकर परख करवाएँ, तब पता चलता है कि उसमें सोने के गुणधर्म नहीं हैं, इसलिए वह सोना नहीं हो सकता।

दो प्रकार के आम आपके सामने रखे हैं। उनमें से एक में से आम की खुशबू आती है, सूख जाने पर थोड़ी सी सलवट पड़ती हैं, थोड़ी सड़न पैदा होती है और दूसरा आम भी हूबहू आम जैसा ही दिखता हो, लेकिन जो लकड़ी का होता है, उसमें बाकी सबकुछ होता है, लेकिन सुगंध नहीं होती, कुम्हलाता नहीं,

सड़ता भी नहीं। दोनों ही आम हैं, लेकिन लकड़ी का आम केवल कहने को आम है। वह सचमुच के आम के स्वभाव में नहीं है। जबकि सचमुच का आम अपने स्वभाव में है, गुणधर्म में है। उसी तरह वस्तु जब अपने स्वभाव में होती है, गुणधर्म में होती है, तभी वह वस्तु कहलाती है। वह वस्तु अपने धर्म में है ऐसा कहा जाता है। अनात्मा को, पुद्गल (जो पूरण और गलन होता है) को, 'मैं' माना जाता है, वह अवस्तु है, परधर्म है, स्वधर्म नहीं है। आत्मा को आत्मा माना जाए, तो वह वस्तु है, वही धर्म है, स्वधर्म है, आत्मधर्म है।

दादाश्री : आप कौन हो?

प्रश्नकर्ता : मैं चंदूलाल हूँ।

दादाश्री : आपका नाम क्या है?

प्रश्नकर्ता : मेरा नाम चंदूलाल है।

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल' और 'मेरा नाम चंदूलाल', दोनों में कोई विरोधाभास लगता है क्या? नामधारी और नाम दोनों एक कैसे हो सकते हैं? नाम तो, जब अरथी उठती है, तब वापस ले लिया जाता है। म्युनिसिपालिटी के रजिस्टर में से निकाल देते हैं।

यह हाथ किसका है? यह पैर किसका है?

प्रश्नकर्ता : मेरा है।

दादाश्री : वे तो इस के स्पेयर पार्ट्स हैं। उसमें तेरा क्या है? तेरे भीतर जो मन है, वह किसका है?

प्रश्नकर्ता : मेरा है।

दादाश्री : यह वाणी किसकी है?

प्रश्नकर्ता : मेरी है।

दादाश्री : यह देह किसकी है?

प्रश्नकर्ता : मेरी है।

दादाश्री : 'मेरी है', कहते ही उसका मालिक उससे अलग है, ऐसा विचार आता है या नहीं आता?

प्रश्नकर्ता : आता है।

दादाश्री : हाँ, तो आप खुद कौन हो? इसके बारे में कभी सोचा है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : यह घड़ी लाए, उसे रियलाइज़ (जांच-पड़ताल) करके लाए थे न कि ठीक है या नहीं? यह कपड़ा लाए थे, उसे भी रियलाइज़ करके लाए थे न? बीवी लाए उसे भी रियलाइज़ करके लाए थे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादाजी।

दादाश्री : तो फिर सेल्फ, खुद का ही, रियलाइज़ेशन नहीं किया? ये सारी चीजें टेम्परेरी (विनाशी) होंगी या परमानेन्ट (अविनाशी)? ऑल दीज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स। खुद परमानेन्ट है और टेम्परेरी चीज़ों से उसे गुणा करते हैं, फिर जवाब कहाँ से आएगा? अरे! तू गलत, तेरी रकम गलत, अब जवाब सही कैसे आएगा?

सेल्फ रियलाइज़ेशन नहीं किया, यह छोटी गलती होगी या बड़ी?

प्रश्नकर्ता : भयंकर बड़ी भूल! यह तो ब्लंडर कहलाएगा, दादाजी!

संसार सर्जन

दादाश्री : इस संसार का सर्जन किस ने किया होगा?

प्रश्नकर्ता : (सोचता है)....

दादाश्री : तेरी कल्पना में जो है सो बता दे। हम यहाँ कहाँ किसी को फेल करने बैठे हैं?

प्रश्नकर्ता : भगवान ने बनाया होगा।

दादाश्री : भगवान के बच्चे कहाँ कुँवारे रह गए थे, जो उन्हें यह सब बनाना पड़ा? वे शादीशुदा है या कुँवारे? उनका पता क्या है?

मोक्ष होता होगा या नहीं?

प्रश्नकर्ता : मोक्ष तो है ही न?

दादाश्री : यदि भगवान बनानेवाले हों और मोक्ष हो, तो वह संपूर्ण विरोधाभास है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, यह विरोधाभास कैसे?

दादाश्री : यदि भगवान *ऊपरी* होते और यदि वे ही मोक्ष में ले जानेवाले होते, तो जब वे कहें कि उठ यहाँ से, तो आपको तुरंत उठना पड़ेगा। वह मोक्ष कैसे कहलाएगा? मोक्ष अर्थात संपूर्ण स्वतंत्रता। कोई *ऊपरी* नहीं और कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं।

संसार एक पहेली

ये अंग्रेज भी कहते हैं कि गॉड इज़ दी क्रिएटर ऑफ दिस वर्ल्ड (भगवान इस संसार के रचयिता हैं) मुस्लिम भी कहते हैं कि अल्लाह ने बनाया। हिन्दू भी कहते हैं कि भगवान ने बनाया। यह उनके व्यू पोईन्ट (दृष्टिबिंदु) से सही है लेकिन फैक्ट

से (हक़ीक़त में) गलत है। यदि तुझे फैक्ट जानना है, तो मैं तुझे वह बताऊँ। जो ३६० डिग्रीयों का स्वीकार करे, उसे ज्ञान कहते हैं। हम सभी ३६० डिग्रियों को मान्य करते हैं, इसलिए हम ज्ञानी हैं। क्योंकि हम सेन्टर में बैठे हैं और इस कारण से हम फैक्ट बता सकते हैं। फैक्ट यह है कि गॉड इज नॉट एट ऑल क्रिएटर ऑफ दिस वर्ल्ड। यह संसार किसी ने बनाया ही नहीं है। तो बना कैसे? 'दी वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ' (संसार अपने आप में एक पहेली है।) पज़लसम हो गया है इसलिए पज़ल कहना पड़ता है। बाकी तो संसार अपने आप बना है। और यह हमने अपने ज्ञान में खुद देखा है। इस संसार का एक भी परमाणु ऐसा नहीं है कि जिसमें मैं विचरा नहीं हूँ। संसार में रहकर और उसके बाहर रहकर मैं यह कह रहा हूँ।

यह पज़ल (पहेली) जो सॉल्व (हल) करे, उसे परमात्मा पद की डिग्री मिलती है और जो सॉल्व नहीं कर पाते, वे पज़ल में डिज़ोल्व हो चुके हैं। हम यह पज़ल सॉल्व करके बैठे हैं तथा परमात्मा पद की डिग्री प्राप्त की है। हमें यह चेतन और अचेतन दोनों भिन्न दिखते हैं। जिसे भिन्न नहीं दिखते वह खुद ही उसमें डिज़ोल्व हो चुका है।

क्रिएटर भगवान है नहीं, था नहीं और होगा नहीं। क्रिएटर का अर्थ क्या होता है? क्रिएटर का अर्थ कुम्हार होता है, उसे तो मेहनत करनी पड़ती है। भगवान क्या कोई मेहनती होंगे? अहमदाबाद के ये सेठ लोग बिना मेहनत के चार-चार मिलों के मालिक बने फिरते हैं, फिर भगवान तो मेहनत करते होंगे? मेहनती यानी मजदूर। भगवान वैसा नहीं है। यदि भगवान सबको गढ़ने बैठता, तो सभी के चेहरे एक समान होने चाहिए। जैसे एक ही डाई से बने हों, लेकिन ऐसा नहीं है। यदि भगवान को निष्पक्ष कहें, तो फिर एक इंसान जन्म से ही फुटपाथ पर और दूसरा महल में क्यों?

फिर यह सब किस प्रकार चल रहा है, इसका मैं आपको एक वाक्य में उत्तर देता हूँ, आप विस्तार से खोज लेना। यह संसार 'साइंटिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' से चल रहा है। जिसे हम 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं, जो सभी को व्यवस्थित ही रखती है! चलानेवाला कोई बाप भी ऊपर नहीं बैठा है। सबेरे आप जागते हो या जागना हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : वह तो मैं ही उठता हूँ न?

दादाश्री : कभी ऐसा नहीं होता कि सोना है फिर भी सो नहीं पाते? सुबह चार बजे जागना हो तब अलार्म क्यों लगाते हो? निश्चय किया हो कि पाँच बजकर दस मिनट पर उठना हो, तो ठीक समय पर उठ ही जाना चाहिए। ऐसा होता है क्या?

'व्यवस्थित' शक्ति

खुद जहाँ नहीं करता है, वहाँ पर आरोपण करता है कि 'मैंने किया'। इसे सिद्धांत कैसे कहेंगे? यह तो विरोधाभास है। तो जगाता कौन है आपको? 'व्यवस्थित' नाम की शक्ति आपको जगाती है। ये सूर्य, चंद्र, तारे सभी 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर चलते हैं। ये सारी मिलें धुएँ के बादल छोड़ती ही रहती हैं और 'व्यवस्थित शक्ति' उन्हें बिखराकर वातावरण को स्वच्छ कर देती है और सबकुछ 'व्यवस्थित' कर देती है। यदि ऐसा नहीं होता, तो अहमदाबाद के लोग कब से ही घुटकर मर चुके होते। यह जो बरसात होती है, तो वहाँ ऊपर पानी बनाने कौन जाता है? वह तो नैचुरल एडजस्टमेन्ट (कुदरती प्रकिया) से होता है। दो 'H' (हाईड्रोजन) और एक 'O (ऑक्सीजन)' के परमाणु इकट्ठे होते हैं और दूसरे कितने ही संयोग जैसे कि हवा आदि के मेल से पानी बनता है और बरसात के रूप में बरसता है। वैज्ञानिक क्या कहता है? 'देख, मैं पानी का मेकर (बनानेवाला) हूँ।' अरे! मैं तुझे दो 'H' के परमाणु के बजाय

एक ही 'H' का परमाणु देता हूँ, अब बना पानी। तब वह कहेगा, 'नहीं, वैसे तो कैसे बन पाएगा?' अरे! तू भी इनमें से एक एविडेन्स है। तू कैसा मेकर? इस संसार में कोई 'मेकर' है ही नहीं, कोई कर्ता है ही नहीं, निमित्त हैं। भगवान भी कर्ता नहीं हैं। कर्ता बने, तो भोक्ता बनना पड़ेगा न! भगवान तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी हैं। खुद के अपार सुख में ही मगन रहते हैं।

भगवान का एड्रेस

भगवान कहाँ रहते होंगे? उनका एड्रेस क्या है? कभी खत वत लिखना चाहें तो? वे कौन से मुहल्ले में रहते हैं? उनका स्ट्रीट नंबर क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : यह तो मालूम नहीं है, लेकिन सभी कहते हैं, ऊपर रहते हैं।

दादाश्री : सब कहते हैं, और आपने भी मान लिया? हमें पता तो लगाना चाहिए न? देखो मैं आपको भगवान का सही ठिकाना बताता हूँ। गॉड इज इन एवरी क्रीचर व्हेदर विजिबल और इनविजिबल (भगवान सभी जीवों में रहते हैं, फिर भले ही वे आँख से दिखनेवाले ऐसे हों या न दिखनेवाले जीव हों।) आपके और मेरे बीच में दूरबीन (सूक्ष्मदर्शी) से भी दिखाई नहीं दें, ऐसे अनंत जीव हैं। उनमें भी भगवान बैठे हुए हैं। इन सभी में शक्ति के रूप में हैं और हमारे अंदर व्यक्त हो गए हैं। संपूर्ण प्रकाशमान हो गए हैं। इसलिए हम प्रकट परमात्मा हो चुके हैं! ग़ज़ब का प्रकाश हुआ है!! यह जो आपको दिखाई देते हैं, वे तो अंबालाल मूलजीभाई, भादरण के पाटीदार हैं और कोन्ट्रेक्ट का व्यवसाय करते हैं, लेकिन भीतर जो प्रकट हो गए हैं, वे तो ग़ज़ब का आश्चर्य हैं। वे 'दादा भगवान' हैं। लेकिन आपको कैसे समझ में आए? यह देह तो पैकिंग (खोखा) है। भीतर बैठे हैं, वे भगवान हैं। यह आपका भी चंदूलाल रूपी पैकिंग

है और भीतर भगवान विराजे हैं। यह गधा है, तो यह भी गधे का पैकिंग है और भीतर भगवान विराजे हैं। लेकिन इन अभागों की समझ में नहीं आता, इसलिए गधा सामने आए, तो गाली देते हैं, जिसे भीतर बैठे भगवान नोट करते हैं और कहते हैं, 'हम्म्... मुझे गधा कह रहा है, जा अब तुझे भी एक जन्म गधे का मिलेगा।' यह पैकिंग तो कैसा भी हो सकता है। कोई सागवान का होता है, कोई आम की लकड़ी का होता है। ये व्यापारी पैकिंग देखते हैं या भीतर का माल देखते हैं?

प्रश्नकर्ता : माल देखते हैं।

दादाश्री : हाँ, पैकिंग का क्या करना है? काम तो माल से ही है न? कोई पैकिंग सड़ा हुआ हो, टूटा-फूटा हो, लेकिन माल तो अच्छा है न?

हमने इस अंबालाल मूलजीभाई के साथ क्षण के लिए भी तन्मयता नहीं की है। जब से हमें ज्ञान उपजा तब से दिस इज माई फर्स्ट नेबर (ये मेरे प्रथम पड़ौसी हैं) पड़ौसी की तरह ही रहते हैं हम।

भगवान *ऊपरी* और मोक्ष

तेरह वर्ष की उम्र में मुझे विचार आया था कि मुझे कोई *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) नहीं चाहिए। भगवान भी *ऊपरी* नहीं चाहिए, यह मुझे नहीं जमेगा। ऐसा मैं अपना डेवेलमेन्ट (विकास) साथ में लाया था और अनंत जन्म की इच्छाओं का फल मुझे इस जन्म में मिला। यदि सिर पर भगवान *ऊपरी* हों और वही मोक्ष में ले जानेवाला हों, तो जहाँ कहीं बैठे हों, वहाँ से खड़ा कर दे और हमें खड़ा होना पड़े। यह रास नहीं आएगा। वह मोक्ष कहलाएगा ही कैसे? मोक्ष यानी 'मुक्त भाव' सिर पर कोई *ऊपरी* भी नहीं और कोई अंडरहैन्ड भी नहीं।

यहाँ जीते जी ही मोक्ष का अनुभव किया जा सके, ऐसा

है। एक भी चिंता मुसीबत नहीं हो। इन्कमटैक्सवालों का नोटिस आए, तब भी समाधि नहीं जाए, वही मोक्ष। फिर ऊपर का मोक्ष तो इसके बाद देखेंगे। लेकिन पहले यहाँ मुक्त होने के बाद ही वह मुक्ति मिलेगी।

जब सोलह साल की उम्र में मेरी शादी हुई थी, तब सिर पर से साफा ज़रा खिसक गया, तब मुझे विचार आया कि हम दोनों में से किसी एक को विधवा या विधुर होना ही है, यह तो निश्चित ही है न?

अनंत जन्मों से सभी यही का यही पढ़ते हैं और फिर उस पर आवरण आ जाता है। अज्ञान पढ़ाना नहीं पड़ता, अज्ञान तो सहज ही आ जाता है। ज्ञान पढ़ाना पड़ता है। मुझे आवरण कम था, इसलिए तेरहवें साल में ही प्रकाश हो गया था। स्कूल में मास्टरजी, लघुतम समापवर्त्य सिखा रहे थे कि ऐसी संख्या खोजो, जो छोटी से छोटी हो और सभी में अविभाज्य रूप से रही हो। मैंने इस पर से तुरंत ही भगवान खोज निकाले। ये सभी (मनुष्य) संख्याएँ ही हैं न? उनमें भगवान अविभाज्य रूप से रहे हुए हैं!

मैं जो वाणी बोलता हूँ, उस वाणी से आपका आवरण टूटता है और अंदर प्रकाश होता है, इसलिए मेरी बात आपकी समझ में आती है। बाकी एक भी शब्द समझने की आपकी ताकत नहीं है। बुद्धि काम ही न करे। ये, जो सभी जो बुद्धिमान कहलाते हैं, वे सभी रोंग बिलीफ (गलत मान्यता) से है। हम अबुध हैं। हमारे पास बुद्धि नाम मात्र को भी नहीं है। बुद्धि क्या है? सारे संसार के अनंत सब्जेक्ट्स (विषयों) को जानें, तो भी उनका समावेश बुद्धि में ही होता है। ज्ञान क्या है? 'मैं कौन हूँ?' उतना ही जान लें, तो वह ज्ञान है। इसके अलावा तेरा सभी जाना हुआ कुछ काम आनेवाला नहीं है। अहंकारी ज्ञान यानी बुद्धि, और निरंहकारी ज्ञान यानी ज्ञान। स्वरूप का ज्ञान, वही ज्ञान है।

मतभेद टालने का मार्ग क्या है? जीवन कैसे जीना? करोड़ों रुपये हों, फिर भी मतभेद होते हैं और मतभेद से अनंत दुःख पैदा होते हैं।

रिलेटिव धर्म : रियल धर्म

वृत्त (सर्किल) में ३६० डिग्री होते हैं। अंग्रेज ११० डिग्री पर, मुस्लिम १२० डिग्री पर, पारसी १४० डिग्री पर, हिन्दू २२० डिग्री पर होते हैं। वे सभी अपने अपने दृष्टि बिंदु से देखते हैं, इसलिए सब अपने देखे हुए को सही बताते हैं। १२० डिग्री पर बैठे हुए को मैं ८० डिग्री पर लाकर पूछूं कि कौन सही है? सभी व्यू पोइन्ट पर, डिग्री पर बैठे हुए होते हैं। ३६० डिग्री पूरी करके हम सेन्टर (मध्य बिंदु) में बैठे हुए पूर्ण पुरुष हैं। ज्ञानीपुरुष सेन्टर में स्थित होने के कारण वस्तु को यथार्थ रूप में देख सकते हैं, समझ सकते हैं और आपको यथार्थ ज्ञान दे सकते हैं। ये सभी धर्म सही हैं, लेकिन वे रिलेटिव धर्म हैं, व्यू पोइन्ट के अनुसार हैं। यदि फैक्ट जानना हो, तो सेन्टर (केन्द्र) में आना होगा। रियल धर्म, आत्मधर्म सेन्टर में ही होता है। जो सेन्टर में बैठा है, वही सभी के व्यू पोइन्ट को देख सकता है। इसलिए उसका किसी धर्म से मतभेद नहीं होता है। इसी कारण से हम कहते हैं कि जैनों के हम महावीर हैं, वैष्णवों के हम कृष्ण हैं, स्वामीनारायण के सहजानंद हैं, क्रिश्चियनों के क्राइस्ट हैं, पारसियों के जरथ्रुस्ट हैं, मुस्लिमों के खुदा हैं। जिसे जो चाहिए वह ले जाए। हम संगमेश्वर भगवान हैं। तू अपना काम निकाल ले। एक घंटे में तुम्हें परमात्म पद देता हूँ, लेकिन तुम्हारी तैयारी चाहिए। बस तुम आओ उतनी ही देरी है। घंटेभर में सारा 'केवलज्ञान' दे देता हूँ। लेकिन तुम्हें पचनेवाला नहीं। हमें भी 356 डिग्री पर आकर अटक गया है, काल की वजह से। लेकिन तुम्हें देते हैं, संपूर्ण 'केवलज्ञान'!

शक्करकंद को यदि भट्ठी में डालें, तो कितनी ओर से भुन

जाएगा? चारों ओर से। उसी प्रकार यह सारा संसार भुन रहा है। अरे! पेट्रोल की अग्नि में जलता हुआ हमें हमारे ज्ञान में दिखता है। इसलिए लोगों का कल्याण कैसे हो, यही हमें देखना है। इसीलिए हमारा जन्म हुआ है, आधे विश्व का कल्याण हमारे हाथों होगा और शेष आधे विश्व का कल्याण हमारे इन फॉलोअर्स (अनुयायिओं) के हाथों होगा। हम इसमें कर्ता नहीं हैं, निमित्त हैं।

जर्मनीवाले एब्सोल्युटिज़म (परम तत्व) की खोज में हैं। इसलिए यहाँ से बहुत सारे शास्त्र उठा ले गए हैं और खोज में लगे हैं। अरे! वह ऐसे मिलनेवाला नहीं है। आज हम खुद ही प्रत्यक्ष एब्सोल्युटिज़म में हैं। संसार सारा थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी में है। ये हमारे 'महात्मा' थ्योरी ऑफ रियलिटी में हैं। हम खुद थ्योरी ऑफ एब्सोल्युटिज़म में हैं। केवल थ्योरी नहीं, लेकिन थ्योरम में हैं। हम जब जर्मनी जाएँगे, तब कहेंगे कि तुझे जो चाहिए वह ले जा। यह हम खुद ही आए हैं।

दिस इज कैश बैंक इन दी वर्ल्ड (संसार में यह नक़द बैंक है) एक घंटे में नक़द तेरे हाथ में थमा देता हूँ। रियल में बिठा देता हूँ। और सब जगह उधार है। किश्ते भरते रहो। अनंत जन्मों से तू किश्ते भरता आया है, फिर भी हल क्यों नहीं निकलता है? क्योंकि नक़द किसी जन्म में मिला ही नहीं है।

क्रमिक मोक्षमार्ग : अक्रम मोक्षमार्ग

मोक्ष प्राप्ति के दो मार्ग : एक मुख्य मार्ग, जो स्टेप बाय स्टेप, सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ने का है। सत्संग मिले, तो पाँच सौ सीढ़ियाँ चढ़ जाए और कुसंग मिले किसी जन्म में, तो पाँच हज़ार सीढ़ियाँ उतार दे। बड़ा कठिन मार्ग है! जप-तप-त्याग करते हुए चढ़ना पड़ता है, फिर भी पता नहीं कि कब गिरा दे? दूसरा

अक्रम मार्ग, लिफ्ट मार्ग मतलब सीढ़ियाँ नहीं चढ़नी हैं, सीधे ही लिफ्ट में चढ़कर, बीवी-बच्चों के साथ, बेटे-बेटियों की शादियाँ रचाते हुए, सबकुछ करके फिर, मोक्ष प्रयाण करना। यह सब करते हुए भी, आपका मोक्ष चला नहीं जाएगा। ऐसा अक्रम मार्ग अपवाद मार्ग भी कहलाता है। अक्रम मार्ग प्रति दस लाख वर्षों में एक बार प्रकट होता है। सिर्फ भरत राजा को यह ज्ञान मिला था। ऋषभदेव दादा भगवान ने अपने सौ पुत्रों में से सिर्फ भरत को ही यह अक्रम ज्ञान दिया था। उनके सौ पुत्रों में से अठ्ठानवे पुत्रों ने दीक्षा ली थी। रहे बाहुबली जी और भरत। उन दोनों को राज्य सौंपा। फिर बाहुबली जी बैरागी होकर निकल पड़े और उन्होंने भी दीक्षा ली, इसलिए भरत के सिर पर राज्य का भार आ गया। भरत की फिर रानियाँ कितनी थीं, मालूम है? तेरह सौ रानियाँ थीं। वे ऊब गए थे। आजकल तो एक ही बीवी से तौबा करते हैं लोग! भरत राजा को तो बहुत दुःख था। रनिवास में जाते, तो पचास का मुँह हँसता हुआ दिखाई देता और पाँच सौ का मुँह चढ़ा हुआ । ऊपर से राज्य की चिंता, लड़ाइयाँ लड़ना, तो वे बड़े परेशान रहते थे, इसलिए भगवान से जाकर बोले, 'भगवान! मुझे राज्य नहीं चाहिए, और किसी को सौंप दीजिए और मुझे दीक्षा दीजिए। मुझे भी मोक्ष में ही जाना है।' तब भगवान ने कहा कि तू इस राज्य के संचालन का निमित्त है। यदि नहीं किया तो राज्य में झगड़े, मारकाट और अराजकता फैल जाएगी। जा, हम तुझे ऐसा ज्ञान देते हैं कि तुझे राज्य भी बाधक नहीं होगा, तेरह सौ रानियाँ भी बाधक नहीं होंगी और लड़ाइयाँ भी बाधक नहीं होंगी। ऋषभदेव भगवान ने भरत को ऐसा ज्ञान दिया था। और वही यह 'अक्रम ज्ञान', जो हम तुम्हें यहाँ देते हैं, एक घंटे में। अरे! भरत राजा को तो, ज्ञान हट नहीं जाए, इसके लिए चौबीसों घंटे नौकर रखने पड़ते थे। जो हर पंद्रह मिनट पर बारी-बारी से घंटनाद करके बोला करते थे, 'भरत चेत, चेत, चेत!' लेकिन अभी तो आप ही डेढ़ सौ की नौकरी करते

हो, तो नौकर कैसे रख पाओगे? इसलिए हम भीतर ही ऐसी व्यवस्था कर देते हैं कि प्रतिक्षण भीतर से ही 'चेत, चेत, चेत' की गूँज उठती रहती है।

ऐसा अद्‌भुत ज्ञान तो किसी काल में न सुनने में आया, न ही देखने में। यह तो ग्यारहवाँ आश्चर्य है इस काल का!

कॉमनसेन्स

कॉमनसेन्स क्या है? उसकी परिभाषा क्या है?

कॉमनसेन्स अर्थात् एवरीव्हेयर एप्लिकेबल, थ्योरिटिकली एज़ वेल एज़ प्रैक्टिकली। (व्यावहारिक समझ जो सर्वत्र लागू की जा सके, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार से)

कॉमनसेन्स बड़ी ऊँची चीज़ है। उसे, जहाँ ज़रूरत हो वहाँ काम में ले सकते हैं। हममें सौ प्रतिशत कॉमनसेन्स है। आप में एक प्रतिशत भी नहीं है। उलझने पर बिना तोड़े धागा सुलझाना वही कॉमनसेन्स है। लोग तो एक उलझन सुलझाते-सुलझाते, दूसरी पाँच उलझनें खड़ी कर देते हैं, उन्हें कोमनसेन्स के मार्क कैसे दिए जाएँ? अरे! बड़े-बड़े विद्वानों में विद्वत्ता होती है, लेकिन कोमनसेन्स नहीं होता। हम में बुद्धि नाममात्र को भी नहीं है, हम अबुध हो गए हैं। हम में बुद्धि पूर्ण रूप से प्रकाशमान हो चुकी होती है, लेकिन हमारे ज्ञान प्रकाश के आगे वह कोने में जाकर बैठी रहती है। एक किनारे पर अबुध पद प्राप्त होते ही नियम से, सामनेवाले किनारे पर सर्वज्ञ पद माला लेकर सामने आकर खड़ा ही होता है। 'हम अबुध हैं, सर्वज्ञ हैं।'

सांसारिक संबंध

यह आपके अपने पिता जी से, माँ से, बीवी के साथ जो संबंध हैं, वे रियल संबंध हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी, रियल संबंध ही हैं न?

दादाश्री : फिर तो बाप मर जाए, तो नियम से आपको भी मर जाना चाहिए। मुंबई में ऐसे कितने होंगे जो बाप के पीछे मर गए? देखिए मैं आपको समझाता हूँ। माँ-बाप, भाई बहन, बीवी-बच्चे उनके बीच जो संबंध हैं, वे सही हैं, लेकिन रियल नहीं हैं, रिलेटिव संबंध हैं। यदि रियल होते, तो किसी का बाप के साथ संबंध टूटता ही नहीं। यह तो यदि बाप से कहा हो कि 'आप में अक्ल नहीं है,' तो बस खत्म। बाप कहेगा, 'जा अपना मुँह सारी ज़िंदगी मत दिखाना। मैं तेरा बाप नहीं और तू मेरा बेटा नहीं आज से।' आपने बीवी को भी रिश्तेदार माना, लेकिन डाइवॉर्स होता है या नहीं? ऐसा है यह संसार। ऑल दीज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स (सारे अल्पकालिक समायोजन हैं)। अरे! यह देह भी आपकी सगी नहीं है न? वह भी दग़ा दे देती है। यदि तय किया हो कि आज इतने समय सामायिक करनी है, तो या तो सिर दुःखने लगता है या पेट दुःखने लगता है। वह सामायिक भी नहीं करने देती। खुद परमानेन्ट (शाश्वत) और यह सब टेम्परेरी (अस्थायी), दोनों का मेल कैसे हो? इसीलिए सारा संसार उलझन में फँसा है। रिलेशन में तो रिलेशन के आधार पर ही व्यवहार करना चाहिए। सत्य-असत्य के लिए बहुत आग्रह नहीं रखना चाहिए। ज़्यादा खींचने पर टूट जाता है। सामनेवाला यदि संबंध तोड़ डाले और हमें संबंध की ज़रूरत हो, तो हम सिल देंगे, तभी संबंध बना रहेगा। क्योंकि सारे संबंध रिलेटिव हैं। उदाहरण के लिए, यदि बीवी कहे कि आज पूनम है, आप कहो कि नहीं अमावस्या है। तो फिर दोनों में खींचातानी होगी और सारी रात बिगड़ेगी और सुबह में वह चाय का कप पटककर देगी, ताँता बना रहेगा। उसके बजाय हम समझ लें कि इसने खींचना शुरू किया है, तो टूट जाएगा, अतः धीरे से पंचांग के पन्ने इधर-उधर पलटकर कहो, 'हाँ तेरी बात सही है, आज पूनम है।' ऐसे थोड़ा नाटक करने के बाद ही उसकी बात सही ठहराना, वर्ना क्या होगा? डोर बहुत खींची हुई हो और एकदम से आप

छोड़ दो, तो वह गिर पड़ेगी। इसलिए डोर धीरे-धीरे, संभलकर ऐसे छोड़ना ताकि सामनेवाला गिर नहीं पड़े। वर्ना अगर वह गिर जाएगा, तो उसका भी दोष लगेगा।

सुख और दुःख

संसार में सभी सुख की खोज में हैं, लेकिन सुख की परिभाषा ही तय नहीं करते। 'सुख ऐसा होना चाहिए कि उसके बाद कभी भी दुःख नहीं आए।' ऐसा एक भी सुख संसार में हो, तो खोज निकाल, जा। शाश्वत सुख खुद के 'स्व' में अंदर ही है। खुद अनंत सुख धाम है और लोग नाशवंत चीज़ों में सुख खोजने निकले हैं। इन संसारियों के सुख कैसे हैं? जाड़े का दिन और छत का मेहमान, कड़ाके की सर्दी की शुरूआत, छोटी रज़ाई और खुद लंबू। यदि सिर ढंके, तो पैर खुले रहें और पैर ढंके, तो सिर खुला रहे। और कोई सारी रात परशान रहे, ऐसा है यह संसारी सुख। हकीकत में इस संसार में दुःख जैसी कोई वस्तु ही नहीं है। दुःख अवस्तु है। कल्पना से पैदा किया है। जलेबी में दुःख है, ऐसी कल्पना करे, तो उसे उससे दुःख होगा और सुख है ऐसी कल्पना करे, तो सुख होगा। इसलिए वह यथार्थ नहीं है। जो सच्चा सुख है, वह सभी को स्वीकार्य होना ही चाहिए। यूनिवर्सल ट्रुथ (सत्य) होना चाहिए। लेकिन तू जिसमें सुख मानता है उसमें औरों को बेहद दुःख का अनुभव हो सकता है, ऐसा यह संसार है।

प्रारब्ध-पुरुषार्थ का विरोधाभासी अवलंबन

लोग प्रारब्ध को पुरुषार्थ कहते हैं। अरे! पिसे हुए को फिर से पीसते हैं और उल्टे आधा सेर आटा उड़ा देते हैं। कुछ लोग प्रारब्ध-प्रारब्ध की रट लगाते हैं और कुछ पुरुषार्थ-पुरुषार्थ करते रहते हैं, लेकिन वे दोनों निराधार अवलंबन हैं। ये मज़दूर सारा दिन मिलों में पुरुषार्थ करते हैं, तो वे क्या पाते हैं? रोटी और

दाल या और कुछ ज़्यादा? प्रारब्धवादी यदि हाथ जोड़कर बैठे रहें, तो?

अरे! लाख कमाए तो कहता है, 'मैंने कमाया' और घाटा हो जाए तो कहता है, 'भगवान ने किया। मेरे ग्रह खराब थे। साझीदार बदमाश मिला।' ऊपर से कहता है, 'मै क्या करू?' अरे! तू जीवित है या मरा हुआ है? कुछ अच्छा हो तब कहता है, 'मैंने किया', तो अब क्यों नहीं कहता कि मैंने किया है? अब कहता है, भगवान ने किया। ऐसा कहकर भगवान को बदनाम क्यों करता है? और ग्रह भी कुछ करते-धरते नहीं हैं। तेरे 'ग्रह' ही तुझे परेशान करते हैं। तेरे भीतर ही नौ के नौ ग्रह भरे पड़े हैं। वे ही तुझे परेशान करते हैं। हठाग्रह, कदाग्रह, दुराग्रह, मताग्रह, सत्याग्रह सभी तुझ में हैं, तेरे हैं। हम निराग्रही हो चुके हैं। जहाँ आग्रह होता है, वहीं विग्रह होता है। हमें आग्रह नहीं है, तो विग्रह कहाँ से होगा? यह तो जब क्रम आता है तब सफल होता है और अ-क्रम में आता है तब भगवान पर उँडेल देते हैं। क्रमसहित और अक्रम इन दो कड़ियों को लोग पुरुषार्थ कहते हैं। यदि खुद पुरुषार्थ कर रहा होता, तो कभी भी घाटा होता ही नहीं। पुरुषार्थ तो वह है कि निष्फलता मिले ही नहीं। यह तो विरोधाभास है। तू खुद ही पुरुष नहीं बना है, तब पुरुषार्थ कैसे करेगा भैया? सही पुरुषार्थ तो वही है जो स्वपराक्रम सहित हो। यह तो, प्रकृति जैसे नचाती है, वैसे नाचता है और कहता है कि मैं नाचा!

कृष्ण भगवान ने क्या कहा है कि ऊद्धवजी, अबला तो क्या साधन करे? जैनों के सबसे बड़े आचार्य महाराज आनंदघन जी भी अपने को अबला कहते हैं, क्योंकि पुरुष किसे कहते हैं? जिसने क्रोध-मान-माया-लोभ जीत लिए हों, उसे। यहाँ तो, क्रोध-मान-माया-लोभ ने ही जिसे जीत लिया हो, वह तो अबला ही कहलाएगा न?

मैं पुरुष बन गया हूँ, पुरुषार्थ और स्वपराक्रम सहित हूँ। ज्योतिष और पुरुषार्थ दोनों ही विरोधाभास है। ज्योतिष सही है, लेकिन जिसे पुरुषार्थ मानते हैं, वह भ्राँति है। घाटा हो तब ज्योतिषी के पास क्यों जाता है? कर न पुरुषार्थ! यह पुरुषार्थ तो अगले जन्म के बीज डालता हैं।

इस एलेम्बिक (दवाई बनाने) के कारखाने में कितने ही लोग काम करते हैं, तब केमिकल्स तैयार होते हैं और वह भी फिर एक ही कारखाना, जबकि यह देह तो अनेक कारखानों से बनी हुई है। लाखों 'एलेम्बिक' के कारखानों से बनी हुई है, वह अपने आप चलते हैं। अरे! रात को खाना खाकर सो गया, फिर अंदर कितना पाचकरस पड़ा, कितना पित्त पड़ा, कितना बॉइल पड़ा, उसका पता लगाने जाता है तू? वहाँ तू कितना अलर्ट (जागृत) है? वहाँ तो अपने आप सारी क्रियाएँ होने के बाद सुबह पानी, पानी की जगह और संडास, संडास की जगह बाहर निकल जाते हैं और सभी तत्व रक्त में खिंच जाते हैं। तो क्या वह सब तू चलाने गया था? अरे! अंदर का जब अपने आप चल रहा है, तो क्या बाहर का नहीं चलेगा? ऐसा क्यों मानता है कि तू कर रहा है? वह तो चलता रहेगा। रात को नींद में शरीर सहज रहता है। लेकिन ये तो असहज! दिन में तो लोग कहते हैं कि 'मैं साँस लेता हूँ, ठीक से लेता हूँ, ऊँची साँस लेता हूँ और धीरे भी लेता हूँ' तब भैया रात में कौन साँस लेता है? रात में जो श्वासोच्छवास चलते हैं, वे नॉर्मल होते हैं। उससे अच्छी तरह से सारा पाचन होता है।

मनुष्य सिर्फ लट्टू हैं। मैं ज्ञानी हूँ लेकिन यह देह लट्टू है। ये जो लट्टू हैं, वे साँस से ही चल रहे हैं। साँस लेता है तब लट्टू घूमता है। घूमते-घूमते कभी पल्टी मारता है, तब हमें लगता है कि 'गया, गया' लेकिन फिर से सीधा होकर घूमने लगता है। ऐसा है यह सब!

नीम का पत्ता-पत्ता, डाल-डाल कड़वे होते हैं, उसमें उसका क्या पुरुषार्थ? वह तो बीज में जो पड़ा है, वही प्रकट होता है। वैसे ही मनुष्य अपने प्राकृत स्वभाव से व्यवहार करता है और 'मैंने किया' का सिर्फ अहंकार ही करता है, उसमें उसने क्या किया?

संसार में लोग जिसे पुरुषार्थ कहते हैं, वह तो भ्राँत भाषा है। रिलेटिव भाषा है। उदयकर्म के अनुसार होता है, उसे 'मैंने किया' कहता है, जो गर्व है, अहंकार है। रियल भाषा का पुरुषार्थ, जो यथार्थ पुरुषार्थ है वह पुरुष होने के बाद ही, स्वरूप का भान होने के बाद ही शुरू होता है। उसमें 'मैंने किया' यह भाव ही सारा खत्म हो चुका होता है। संपूर्ण अकर्ता पद होता है। सारा रिलेटिव प्रकृति है और रियल खुद पुरुष है। रियल पुरुषार्थ किसे कहते हैं? कोई हमारा हाथ काट रहा हो, तब हम 'खुद' ज्ञाता-दृष्टा पद में रहें, उसे। ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया ही आत्मा की क्रियाएँ हैं। अन्य सब जगह आत्मा अक्रिय है। आत्मा की और कोई क्रिया नहीं है और 'आत्मा' ज्ञान-दर्शन में ही रहे, वही पुरुषार्थ है।

कबीर जी की बीवी को बच्चा होनेवाला था। उससे पहले तो आंचल दूध से भर गया और बच्चा होते ही दूध की धारा बह निकली उसे देखकर कबीर जी बोले,

'प्रारब्ध पहले बना, पीछे बना शरीर,
कबीर, अचंभा ये हैं, मन नहीं बाँधे धीर।'

अविरोधाभासी अवलंबन

प्रारब्ध की रट लगाकर बैठे रहें ऐसा नहीं है, क्योंकि सिर्फ प्रारब्ध का अवलंबन लेकर बैठ जाएँ, तो बिल्कुल निष्क्रिय हो जाएँगे। उस अवलंबन से मन सीधा रहेगा ही नहीं। और यदि आपका प्रारब्ध का अवलंबन सही है, तो आपको एक भी चिंता

नहीं होनी चाहिए। लेकिन चिंता का तो कारखाना बनाया है। इसलिए सभी मार खाते हैं। ऐसे गलत अवलंबन लोगों को दिए गए हैं, इसीलिए तो हिन्दुस्तान की अवदशा हुई है। उसकी प्रगति कुंठित हो गई है। हम कोटि जन्मों की खोज के बाद संसार को एक्जैक्ट (यथार्थ) जैसा है वैसा, बता रहे हैं कि प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों ही पंगु अवलंबन हैं। सिर्फ 'व्यवस्थित' ही सही अवलंबन है, फैक्ट बात है, साइन्टिफिक है।

'व्यवस्थित' अर्थात् क्या? साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स के आधार पर जो जो होता है, वह 'व्यवस्थित' है। 'व्यवस्थित' का ज्ञान सभी अवस्थाओं में संपूर्ण समाधानकारी ज्ञान है। इसका आपको एक सादा उदाहरण देता हूँ। एक काँच का गिलास आपके हाथ से छूटने लगा, उसे बचाने के लिए आपने हाथ को ऊपर-नीचे करके अंत तक बचाने का प्रयत्न किया, फिर भी वह गिर पड़ा और टूट गया, तब उसे फोड़ा किस ने? आपकी तनिक भी इच्छा नहीं थी कि गिलास टूटे उल्टे आपने तो उसे अंत तक बचाने का प्रयत्न किया। तब क्या गिलास की खुद की इच्छा थी टूटने की? नहीं, उसे तो ऐसा हो ही नहीं सकता। और कोई हाज़िर नहीं है फोड़नेवाला, तो फिर फोड़ा किस ने? 'व्यवस्थित ने'। 'व्यवस्थित' एक्जेक्ट नियमानुसार चलता है। वहाँ अँधेरनगरी नहीं है। यदि 'व्यवस्थित' के नियम में ये गिलास टूटने ही नहीं होते, तो ये काँच के गिलास के कारखाने कैसे चलते? 'व्यवस्थित' को तो आपका भी चलाना है और कारखाने भी चलाने हैं और हज़ारों मज़दूरों का पेट भी पालना है। अतः नियम से गिलास टूटेगा ही, टूटे बिना रहेगा ही नहीं। तब अभागा, टूटने पर दुःखी होता है, गुस्सा करता है। अरे! नौकर के हाथों यदि टूट जाए और दो-चार मेहमान बैठे हों, तो मन में सोचता है कि कब मेहमान जाएँ और कब मैं नौकर को चार थप्पड़ जड़ दूँ? और फिर, ऐसा करता भी है! लेकिन यदि उसकी समझ में आ जाए कि नौकर ने नहीं तोड़ा, लेकिन 'व्यवस्थित' ने तोड़ा

है, तो होगा कुछ? संपूर्ण समाधान रहेगा या नहीं रहेगा? वास्तव में नौकर बेचारा निमित्त है। उसे ये सेठ लोग काटने दौड़ते हैं। निमित्त को कभी काटना नहीं चाहिए। निमित्त को काटकर तू अपना भयंकर अहित कर रहा है। जरा मूल रूट कॉज़ (मूल कारण) का पता लगा न? तो तेरा निबेड़ा आएगा।

मैं बचपन में ज़रा शरारती था। तो शरारत बहुत करता था। एक सेठ अपने पिल्ले के साथ बहुत खेलते थे। उस समय मैं पीछे जाकर, उन्हें पता नहीं चले ऐसे, कुत्ते की पूँछ जोर से दबा देता था। कुत्ता आगे सेठ को देखता और फटाक से उसे काट लेता। सेठ शोर मचाता। इसको कहते हैं, निमित्त को काटना।

आत्मा-अनात्मा

आपके शरीर में आत्मा है वह तो निश्चित है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी।

दादाश्री : तो वह किस रूप में होगा? मिक्स्चर या कम्पाउन्ड? ये आत्मा और अनात्मा मिक्स्चर के रूप में होंगे या कम्पाउन्ड रूप में?

प्रश्नकर्ता : कम्पाउन्ड!

दादाश्री : यदि कम्पाउन्ड रूप में हों, तो तीसरा नया ही गुणधर्मवाला पदार्थ उत्पन्न हो जाएगा, और आत्मा व अनात्मा उनके खुद के गुणधर्म ही खो देंगे। तब तो कोई आत्मा अपने मूलधर्म में आ ही नहीं सकेगा, और कभी भी मुक्त नहीं हो सकेगा। देखो मैं तुम्हें समझाता हूँ। यह आत्मा जो है, वह मिक्स्चर के रूप में रहा है और आत्मा व अनात्मा दोनों ही अपने-अपने गुणधर्म समेत रहे हुए हैं। उन्हें अलग किया जा सकता है। सोने में तांबा, पीतल, चाँदी आदि धातुओं का मिश्रण हो गया हो, तो कोई साइन्टिस्ट उनके गुणधर्मों के आधार पर

उन्हें अलग कर सकता है या नहीं? तुरंत ही अलग कर सकता है। उसी प्रकार आत्मा, अनात्मा के गुणधर्मों को जो पूर्ण रूप से जानते हैं, और अनंत सिद्धिवाले सर्वज्ञ, ऐसे जो ज्ञानी हैं, वे उनका पृथक्करण करके, उन्हें अलग कर सकते हैं। हम संसार के सबसे बड़े साइन्टिस्ट हैं। आत्मा और अनात्मा के एक-एक परमाणु का पृथक्करण करके, दोनों को अलग करके, एक ही घंटे में आपके हाथों में शुद्ध आत्मा दे देते हैं। ज्ञानी की प्रगट वाणी के अलावा बाहर जो 'आत्मा, आत्मा' बोला जाता हैं या पढ़ा जाता हैं, वह मिलावटी आत्मा है। शब्द ब्रह्म! हाँ, लेकिन शुद्ध नहीं।

ये सभी जो धर्म का पालन करते हैं वे अनात्मा के धर्म का पालन करते हैं। वे रिलेटिव धर्म हैं, शुद्ध आत्मा के धर्म नहीं हैं। आत्मा का एक भी गुणधर्म यदि नहीं जाना है, तो आत्मधर्म का पालन कैसे कर सकते हैं? वह तो जब तक ज्ञानीपुरुष आपको थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी में से रियलिटी में नहीं लाते, तब तक रियल धर्म का पालन नहीं किया जा सकता। ये हमारे 'महात्मा' आपके अंदर बिराजे भगवान को देख सकते हैं। क्योंकि हमने उन्हें दिव्यचक्षु दिए हैं। आपके जो चक्षु हैं वे चर्मचक्षु हैं, उनसे सारी विनाशी चीज़ें दिखती हैं। अविनाशी भगवान तो दिव्यचक्षु से ही दिखेंगे।

दिव्यचक्षु से मोक्ष

श्रीकृष्ण भगवान ने महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन को दिव्यचक्षु दिए थे। लेकिन केवल पाँच ही मिनट के लिए, उनका वैराग्य टालने के लिए उसके बाद वापस ले लिए थे। हम आपको परमानेन्ट दिव्यचक्षु देते हैं। फिर जहाँ देखोगे वहाँ भगवान दिखेंगे। हममें दिखेंगे, इनमें दिखेंगे, पेड़ में दिखेंगे और गधे में भी दिखेंगे। प्रत्येक जीव में दिखेंगे, सब जगह आत्मवत् सर्व भूतेषु ही दिखाई देंगे, फिर है कोई झंझट?

तीन सौ साल पहले हुए, जैनों के बहुत बड़े आचार्य महाराज आनंदघन जी क्या कह गए हैं, 'इस काल में दिव्यचक्षु का, निश्चय से वियोग हो चुका है।' इसलिए सभी ने दरवाजे बंद कर लिए। यह तो कुदरती ही ग़ज़ब का ज्ञान उत्पन्न हो गया है, नैचुरल एडजस्टमेन्ट है। जिससे घंटे भर में ही दिव्यचक्षु प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान क्या कहते हैं? मोक्षमार्ग अति, अति, अति, सौ बार अति दुर्लभ, दुर्लभ, दुर्लभ है, लेकिन यदि ज्ञानीपुरुष मिल जाएँ तो खिचड़ी बनाने से भी अधिक सरल है।

हमारी यह बात आपका आत्मा ही कबूल करेगा, यदि आप में आड़ापन नहीं रहा तो, क्योंकि आपके अंदर, मैं ही बैठा हुआ हूँ। हमें आप में और हमारे में कोई भेद नहीं लगता। ये सब लोग 'श्रद्धा रखो, श्रद्धा रखो' ऐसे कहते हैं। लेकिन भैया मुझे श्रद्धा नहीं बैठती इसका क्या? व्याख्यान या प्रवचन में से नीचे उतरा कि धोती झाड़कर सोचता है कि आज बैंगन बहुत सस्ते हो गए हैं। हमारे पास श्रद्धा नहीं रखनी है। यदि तेरे भीतर आत्मा है और आड़ापन नहीं है, तो तुझे श्रद्धा अवश्य आनी ही चाहिए, क्योंकि यह तो ज्ञानी की डाइरेक्ट ज्ञानवाणी है, जो तेरे सारे आवरणों को तोड़कर सीधे तेरे आत्मा तक पहुँचती है और इसलिए तेरे आत्मा को कबूल करनी ही पड़ती है। हमारी बात तेरी समझ में आ ही जाती है!

श्रद्धापूर्वक की बात और समझपूर्वक की बात में अंतर है। समझपूर्वक की बात हो, तभी सामनेवाला मानता है।

पुनर्जन्म

हम औरंगाबाद से प्लेन में आ रहे थे। एक फ्रेन्च साइन्टिस्ट मिला जो माइक्रोबायोलॉजिस्ट था। वह हम से पूछने लगा, 'आप इन्डियन लोग 'रीबर्थ' में विश्वास करते हैं, वैसा हम लोग नहीं

मानते। आप मुझे इसके बारे में समझाएँगे कि ऐसा किस प्रकार से है? आप कहें उतना समय मैं आपके साथ इन्डिया में रहने को तैयार हूँ।' हमने पूछा, 'आप कितने समय तक रह सकते हैं?' फ्रेन्च साइन्टिस्ट ने बताया, 'पाँच साल, दस साल।' मैंने कहा, 'नहीं, नहीं, इतना सारा टाइम हमारे पास नहीं है।' इस पर उसने कहा, 'छह महीने में?' हमने कहा, 'भैया, हम बेकार थोड़े ही बैठे हैं? हमें बहुत काम हैं। सारे संसार का कल्याण करना है। उसके हम निमित्त हैं। ऐसा कीजिए, घंटेभर में हम सांताक्रूज एयरपोर्ट पर उतरेंगे, तब आप पुनर्जन्म में मानने लगेंगे।' हमने उसे प्लेन में ही साइन्टिफिकली समझा दिया और वह सच समझ गया। और सांताक्रूज जब उतरे तब 'सच्चिदानंद सच्चिदानंद' बोलने लगा। अरे! अपनी लेडी को भी भूल गया। हमारे फोटो खींचकर साथ ले गया।

मन-वचन-काया, इफेक्टिव

ये मन-वचन-काया इफेक्टिव हैं या अन्इफेक्टिव? इफेक्टिव हैं। जन्म से ही इफेक्ट्वि हैं। गर्भ में भी इफेक्ट्वि हैं। इफेक्ट्वि कैसे? यदि सवेरे किसी ने कह दिया कि तुम कमअक्ल हो, तो रात दस बजे भी मन सोने नहीं देता और इफेक्ट शुरू हो जाता है, ऐसा क्यों? तब कहे, मन इफेक्टिव है, इसलिए। बाकी वाणी तो प्रत्यक्ष रूप से इफेक्टिव है। यदि किसी को एक गाली सुनाई, तो पता चल जाएगा तुरंत ही और तीसरा, यह देह भी इफेक्टिव है, सर्दी में ठंड लगती है, गरमी में गरमी लगती है। नवजात शिशु को ठंड में ओढ़ाया गया कपड़ा यदि हट जाए, तो तुरंत रोने लगता है और फिर ओढ़ाने पर चुप हो जाता है। मुँह में मीठा देने पर चाटने लगता है और कड़वा रखने पर मुँह बिगाड़ता है। ये सारे इफेक्ट्स (असर) ही हैं केवल। अरे, गर्भ में भी इफेक्ट्वि होता हैं। इसका मेरा खुद का देखा हुआ दृष्टांत बताता हूँ। पचास साल पहले की बात है। हमारे भादरण

गाँव में एक महिला को आठवाँ महीना चल रहा था। राह चलते उसे गाय ने सींग मार दिया और सींग गर्भाशय में लगा और बच्चे की उँगली बाहर निकल आई, ज़रा सी। डॉक्टरों को बुलाया गया। उस वक्त मिशनरी के उन डॉक्टरों के लिए बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गई। महिला की स्थिति गंभीर होती जा रही थी। उतने में गाँव की एक सत्तर-अस्सी साल की बुढ़ी अम्मा को इसका पता चला, तो वे लाठी ठोकते-ठोकते वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने सबको कहा कि तुम सब दूर हट जाओ और आराम से बैठ जाओ भगवान का नाम लो और देखो कि क्या होता है। उन्होंने एक सूई ली और उसकी नोक को गरम किया और बाहर निकली उँगली को ज़रा सा छुआया कि पट्ट से उँगली अंदर चली गई। अंदर बच्चे को इफेक्ट हुआ और उसने उँगली अंदर खींच ली!

इफेक्ट है, तो कॉज़ अवश्य होना ही चाहिए। कॉज़ेज हैं, तो इफेक्ट्स हैं, और इफेक्ट्स हैं, तो कॉज़ेज होने ही चाहिए। इस प्रकार कॉज़ेज़ और इफेक्ट्स, इफेक्ट्स और कॉज़ेज़ की परंपरा चलती ही रहती है।

कारण के बिना कार्य नहीं होता और कार्य हो, तो कारण होना ही चाहिए। पूर्वजन्म के कारण की वजह से आज की देह है, वह कार्यस्वरूप देह है। जन्म होता है, तब स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर, ऐसे दो शरीर साथ में होते हैं। लेकिन बाद में उनसे जो इफेक्ट होता है, उसमें राग-द्वेष करके दूसरे नये कारण पैदा करता है और अलगे जन्म के बीज बोता है, ऐसे अंततः मरते दम तक 'कारण शरीर' उत्पन्न करता रहता है। मरता है तब कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर के साथ आत्मा छूट जाता है और स्थूल शरीर यहाँ पड़ा रहता है। उस 'कारण-शरीर' में से, उसे फिर से, 'कार्य-शरीर' मिल ही जाता है, ऑन द वेरी मॉमेन्ट (तत्काल)।

यदि पुनर्जन्म नहीं होता और सभी को भगवान ने गढ़ा

होता, तो सभी एक सरीखे होते। एक ही साँचे में से निकले हों वैसे एक सरीखे ही होते। लेकिन यह तो एक बड़ा और एक छोटा, एक लंबा और एक नाटा, एक गोरा, एक काला, एक गरीब, एक श्रीमंत ऐसे होते हैं। भगवान ने बनाया होता, तो वैसा नहीं होता। उन सभी में जो फर्क दिखता है, वह उनके पूर्वजन्म के आधार पर है। पूर्व के कॉज़ेज़ के आधार पर आज के ये अलग-अलग इफेक्ट्स हैं केवल। प्रत्येक के कॉज़ेज़ अलग इसलिए इफेक्ट्स भी अलग-अलग। यदि पुनर्जन्म नहीं है, तो एक भी ऐसा सबूत दिखाइए कि जो उसका समर्थन करता हो। ये अंग्रेज लकी और अनलकी बोलते हैं, वह क्या है? मुस्लिम तकदीर और तदबीर कहते हैं, वह क्या सूचित करता है? इन सबकी भाषा पूर्ण है, लेकिन बिलीफ (मान्यता) अपूर्ण है। ऐसे शब्द कहाँ होते हैं? जहाँ पुनर्जन्म होता है, वहीं पर इनका प्रयोग होता हैं।

जैसे कॉज़ेज़ उत्पन्न किए हों, वैसे ही इफेक्ट्स आते हैं। अच्छों का अच्छा और बुरों का बुरा। लेकिन अंत तक छूट तो सकते ही नहीं। वह तो कॉज़ेज़ का होना बंद होगा, तभी इफेक्ट्स बंद होंगे। लेकिन जब तक 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा है, तब तक कॉज़ेज़ बंद होंगे ही नहीं। वह तो ज्ञानीपुरुष झकझोरकर जगाएँ और स्वरूप का भान कराएँ, तब कॉज़ेज़ बंद होते हैं। हम, कारण शरीर का नाश कर देते हैं। फिर इस 'चंदूलाल' के जितने भी इफेक्ट्स हैं, उनका निकाल कर देना, फिर उन इफेक्ट्स का निकाल करते हुए भी आपको राग-द्वेष नहीं होंगे, इसलिए नये बीज नहीं डलेंगे। हाँ, इफेक्ट्स तो भुगतने ही होंगे। इफेक्ट्स तो इस संसार में कोई बदल ही नहीं सकता। यह कम्पलीट साइन्टिफिक चीज़ है। अच्छे-अच्छे साइन्टिस्टों को भी मेरी बात कबूल करनी ही पड़ेगी।

इस कलियुग में, दूषमकाल में ग़ज़ब का आश्चर्यज्ञान प्रकट हुआ है। इस आश्चर्यकाल के हम अक्रम ज्ञानी हैं और ऐसा हमें

खुद बोलना पड़ रहा है। हीरे को खुद की पहचान कराने, खुद को बोलना पड़े, ऐसा यह वर्तमान आश्चर्यजनक काल है।

आधि - व्याधि - *उपाधि*

सारा संसार त्रिविध ताप से सुलग रहा है। अरे! पेट्रोल की अग्नि से धाँय-धाँय जल रहा है। वे तीन ताप कौन से? आधि, व्याधि और *उपाधि* (बाहर से आनेवाला दु:ख)।

पेट में दुख रहा हो वह व्याधि। भूख लगे, वह व्याधि। आँखें दुख रही हों, वह व्याधि। शारीरिक दु:ख व्याधि कहलाते हैं।

मानसिक दु:ख आधि कहलाते हैं। सारा दिन चिंता करते रहें, वह आधि। और बाहर से आ धमके, वह *उपाधि* कहलाता है। इस समय यहाँ बैठे हैं और कोई पत्थर मारे वह *उपाधि*। कोई हमें बुलाने आया वह *उपाधि*। *उपाधि* बाहर से आती है, वह अंदर से नहीं होती।

सारा संसार, फिर चाहे वह साधु हो या सन्यासी हो, फिर भी त्रिविध ताप से सुलग रहे हैं। हमने जिन्हें ज्ञान दिया है, उन्हें तो निरंतर समाधि रहती है। जिन्हें शुद्धात्मा पद प्राप्त है, वे निरंतर स्वरूप में ही रहते हैं, उन्हें हर अवस्था में समाधि रहती है, क्योंकि वे तो प्रत्येक अवस्था को 'देखते' और 'जानते' हैं।

यह कैसा है कि यदि आप अन्य किसी के घर में घुस जाएँ, तो मन में घबराहट होती है या नहीं? होती ही है। 'अभी कोई निकाल बाहर करेगा, धमकाएगा', ऐसा भय निरंतर रहा ही करता है। लेकिन यदि अपने ही घर में बैठे हैं, तो है कोई चिंता? शांति ही होगी न अपने घर में तो? वैसा ही है यह। 'चंदूलाल', आपका घर नहीं हो सकता। आप खुद क्षेत्रज्ञ पुरुष हो और भ्राँति से पराये क्षेत्र में क्षेत्राकार हो गए हो। 'पर' के स्वामी बन बैठे हो और ऊपर से, पर के भोक्ता बन बैठे हो।

इसलिए निरंतर चिंता, *उपाधि,* आकुलता और व्याकुलता रहा करती है। पानी से बाहर निकाली गई मछली की तरह छटपटाहट, छटपटाहट रहती है। ये सेठ लोग डनलप के गद्दों पर सोते हैं, मच्छरदानी लगाते हैं और एक-एक खटमल को हटवाकर सो जाते हैं, फिर भी सारी रात करवटें बदलते रहते हैं। ढाई मन का बोरा (शरीर) इधर घुमाए, उधर घुमाए। रातभर अंदर चुन-चुन होती रहती है, करे भी तो क्या करे बेचारा? थोड़े ही कहीं खटिया से ऊपर हवा में सोएगा?

संसार और ब्रह्म

यह संसार सत्य होगा या इल्यूज़न (मिथ्या)?

प्रश्नकर्ता : इल्यूज़न।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। देखिए, मैं आपको समझाता हूँ कि इल्यूज़न क्या है? इल्यूज़न यानी पानी दिखाई दे, और धोती ऊपर करके चले, लेकिन धोती भीगे नहीं। चारों और आग ही आग दिखाई दे, लेकिन जले नहीं। वह इल्यूज़न कहलाता है। कुछ कहते हैं, 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या'। यदि मिथ्या है, तो अंगारों में हाथ डालकर देख न? तुरंत ही मालूम हो जाएगा कि मिथ्या है या नहीं? यदि मिथ्या होता, तो यदि किसी ने कहा हो, 'चंदूलाल में अक्ल नहीं है', तो वह बात वहीं की वहीं मिथ्या सिद्ध हो जानी चाहिए। मिथ्या किसे कहते हैं कि वही की वही, उसी क्षण उसका असर, इफेक्ट साबित हो जाए। उदाहरण के तौर पर, दीवार पर ईंट फेंकी, तो तुरंत ही दीवार पर असर के रूप में गड्ढा या लाल निशान तो बन ही जाएगा। इसी प्रकार रात दो बजे 'चंदूलाल' के जागते ही इफेक्ट शुरू हो जाता है 'मुझे ऐसा कहा था,' तो फिर उसे मिथ्या कैसे कहा जाए? हम कहते हैं कि संसार भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है। संसार रिलेटिव सत्य है और ब्रह्म रियल सत्य है। यह हमारी त्रिकाल

सत्‌वाणी है। संसार का यह रिलेटिव सत्य कब असत्य हो जाए, यह कहा नहीं जा सकता। ऑल दीज रिलेटिव्ज़ आर टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट्स और ब्रह्म रियल सत्य है, परमानेन्ट है, शाश्वत है।

मन-वचन-काया का भूतावेश

प्रत्येक मनुष्य को मन-वनच-काया, इन तीनों का भूतावेश है। इसलिए वह बोलता है, 'मैं चंदूलाल हूँ, कलक्टर हूँ, इसका पति हूँ, इसका बाप हूँ।' भैया! क्या सदा कलेक्टर है? तब कहे, 'नहीं रिटायर होनेवाला हूँ न?' तो यह नया भूतावेश। कोई शराबी शराब पीकर गटर में लुढ़ककर क्या बोलता है, 'मैं सयाजीराव गायकवाड़ हूँ, मैं राजा हूँ, महाराजा हूँ।' इस पर हम समझ जाते हैं कि वह नहीं बोल रहा है, लेकिन यह शराब का नशा बोल रहा है। वैसे ही मन-वचन-काया के तीन भूतों का भूतावेश है। इसलिए उनका अमल (नशा) बोल रहा है, 'मैं चंदूलाल हूँ, कलक्टर हूँ' और उस नशे में वह झूमता है।

एक सत्य घटना बता रहा हूँ। काशी नाम की एक महिला थी जो पड़ोसनों के साथ हँसी-ठिठोली कर रही थी और फिर एकदम से वह आवेश में हिलने लगी और विचित्र रूप से आँखें घुमाने लगी। इससे सभी घबरा गए। उनमें से एक ने कहा, 'इसे तो भूतावेश है, ओझा को बुलाओ।' उसका पति फिर ओझा को बुला लाया। ओझा ने तो देखते ही भाँप लिया कि इसे भूतावेश है। इसलिए उसने तो सट-सट चाबुक मारना शुरू कर दिया। वह महिला चिल्लाने लगी। तब ओझा ने पूछा, 'कौन है तू?' काशी ने जवाब दिया, 'आई एम चंचल, आई एम चंचल।' ओझा समझ गया। उसने पूछा, 'क्यों आई है तू?' इस पर काशी बोली, 'इस काशी ने मेरे पति को अपने रूप में फँसाया है।' अरे! काशी को तो अंग्रेजी की ए-बी-सी-डी तक नहीं आती और यह फर्राटे से अंग्रेजी कैसे बोल रही है, 'आई एम चंचल, आई एम चंचल।' फिर जाँच-पड़ताल करने पर पता चला कि चंचल अंग्रेजी पढ़ी-

लिखी थी और अच्छी अंग्रेजी बोलती थी। फिर ओझा ने उसे मारा, बहलाया, फुसलाया और फिर उसके बताए अनुसार चीजें गाँव के सीमावर्ती बरगद के पेड़ के कोटर में छोड़ आया और चंचल के भूतावेश से मुक्ति दिलाई।

ऐसा है यह भूतावेश। चंचल तो चली गई, लेकिन वह साँटे बनी रहीं। मार के निशान बने रहे काशी के शरीर पर। उस बेचारी को जलन और पीड़ा होती रही, घाव भरने तक।

ये मन-वचन-काया के तीन भूत जो आपको लगे हैं, उनके हम ओझा हैं। उन तीनों के भूतावेश से हम आपको मुक्त करा देते हैं। हाँ, जब तक घाव भरेंगे नहीं, तब तक उनका असर रहेगा, लेकिन भूतों से आप सदा के लिए मुक्त हो जाएँगे।

ये मन-वचन-काया भूतावेश हैं, इतना यदि तू समझ गया, तो पैंतालीस में से पच्चीस आगम (जैनों के शास्त्र) तूने पढ़ लिए।

घर-गृहस्थी, बीवी-बच्चे या कपड़े छोड़ना ज़रूरी नहीं है। इन तीनों भूतों का भूतावेश है, उन्हीं से छूटने की ज़रूरत है।

आगम-निगम

आगम (शास्त्र) तो गुरु गम (ज्ञानी गम) के बिना पढ़े ही नहीं जाने चाहिए। आगम की गम (समझ), ज्ञानी को ही होती है। खुद अगम, उसे आगम की गम कैसे आएगी? 'हमें' तो आगम-निगम सब सुगम ही होते हैं।

पूरण-गलन

रियल 'मैं' को खोज निकाल। 'मैं-मैं' क्या करता है? यह बकरी भी 'मैं-मैं' करती है और तू भी 'मैं हूँ-मैं हूँ' करता है। ऐसा किसे कहता है? इस देह को, देह तो *पूरण-गलन* (चार्ज होना-डिस्चार्ज होना) है। चढ़ना-उतरना तो संसार का स्वभाव है। हर किसी का मानना है कि पैसे जमा करने चाहिए। लेकिन वह

भी तो *पूरण-गलन* ही है। बैंक में दो अकाउन्ट होते हैं या एक? दो! क्रेडिट और डेबिट! तब भैया तू सिर्फ क्रेडिट ही क्यों नहीं रखता? नहीं रख सकते। नियम से ही, जिस-जिसका *पूरण* होता है, उसका *गलन* होना ही है। हम जो खाते हैं, वह *पूरण* है और संडास जाते हैं, वह *गलन* है। पानी पीते हैं, वह *पूरण* है और बाथरूम जाते हैं, वह *गलन* है। मन में विचारों का आना-जाना भी *पूरण-गलन* ही है।

भोजनालय-शौचालय, *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा ! इसके अलावा ज्ञानी को इस संसार में कुछ दिखता ही नहीं। भोजना यानी भोगने की, इस्तेमाल करने की चीज़, शौचालय यानी भोगने के बाद छोड़ देने की चीज़। शेष रहा, वह *पूरण-गलन* और शुद्धात्मा। इसमें सभी का समावेश हो जाता है।

यह अकर्मी तो खाता ही रहता है, और फिर जुलाब हो जाता है। यदि इस प्रकार उसका *गलन* नहीं हो तो? गैस और अपच। वैसा ही हाल पैसों का होनेवाला है, इसका किसी को भी भान नहीं है। किसी भी प्रकार का *गलन* नहीं हुआ हो, ऐसा कोई हो, तो उसे खोज निकाल। महीसागर नदी भी नर्मदा से कहती है, मेरे यहाँ जल खूब आता है और जाता है। लेकिन गरमी का मौसम आते ही वहाँ भी आर-पार। मैंने कई डॉक्टरों से पूछा हुआ है कि ये जो नाखून बढ़ते हैं, उनका क्या कारण है? इस पर वे कुछ भी कह देते हैं, कैल्शियम के कारण आदि। लेकिन ऐसा नहीं है। सही अर्थों में तो वह *गलन* ही है। आहार में हड्डियों के सांयोगिक पदार्थ आ मिलते हैं। जिससे हड्डियों का *पूरण* होता रहता है। उसका नाखूनों के ज़रिए फिर *गलन* होता है। जो निरुपयोगी होता है, उसका *गलन* नियम से हो ही जाता है। वैसे ही इस देह में भी परमाणुओं का *पूरण-गलन* होता ही रहता है। इंसान जब दस साल का था, तब उस देह में जो परमाणु थे, उनमें से एक भी परमाणु पच्चीसवें साल की देह में

नहीं होते। पुराने परमाणुओं का *गलन* होता है और नये का *पूरण* होता है। *पूरण-गलन* की परंपरा अविरत रूप से चलती ही रहती है।

पाप का *पूरण* करते हैं, फिर जब उसका *गलन* होगा, तब पता चलेगा। तब तुम्हारे छक्के छूट जाएँगे। अंगारों पर बैठे हों ऐसा अनुभव होगा। पुण्य का *पूरण* करेगा और जब उसका *गलन* होगा, तब जानोगे कि कैसा अनोखा आनंद आता है? अतः जिस-जिसका *पूरण* करो, तब सोच-विचारकर करना कि *गलन* होने पर परिणाम क्या होगा! *पूरण* करते समय निरंतर ख्याल रखना। पाप करते समय, किसी से धोखा करके पैसा जमा करते समय निरंतर ख्याल रखना कि उसका भी *गलन* होनेवाला है। वह पैसा बैंक में रखोगे, तो वह भी जानेवाला तो है ही। उसका भी *गलन* तो होगा ही, लेकिन वह पैसा जमा करते समय जो पाप किया, जो रौद्र ध्यान किया, वह उसकी दफाओं के साथ आनेवाला है। जब उसका *गलन* होगा, तब तुम्हारा क्या हाल होगा? किसी के रोकने से लक्ष्मी जी रुकनेवाली नहीं हैं। लक्ष्मी जी तो भगवान की पत्नी हैं। उन्हें भी रोके रखने में लगे हो? पहली बार गौने के लिए आई बहू को यदि ससुराल से वापस मायके नहीं जाने दें, तो क्या हाल होगा उस बेचारी का? ऐसा व्यवहार लोग लक्ष्मी जी के साथ करने लगे हैं। इसलिए लक्ष्मी जी भी अब ऊब गईं हैं। बड़ौदा के स्टेशन पर जब लक्ष्मी जी हमें मिलती हैं, तब हाथ जोड़कर कहते हैं कि 'मामा की पोल और छठा घर, जब पधारना चाहें पधारिएगा और जब जाना चाहें तब चले जाइएगा।' वे हमसे कहतीं हैं कि 'मैं सेठ लोगों से अब बहुत ही त्रस्त हो गई हूँ इसलिए अब मैं आपके महात्माओं के घर ही जाऊँगी, क्योंकि आपके महात्माओं के वहाँ जाती हूँ, तब फूलमाला से मेरा स्वागत करते हैं और वापस लौटती हूँ, तब भी फूलमाला पहनाकर बिदा करते हैं। जो-जो लोग मुझे रोककर रखते हैं, अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी और जो लोग मेरा तिरस्कार

करते हैं, वहाँ पर तो कितने ही जन्मों तक मैं पैर तक नहीं रखूँगी।' रुपये तो आते हैं और जाते हैं। दस साल के बाद वह लक्ष्मी नहीं रहती। वह तो परिवर्तित होती ही रहती है।

सारा का सारा संसार आकुलता और व्याकुलता में ही फँसा हुआ है। फिर चाहे वह त्यागी हो या संसारी, निराकुलता किसी जीव को रहती ही नहीं। निराकुलता तो 'स्वरूप' का भान होने के बाद ही उत्पन्न होती है। क्रमिकमार्ग में निराकुलता की प्राप्ति अर्थात् सारा संसार रूपी समुद्र पार करके सामनेवाले किनारे पर पहुँचे, तब निराकुलता का किनारा आता है, कितनी मेहनत करनी पड़ती है? इस अक्रममार्ग में तो, यहाँ हमने आपके सिर पर हाथ रख दिया कि सदा के लिए निराकुलता उत्पन्न हो जाती है।

सांसारिक विघ्न निवारक 'त्रिमंत्र'

मंत्र का सही अर्थ क्या है? मन को शांत रखे, वह। भगवान की भक्ति करते हुए संसार में विघ्न न आएँ, इसलिए भगवान ने तीन मंत्र दिए थे। १. नवकार मंत्र २. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ३. ॐ नमः शिवाय। उसमें भी अहंकारी लोगों ने नये-नये संप्रदाय रूपी बाड़ बनाकर, मंत्रों को भी बाँट लिया। भगवान ने कहा था कि 'तुम अपनी सहूलियत के लिए चाहो, तो मंदिर-जिनालय बाँट लेना, लेकिन मंत्रों को तो साथ ही रखना।' लेकिन उन्हें भी इन लोगों ने बाँट लिया। अरे! ये लोग तो यहाँ तक पहुँचे कि एकादशी भी बाँट ली। शिव की अलग और वैष्णवों की अलग। इससे भगवान कैसे राज़ी रहेंगे? जहाँ मतभेद और कलह होता हो, वहाँ भगवान नहीं रहते। हमारे द्वारा दिए गए इस त्रिमंत्र में तो ग़ज़ब की शक्ति है। माँगते ही मेह बरसे, ऐसा है। सभी देवी-देवता राज़ी रहते हैं और विघ्न नहीं आते। सूली का घाव सूई जैसा लगता है। संपूर्ण रूप से निष्पक्षपाती है।

यह हमारा दिया हुआ त्रिमंत्र, सुबह हमारा चेहरा (दादाजी

का) याद करके पाँच बार बोलोगे, तो कभी डूबोगे नहीं और धीरे-धीरे मोक्ष भी मिलेगा। इसकी हम ज़िम्मेदारी लेते हैं।

हम तो कहते हैं कि सारे संसार के दुःख हमें हों। आपकी यदि शक्ति है, तो ज़रा सा भी अंतरपट रखे बगैर, आपके सारे दुःख हमारे चरणों में अर्पण कर जाइए। फिर यदि दुःख आए, तो हमसे कहना। लेकिन इस काल में मुझे ऐसे भी लोग मिले हैं, जो कहते हैं कि आपको यदि दुःख दे दें, तो हमारे पास क्या बचेगा? लेकिन उसे खुद मालूम नहीं कि वह खुद ही अनंत सुख का कंद है। अतः दुःख अर्पण कर देगा, तो निरा अपार सुख ही बचेगा, लेकिन किसी को दुःख अर्पण करना भी नहीं आता।

'मनुष्य रूपेण मृगाश्चरंति' ऐसा कहीं लिखा है। इसमें मारे डर के मृग शब्द का प्रयोग किया गया है, अब ३२ अंक पर गधा बनता है और ३३ अंक पर मनुष्य बनता है। तो एक अंक तो देह में खर्च हो गया, फिर रहा क्या शेष? गुण तो गधे के ही न? दिखता मनुष्य है, लेकिन भीतरी गुण पाशवी होते हैं, मतलब वह पशु ही है। हम साफ कह देते हैं, क्योंकि हमें न तो कुछ चाहिए, न कोई लालच है। हमें तो केवल आपका हित ही देखना है। आपके ऊपर हमारी अपार करुणा होती है, इसलिए हम नग्न सत्य बता देते हैं। इस दुनिया में सिर्फ हम ही नग्न सत्य बताते हैं।

चिंता और अहंकार

श्रीकृष्ण कहते हैं:

जीव तू शीदने शोचना करे, (जीव तू काहे शोच करे,)
कृष्णने करवुं होय ते करे। (कृष्ण को करना हो सो करे।)

तब ये लोग क्या कहते हैं? कृष्ण को तो जो कहना हो सो कहा करें, लेकिन हमें यह संसार चलाना है, इसलिए चिंता

किए बगैर थोड़े ही काम होगा? लोगों ने चिंता के कारखाने खोले हैं। लेकिन वह माल ही नहीं बिकता, कैसे बिकेगा? जहाँ बेचने जाएँ वहाँ भी चिंता का ही कारखाना होता है न? इस संसार में ऐसा एक भी व्यक्ति खोज लाइए कि जिसे चिंता नहीं होती हो।

एक ओर कहते हैं 'श्री कृष्ण शरणं ममः' और दूसरी ओर कहते हैं, 'हे कृष्ण! मैं तेरी शरण में हूँ।' यदि कृष्ण की शरण ली है, तो फिर चिंता क्यों? महावीर भगवान ने भी चिंता करने को मना किया है। उन्होंने तो एक चिंता का फल तिर्यंचगति बताया है। चिंता तो सबसे बड़ा अहंकार है। 'मैं ही यह सब चलाता हूँ' ऐसा भीतर रहा करता है, उसके फल स्वरूप चिंता खड़ी होती हैं।

भगवान का सच्चा भक्त तो चिंता होने पर भगवान को भी डाँटे कि आप मना करते हैं, फिर भी मुझे चिंता क्यों होती है? जो भगवान से नहीं लड़ता, वह भगवान का सच्चा भक्त नहीं है। यदि कोई झंझट पैदा हो, तो आपके भीतर के भगवान से लड़ना, झगड़ना। भगवान को भी डाँटे वह सच्चा प्रेम है। आज तो भगवान का सच्चा भक्त मिलना ही मुश्किल है। सभी अपनी-अपनी ताक में लगे हैं।

'मैं ही करता हूँ, मैं ही करता हूँ' ऐसा किया करते हैं, इसलिए चिंता होती है। नरसिंह महेता क्या कहते हैं।

'हुं करुं, हुं करुं ए ज अज्ञानता, शकटनो भार ज्यम श्वान ताणे,
सृष्टि मंडाण छे सर्व एणी पेरे, जोगी जोगेश्वरा कोक जाणे।'

(मैं करता हूँ, मैं करता हूँ' यही अज्ञानता, शकट
(बैलगाड़ी) का भार ज्यों श्वान (कुत्ता) ढोए,
पूरी सृष्टि सर्जित हुई इसी तरह, योगी योगेश्वरा कोई ही जानें।)

यह पढ़कर योगी फूले नहीं समाए। मगर भैया, यह तो

आत्मयोगी और आत्मयोगेश्वर के लिए कहा गया है। आत्मयोगेश्वर तो हज़ारों-लाखों वर्षों में एक ही प्रकट होते हैं। सिर्फ वही पूरे ब्रह्मांड के प्रत्येक परमाणु में घूम चुके होते हैं और ब्रह्मांड में और ब्रह्मांड से बाहर रहकर प्रत्येक परमाणु से अवगत होकर, देखकर कहते हैं। सिर्फ वही जानते हैं कि यह संसार किसने बनाया, कैसे बना और कैसे चल रहा है? 'हम इस काल के आत्मयोगेश्वर हैं।' इसलिए तू अपना काम निकाल ले। एक घंटे में तो तेरी सारी की सारी चिंताएँ मैं ले लेता हूँ और गारन्टी देता हूँ कि एक भी चिंता हो, तो वकील रखकर मेरे ऊपर कोर्ट में केस चलाना। ऐसे चौदह सौ महात्माओं को हमने चिंतारहित बना दिया है। अरे! तू माँग! माँगे सो दे सकता हूँ, लेकिन ज़रा सीधा माँगना। ऐसा माँगना कि जो कभी तेरे पास से जाए नहीं। कोई नाशवंत चीज़ मत माँगना। सदैव रहे ऐसा सुख माँग लेना।

परसत्ता का उपयोग करने से चिंता होती है। परदेश की कमाई परदेश में ही रहेगी। ये मोटर, बंगले, मिलें, बीवी-बच्चे सब यहीं छोड़कर जाना हैं। अंतिम स्टेशन पर तो किसी के बाप का भी चलनेवाला नहीं है न? मात्र पुण्य और पाप साथ में ले जाने देंगे। दूसरी सादी भाषा में तुझे समझाऊँ, तो तूने यहाँ जो-जो गुनाह किए होंगे, उनकी धाराएँ साथ जाएँगी। गुनाहों की कमाई यहीं रहेगी और फिर मुकदमा चलेगा। उन धाराओं के आधार पर नई देह प्राप्त करके, फिर से नये सिरे से कमाई करके कर्ज़ चुकाना होगा। इसलिए, पहले से ही सावधान हो जा न! स्वदेश में (आत्मा में) तो बहुत ही सुख है, लेकिन स्वदेश देखा ही नहीं है न?

ये हमारे बाल तक हमारे नहीं हुए, तो और क्या हो सकेगा हमारा? फिर भी अकर्मी सारा दिन सिर पर हाथ फेरता रहता है।

चिंता ही अहंकार है। किसी बच्चे को चिंता क्यों नहीं होती?

क्योंकि वह जानता है कि मैं नहीं चलाता। कौन चला रहा है, इसकी उसे परवाह भी नहीं है। और ये सब चिंता करते हैं, वह भी पड़ोसी को देखकर। पड़ोसी के घर गाड़ी और अपने घर में नहीं! जीवन निर्वाह के लिए कितना चाहिए? तू एक बार निश्चित कर ले कि इतनी इतनी मेरी आवश्यकताएँ है। उदाहरणार्थ, घर में खाना-पीना पर्याप्त होना चाहिए, रहने को घर चाहिए, घर चलाने के लिए पर्याप्त मात्रा में धन चाहिए। फिर उतना तो तुझे मिल ही जाएगा। लेकिन यदि पड़ोसी के बैंक में दस हज़ार जमा हो, तो तुझे अंदर चुभता रहता है। इससे तो दु:ख पैदा होते हैं। तू खुद ही दु:ख को न्यौता देता है।

एक जमींदार मेरे पास आया और मुझसे पूछने लगा कि जीवन जीने के लिए कितना चाहिए? मेरी हज़ार बीघा ज़मीन है, बंगला है, दो कारें है और बैंक बैलेन्स भी काफी है। इसमें से मुझे कितना रखना चाहिए? मैंने कहा, 'देख भैया प्रत्येक की ज़रूरत कितनी होनी चाहिए इसका ख्याल उसके जन्म के समय कितना वैभव था, इस पर से आता है। इसके आधार पर तू सारी ज़िंदगी की ज़रूरत तय करना। यही नियम है, दरअसल। बाकी तो सब एक्सेस (ज़रुरत से ज़्यादा) में जाता है और एक्सेस तो ज़हर है, मर जाएगा।'

प्राप्त को भोगो

कृष्ण भगवान ने क्या कहा है, 'प्राप्त को भोग, अप्राप्त की चिंता मत करना।' मैं एक बार अहमदाबाद में एक सेठ के घर गया। सेठानी ने मिष्ठान के साथ सुंदर रसोई बनाई। फिर मैं और सेठ भोजन करने बैठे। सेठानी सेठ से कहने लगी, 'आज तो ठीक से भोजन कीजिए।' मैंने पूछा, 'क्यों ऐसा कह रही हो?' तब सेठानी बोलीं, 'अरे! यह तो, यहाँ जो भोजन कर रहा है वह तो शरीर है और 'सेठजी' तो मिल में गए होते हैं! कभी भी ठीक से भोजन नहीं करते।' 'ऐसा क्या! अरे, यह थाली

इस समय जो प्राप्त हुई है, उसे आराम से भोगो न? मिल अभी अप्राप्त है उसकी चिंता क्यों? भूत और भविष्य दोनों ही अप्राप्त हैं। वर्तमान प्राप्त है, उसे आराम से भोगो।' अरे! ये लोग तो इस हद तक पहुँचे हैं कि चार साल की लड़की के ब्याह की चिंता आज से करते हैं। यहाँ तक कि वह मृत्युशैय्या पर पड़ा हो, और घरवालों ने दिया वगैरह जला रखा हो, और वह खुद अंतिम साँस ले रहा हो, तब बेचारी बिटिया भी आकर कह जाती है कि पिता जी आप चैन से जाइए, मेरी चिंता मत कीजिए। तब वह कहता है, 'तू क्या समझेगी इसमें?' मन में ऐसा समझता है कि अभी बच्ची है, नादान है इसलिए ऐसा कह रही है। लीजिए, यह मूर्ख! बुद्धि का बोरा! बाज़ार में बेचने जाएँ तो कोई चार आने भी न दे।

आत्मा जैसा चिंतन करें, तुरंत वैसा ही फल मिल जाता है। एक-एक अवस्था में एक-एक जन्म बाँधे, ऐसा है यह सब।

ध्यान और अपध्यान

भगवान ने कहा है कि जीव मात्र चार प्रकार के ध्यान में ही रहा करते हैं। रौद्रध्यान, आर्तध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

ध्यान-अपध्यान : जो चारों ध्यान में नहीं समाए, वह अपध्यान। पहले लोगों को अपध्यान रहते थे, लेकिन अब तो चपरासी तक को अपध्यान रहता है। इन लोगों को यदि आज नहीं, तो मेरे जाने के बाद मेरे वाक्य थरथराएँगे।

अपध्यान तो दुर्ध्यान से भी निम्न कक्षा का है। अपध्यान इस काल में ही उत्पन्न हुआ है। जो ध्यान रौद्र, आर्त और धर्मध्यान में समाविष्ट नहीं होता, वह है अपध्यान।

शुक्लध्यान तो इस काल में है ही नहीं, ऐसा शास्त्रों का कथन है। इन चारों ध्यानों में जो नहीं समाता, वह अपध्यान।

छूटने हेतु किए गए ध्यान को पद्धति अनुसार नहीं किया,

वह अपध्यान में गया। सामयिक करते समय ध्यान रहता है कि 'मैंने किया,' कहता भी है कि 'मैंने किया' और फिर बार-बार घड़ी देखता रहता है। ऐसे बार-बार घड़ी देखा करे, वह ध्यान कैसे कहलाएगा?

रौद्रध्यान : रौद्रध्यान किसे कहते हैं? ये व्यापारी एक मीटर के बीस रुपये बताते हैं। यदि पूछें कि यह कपड़ा कौन सा है? तब वे जवाब देते हैं, 'टेरेलीन'। ग्राहक को उसका भाव बीस रुपये प्रति मीटर बताते हैं और फिर कपड़ा नापते समय क्या करते हैं? कपड़ा खींचकर नापते हैं। यह जो 'व्यायाम' किया, वह रौद्रध्यान है। ग्राहक को नाप से थोड़ा सा भी कम देकर, सामनेवाले के साथ बनावट करके, उसके हिस्से का हथिया लेना, वह रौद्रध्यान है। ज़रूरत से ज़्यादा लेना या फिर नापतोल में गड़बड़ करके हथियाना, यह सब रौद्रध्यान ही है। ये जो मिलावट करते हैं, वह भी रौद्रध्यान ही है। अपने सुख के लिए दूसरे का किंचित् मात्र भी सुख ले लेना, छीन लेने का विचार करना, रौद्रध्यान है। नियम क्या कहता है? तू पहले से ही पंद्रह या बीस प्रतिशत मुनाफा चढ़ाकर व्यापार करना। इसके उपरांत भी यदि तू कपड़ा खींचकर नापेगा, वह गुनाह है। भयंकर गुनाह है। सच्चे जैन को तो रौद्रध्यान होता ही नहीं है। जैसे एक्सीडेन्ट रोज़ नहीं होता, वैसे ही रौद्रध्यान भी कभी कभार ही होना चाहिए। यह क्रोध करना, गालियाँ देना, क्लेश करना वह सब रौद्रध्यान ही है। केवली भगवंतों ने बहुत ही कम से कम रौद्रध्यान करने को कहा है। जबकि आज तो यही मुख्य व्यापार है। आचार्य, गुरुजन, अपने से कम अक्लवाले शिष्यों पर चिढ़ते रहते हैं, वह भी रौद्रध्यान है। मन में चिढ़ना भी रौद्रध्यान है। तब आज तो बात-बात में मुँह से अपशब्द निकालते हैं!

रौद्रध्यान का फल क्या? नर्कगति!

आर्तध्यान : आर्तध्यान अर्थात् खुद के ही आत्मा को

पीड़ादायक ध्यान। बाहर के किसी जीव पर असर नहीं डाले, लेकिन खुद अपने लिए अग्रशोच किया करे, चिंता करे, वह आर्तध्यान। रौद्रध्यान की तुलना में फिर भी कुछ अच्छा कहलाता है। सामनेवाले पर तनिक भी असर नहीं डाले। आर्तध्यान में क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होते। लेकिन इस काल में आर्तध्यान नहीं होता। इस काल में मुख्य रूप से रौद्रध्यान ही होता है। सत्युग में पाँच प्रतिशत होता है। दस साल की बेटी के ब्याह की चिंता करे, वह आर्तध्यान। अप्रिय महेमान आएँ, और भीतर भाव बिगड़ें कि ये जाएँ तो अच्छा, वह आर्तध्यान। और यदि 'प्रिय व्यक्ति' अर्थात् अर्थ संबंध या विषय संबंध हो, ऐसा कोई आए और 'वह नहीं जाए' ऐसी इच्छा करे, वह भी आर्तध्यान। शिष्य अच्छा नहीं मिला हो, और गुरु उस पर अंदर ही अंदर अकुलाया करे, वह भी आर्तध्यान।

आर्तध्यान का फल क्या? तिर्यंचगति।

धर्मध्यान : सारा दिन चिंता नहीं हो और अंतरक्लेश शमित रहे, वह धर्मध्यान। धर्मध्यान अर्थात् रौद्रध्यान या आर्तध्यान में वे कभी भी न रहे और निरंतर शुभ में ही रहे। वे निडर, धीरजवान, चिंतारहित होते हैं और कभी भी अभिप्राय नहीं बदलते। स्वरूप का भान भले ही न हो, उस पर भगवान को आपत्ति नहीं है, लेकिन सदा क्लेश रहित रहो, अंदर और बाहर।

इस काल में धर्मध्यान बहुत ही कम लोगों को होता है। सौ में से दो-पाँच मिलेंगे ऐसे। क्योंकि आज के इस विकराल कलियुग में चिंता-झंझट सिर्फ संसारी वर्ग को ही नहीं, लेकिन साधु-साध्वी, आचार्यों, बाबाओं आदि सभी को रहती ही है। अरे! कुछ न हो, तो शिष्यों पर भी अकुलाते रहते हैं।

धर्मध्यान का फल क्या? सिर्फ धर्मध्यान रहा, तो उसका फल देवगति, और धर्मध्यान के साथ आर्तध्यान हो, तब उसका फल मनुष्यगति।

शुक्लध्यान : शुक्लध्यान के चार चरण हैं। आत्मा का अस्पष्ट वेदन रहे, वह पहला चरण। दूसरे चरण में आत्मा का स्पष्ट वेदन रहता है। 'हमारा' पद वह दूसरे चरण का शुक्लध्यान है। केवली भगवान का पद, तीसरे चरण का शुक्लध्यान है और चौथे चरण में मोक्ष।

स्पष्ट वेदन यानी परमात्मा संपूर्ण जान लिया, लेकिन सारे ज्ञेय नहीं झलकते। संपूर्ण केवलज्ञान में सारे ज्ञेय झलकते हैं।

अस्पष्ट वेदन यानी, इस कमरे में, अंधेरे में बर्फ़ पड़ी हो और उसे छूकर पवन आ रही हो, तो पवन ठंडी लगती है। इससे पता चलता है कि यहाँ बर्फ है और आत्मा का स्पष्ट वेदन का मतलब तो, बर्फ को छूकर ही बैठे हों, ऐसा अनुभव होता है।

हमने आपके, हमारे और केवली भगवान के बीच में ज़्यादा अंतर नहीं रखा है। कालवश हमारा केवलज्ञान रुका हुआ है, इसलिए सिर्फ चार डिग्री ही नहीं पचा है। ३५६ डिग्री पर अटका हुआ है, लेकिन हम आपको देते हैं 'संपूर्ण केवलज्ञान'।

शुक्लध्यान का फल क्या? मोक्ष।

हम खटपटिया वीतराग हैं, संपूर्ण वीतराग (राग-द्वेष से मुक्त) नहीं हैं। हम एक ही ओर वीतराग नहीं हैं। अन्य सभी ओर से संपूर्ण वीतराग हैं। हम 'खटपटिया', यानी फलाँ से कहेंगे कि आइए आपको मोक्ष दें। मोक्ष देने हेतु सभी तरह की खटपट कर लेते हैं।

गतिफल - ध्यान और हेतु से

भगवान क्या कहते हैं? हम तेरी क्रियाओं को नहीं देखते हैं। वह तो उदयकर्म ही करवाता है। किन्तु सामायिक करते, प्रतिक्रमण करते समय, तेरा ध्यान कहाँ रहता है, उसी को देखा

जाता है। सामायिक करता हो लेकिन ध्यान तो घड़ी पर रहता है या शिष्य पर चिढ़ता रहता है और ऊपर से कहता है कि मैंने सामायिक की।

भगवान महावीर के सामने आचार्य महाराज बैठे थे। उन्हें ज्ञान (आत्मज्ञान) दिया था। केवल एक 'व्यवस्थित' का ही ज्ञान नहीं दिया था। वे महाराज सामायिक में बैठे थे। तब अन्य महात्माओं ने पूछा, 'महाराज, इन आचार्य की क्या गति होगी?'

भगवान बोले, 'इस समय देवगति में जाएँगे।'

थोड़ी देर बाद फिर से किसी ने पूछा 'महाराज, अब इस समय इन आचार्य की कौन सी गति होगी?'

तब भगवान बोले, 'अधोगति में जाएँगे।'

उसके पंद्रह मिनिट बाद फिर पूछा, 'इस समय अब कौन सी गति में जाएँगे?'

तब भगवान ने कहा, 'अब मोक्ष में जानेवाले हैं।'

'ऐसा क्यों भगवान? ये संपूर्ण ध्यान में हैं, फिर ऐसा क्यों?' तब भगवान ने कहा, 'हमें जो दिखाई देता है, वह तुम्हें नहीं दिखाई देता और तुम्हें जो दिखाई देता है, उसे हम नहीं देखते। देखो, वह सामायिक में बैठा तो था, लेकिन उसका ध्यान कहाँ बरतता है, उसे हम ही देख सकते हैं। पहले ध्यान में देवगति का चित्रीकरण (चिंतनधारा) था। दूसरी बार नर्कगति का चित्रीकरण था। फिर उसने सुंदर चित्रित करना (चिंतन करना) शुरू किया। भीतर फोटो अच्छी निकलने लगी, जो मोक्ष में जाए ऐसी थी।' ध्यान पर फल का आधार है। चित्रित करता है पुद्‌गल, लेकिन यदि उसमें 'खुद' तन्मयाकार हुआ, तो वहाँ हस्ताक्षर कर दिए। लेकिन तन्मयाकार नहीं हो और जागृति रखें और जो चित्रीकरण होता हो, उसे केवल देखे और जाने तो उस चित्रीकरण से मुक्त ही है।

एक व्यापारी कपड़ा खींचकर नापता है और ऊपर से खुश होता है कि मैं व्यापार में कितना होशियार हूँ, मैं कितना कमाता हूँ। लेकिन उसे मालूम नहीं कि वह नर्कगति बाँध रहा है, क्योंकि यह उसका रौद्रध्यान है। अब दूसरा व्यापारी भी कपड़ा खींचकर ही देता है, वैसे ही ध्यान से। लेकिन मन में उसे अत्यंत पश्चाताप रहता है कि यह गलत कर रहा हूँ। महावीर के भक्त को ऐसा नहीं करना चाहिए। वह तिर्यंच गति बाँधता है। क्रियाएँ समान हैं, लेकिन ध्यान अलग-अलग होने से गति अलग-अलग होती है।

इस काल में स्वरूप का ज्ञान तो किसी को है ही नहीं। यदि कोई धर्म समझता, तो भी धर्मध्यान रहता, अथवा तो धर्मध्यान हो सकता था। आज जो ये लौकिक धर्म हैं, वे भी मूल नींव (सिद्धांत) पर नहीं है। इसलिए संसार के लोगों को धर्मध्यान भी नहीं है। केवल आर्त और रौद्रध्यान में ही हैं। संसार के लोग कहते हैं कि सेठ ने तो पचास हज़ार का दान दिया, बहुत अच्छा किया। लेकिन सेठ के मन में क्या होता है कि यदि इस नगरसेठ के दबाव में नहीं आया होता, तो हमें देना नहीं पड़ता। यह तो ज़बरदस्ती देने पड़े। इस तरह रौद्रध्यान करता है, नर्कगति बाँधता है। दूसरे मनुष्य के पास पैसा नहीं है फिर भी ऐसा ध्यान धरता है कि कब मेरे पास पैसे आएँ, और कब धर्म में दो पैसे खर्च करूँ? अतः वह बिना दान किए ऊर्ध्वगति बाँधता है। और उस मूर्ख ने तो पचास हज़ार देकर भी नर्कगति का ध्यान किया।

बुद्धि के उपयोग की मर्यादा

ये लोग बुद्धि का गलत उपयोग करके, ट्रिक-चालाकी करके जो पैसा कमाते हैं, वह तो बहुत बड़ा गुनाह है। जितनी ट्रिकें (दांव-पेच) करीं, उतना हार्ड (भारी) रौद्रध्यान। ट्रिक यानी अपनी अधिक बुद्धि से सामनेवाले की कम बुद्धि का फायदा उठाना।

बुद्धि तो संसारानुगामी है, कभी भी मोक्ष में नहीं जाने देगी। कृष्ण भगवान ने भी बुद्धि को 'व्यभिचारिणी' कहा है। बुद्धि संसार में ही लिप्त रखती है, निकलने नहीं देती। 'स्व' का संपूर्ण अहित करती है। जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती है वैसे-वैसे संताप बढ़ता जाता है। दो साल के बच्चे की माँ मर जाए, तो उसे कुछ होगा? और बाईस साल के लड़के की माँ मर जाए, तो उसे कितना दु:ख होता है? ऐसा क्यों? बुद्धि बढ़ी इसलिए।

भगवान ने क्या कहा कि संसार में बुद्धि का उपयोग ही नहीं करना होता और यदि खर्च करनी पड़े, तो उसकी लिमिट (सीमा) बाँध दी है। कितनी लिमिट कि यदि बड़े पथ्थर के नीचे तेरा हाथ दब गया हो, तो उसे युक्तिपूर्वक निकाल लेना और फिर से नहीं दबे, उतनी ही बुद्धि उपयोग में लानी है। लेकिन लोगों ने तो पैसा कमाने हेतु, कालाबाज़ारी करने के लिए बुद्धि का उपयोग करना शुरू कर दिया। लोगों को ठगने के लिए बुद्धि का प्रयोग करने लगे। इतना ही नहीं, लेकिन लोगों ने ट्रिकें आज़माना सीख लिया। ट्रिक अर्थात् सामनेवाले को पता नहीं चले, उस तरह उससे बनावट करके, उससे हड़प लेना वह। यह तो भयंकर रौद्रध्यान है। सातवें नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी।

अविरोध वाणी प्रमाण

'स्याद्वाद' किसे कहते हैं? किसी का भी विरोध सहन नहीं कर पाए, वह स्याद्वाद कहलाए ही कैसे? विरोध लगता है, वह तो सामनेवाले का व्यू पोइन्ट (दृष्टिबिंदु) है। किसी के भी व्यू पोइन्ट को गलत नहीं कहे, किसी का भी प्रमाण नहीं दु:खे, वह स्याद्वाद। ज्ञानीपुरुष को सारे व्यू पोइन्ट मान्य होते हैं। क्योंकि खुद सेन्टर(केन्द्र) में बैठे होते हैं। हम स्याद्वाद हैं। सेन्टर में बैठे हैं।

भगवान ने कहा है कि सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान- जो आत्मिक क्रियाएँ हैं, उन्हें हमारी आज्ञानुसार सरल रहकर करना।

तात्विक दृष्टि से देखा जाए, तो दोष किसी का भी नहीं है, संयोग ऐसे हैं, इसलिए। लेकिन हम इतना कठोर बोल रहे हैं। वह भी, सामनेवाले के लिए संपूर्ण करुणाभाव होने के कारण, उसका रोग निकालने के लिए ऐसी वाणी बोल रहे हैं।

ज्ञानी और धर्म का स्वरूप

इस संसार में कितने ही लोग ऐसा कहते हैं कि उनका व्यवहार धर्म है। जब तक निश्चय धर्म प्राप्त नहीं होता, तब तक ऐसा नहीं कह सकते। जब तक शुद्धात्मा को नहीं पहचाना है, तब तक व्यवहार धर्म है, ऐसा कैसे कह सकते हैं? निश्चयधर्म और व्यवहारधर्म कब अलग पड़ते हैं कि जब ज्ञानीपुरुष अपनी अनंत सिद्धियाँ खर्च करके, आत्मा और अनात्मा के बीच लाइन ऑफ डिमार्केशन (भेदरेखा) डाल देते हैं, और निरंतर अलग ही रखते हैं, तभी समझ में आता है। यह खुद का क्षेत्र और यह पराया क्षेत्र, ऐसा अलग कर देते हैं। होम और फॉरेन डिपार्टमेन्ट अलग कर देते हैं। जब तक निश्चय धर्म प्राप्त नहीं किया, तब तक व्यवहारधर्म के बारे में कैसे बोल सकते हैं। तब फिर वह क्या कहलाता है? वह तो लौकिक धर्म कहलाता है।

लौकिक धर्म अर्थात् लोगों की मान्यता का धर्म। लोकोत्तर धर्म नहीं। यह धर्म क्या करता है? बुरी आदतें हटाता है और अच्छी आदतें डालता है। लौकिक धर्म तो क्या कहता है कि अच्छा हो वह अपनाना और अनुचित हो उसे मत अपनाना। वह क्या सिखलाता है कि चोरी नहीं करना, झूठ मत बोलना। जीवन में सुख मिले, अनुकूलता प्राप्त हो ऐसा करना। सारे संसार ने सत्कार्यों को ही सही धर्म माना है। हम उसे लौकिक धर्म कहते हैं। उससे चतुर्गति ही मिलती है। अशुभ में से शुभ में आना, वह लौकिक धर्म है, रिलेटिव धर्म है और शुभ में से शुद्ध में आना, वह अलौकिक धर्म है। मोक्ष चाहते हो, तो अलौकिक धर्म में आना ही होगा। अलौकिक धर्म में तो अच्छी आदतें और

बुरी आदतें, अनुकूल और प्रतिकूल, अच्छा-बुरा इन सभी से छुटकारा मिलता है और तभी मोक्ष होता है। 'स्वधर्म' ही सच्चा धर्म है, वही आत्मा का धर्म है, वही अलौकिक धर्म है। शेष सभी देहधर्म हैं, जो परधर्म, रिलेटिव धर्म या लौकिक धर्म कहलाते हैं। रियल धर्म में, अलौकिक धर्म में कहीं संप्रदाय नहीं होते, पंथ नहीं होते, ध्वजा नहीं होती, ग्रहण-त्याग नहीं होता, मतभेद नहीं होते, अलौकिक धर्म निष्पक्षपाती होता है। पक्षपात से कभी मोक्ष नहीं होता।

लोगों को मोक्ष में जाना है और दूसरी ओर मतमतांतर में पड़े रहना है, पक्ष लेना है। मेरा सही है, ऐसा कहकर विपक्षी को गलत ठहरा देते हैं। किसी को भी गलत कहकर तू कभी भी मोक्ष में नहीं जा पाएगा। मतमतांतर छोड़कर, पक्ष पोषण छोड़कर संप्रदायों की बाडाबंदी तोड़कर, जब तू सेन्टर (केन्द्र) में आएगा, तभी अभेद चेतन के धाम को प्राप्त करेगा। ऐसा करने के बजाय तूने तो यहाँ पक्ष में पड़कर पक्ष की नींव मज़बूत कर दी और उसमें तेरे लिए अनंत जन्मों का संसार बंधन बाँध दिया। तुझे मोक्ष में जाना है या पक्ष में ही पड़े रहना है? एक ही धर्म में कितने संप्रदाय खड़े हो गए हैं? झगड़े पैदा हो गए! जहाँ कषाय वहाँ मोक्ष नहीं और कषाय को धर्म नहीं कहते। लेकिन यह तो पक्ष को मज़बूत करने हेतु कषाय किए। धर्म को ही रेसकोर्स बना दिया? शिष्यों की स्पर्धा में पड़े! उसके पाँच शिष्य हैं, तो मेरे ग्यारह तो होने ही चाहिए। घर पर बीवी और बच्चे मिलाकर तीन घंट थे, उन्हें छोड़ा और यहाँ ग्यारह घंट लटकाए? फिर सारा दिन शिष्यों के ऊपर चिढ़ता रहता है, अब इसे मोक्ष का साधन कैसे कहें?

ऐसी कड़क वाणी हमारी, वीतरागों की नहीं होती, लेकिन क्या करें? उनके रोग को निकालने के लिए भीतर गहरी वीतरागता के साथ, संपूर्ण करुणाभरी वाणी निकल जाती है! उसमें उनका भी दोष नहीं है, उनकी इच्छा तो मोक्ष में जाने की है, लेकिन

नासमझी के कारण उल्टा हो जाता है। काल ही बड़ा विचित्र आया है। उसकी आँधी की लपेट में सभी आ गए हैं।

हमें तो अपार करुणा रहती है। हमें सभी निर्दोष ही दिखाई देते हैं, क्योंकि हम खुद निर्दोष दृष्टि करके सारे के सारे संसार को निर्दोष देखते हैं।

निर्दोष दृष्टि

भगवान महावीर की सभा में एक आचार्य महाराज बैठे थे। उनके मन में ऐसा कैफ़ हो गया कि मैं बहुत ज्ञान जानता हूँ और मैं कुछ जानता हूँ। इसलिए उन्होंने भगवान से पूछा, 'भगवन् आप में और मुझमें अब क्या अंतर है? मेरे अभी कितने जन्म शेष रहे?' आचार्य महाराज के मन में ऐसा था कि तीन जन्मों में मोक्ष हो जाएगा। भगवान तो ठहरे वीतराग पर अंदर से आचार्य महाराज की बात समझ गए। बोले कि प्रश्न तो अच्छा है, लेकिन दो-पाँच का पुण्योदय हुआ है उन्हें भी बुला लें। गाँव के नगरसेठ, सती, वेश्या, जेबकतरे को बुलाइए और वहाँ एक गधा बाहर खड़ा है उसके बारे में भी आपको बताता हूँ। 'हे आचार्य महाराज! मुझ में, आप में, इस नगरसेठ में, सती में, वेश्या में, जेबकतरे में और उस गधे में ज़रा सा भी अंतर नहीं है।' महाराज बोल उठे, 'क्या कहा भगवन्! आप में और मुझमें कोई अंतर नहीं? अंतर तो बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है न?'

तब भगवान बोले, 'देखिए वह अंतर आपको अपनी दृष्टि से दिख रहा है। हम आज से तीन जन्म पूर्व ज्ञानीपुरुष के शिष्य हुए थे। उन्होंने हमारी दृष्टि निर्दोष कर दी थी। उस दृष्टि का हमने दो जन्मों में उपयोग किया और इस जन्म में संपूर्ण निर्दोष हो गए। दृष्टि संपूर्ण निर्दोष की और सभी को संपूर्ण निर्दोष देखा। उस निर्दोष दृष्टि से हम कहते हैं कि आप में, हम में और इन सभी में कोई भी अंतर नहीं है।' आचार्य महाराज ने कहा,

'पर प्रभु! हमें तो बड़ा अंतर लगता है। आप सती को और वेश्या को, नगरसेठ को और जेबकतरे को, मुझे और उस गधे को, सभी को एक समान कैसे कह रहे हैं? हमारी समझ में नहीं आता। यह बात मानने में नहीं आती।' भगवान ने कहा, 'देखिए, आचार्य महाराज! आप में, हममें, नगरसेठ में, सती में, वेश्या में, जेबकतरे में और उस गधे में माल एक ही सरीखा है। सभी में एक सौ बीस काउन्ट का एक तोला भर सूत और वह भी एक ही मिल का है। सभी में सरीखा ही है। अंतर केवल इतना ही है कि आप सभी का उलझा हुआ है और मेरी गुत्थियाँ सुलझ गई हैं। इन सभी में सबसे कम जन्म उस गधे के होनेवाले हैं, ऐसा हम अपने ज्ञान में देखकर कहते हैं। क्योंकि, आचार्य महाराज, आपने अनेक शास्त्र पढ़े हैं, उनका मानसिक बोझ उतारने में आपके कई जन्म लग जाएँगे और उस गधे को तो अगले जन्म में ज्ञानीपुरुष की भेंट होगी और उसका मोक्ष हो जाएगा।

कैफ़ और मोक्ष

मानसिक बोझ, वही कैफ़ (नशा) है। जितना कैफ़ कम होगा, उतना जल्दी मोक्ष होगा।

कैफ़ी का मोक्ष कभी भी नहीं होता। 'मैं कुछ जानता हूँ' यह तो बड़ा भारी कैफ़ है। नींद में भी वह कैफ़ रहेगा। मोक्ष तो निष्कैफी का होता है। कैफ़ी का कभी भी नहीं होनेवाला। ये शास्त्र पढ़े, धारण किए वह मोक्ष के साधन हेतु है या कैफ़ बढ़ाकर, भवचक्र में भटकने का साधन किया? शराबी का कैफ़ तो पानी छिड़कते ही तुरंत उतर जाता है, लेकिन 'मैं कुछ जानता हूँ', ऐसा, शास्त्रों के पठन का कैफ़ कभी भी नहीं उतरता।

मन-वचन-काया की बला

चेहरे पर यदि एक बाजरे के दाने जितनी फुंसी हुई हो,

तो वह मूर्ख, बार-बार आईने में चेहरा देखा करता है, क्योंकि वह मानता है कि मैं ही 'चंदूलाल' हूँ। यानी देह को भी 'मैं ही हूँ', मानता है। इसलिए वह, शीशा देखता रहता है। लेकिन यह देह तुम्हारी नहीं है। देह तो बला है। कोई लड़का, किसी लड़की को लेकर घूम रहा हो और बाप कहे कि 'यह बला कहाँ से लगा दी?' इस पर लड़का कहता है, 'क्या कहते हैं? वह क्या बला है? आप क्या समझें इसमें?' लेकिन थोड़े दिनों बाद उस लड़की के साथ अनबन हो जाए और वह लड़की दूसरे के साथ घूमती नज़र आए, तब उसकी समझ में आता है कि वह तो बला थी। वैसे ही, यह देह भी बला है। देह का अनुभव गया, तो बस बला भी गई। बला भरोसे के लायक होती ही नहीं, दगा ही देती है। यह मन-वाणी और देह का कैसा बंधन है? बंधन यानी? जिनसे छूटना चाहें, फिर भी नहीं छूट पाएँ। दूसरे शब्दों में बंधन ही बला है। जब से जान लिया कि यह बला है, तब से छूटने का उपाय खोजता है। लेकिन यदि बला को ही प्रिय मान ले, तब? तब वह और ज़्यादा लिपटती जाती है और फिर बहुत बुरी तरह फँस जाता है। बला, राग-द्वेष के अधीन है। उसे मार-पीटकर थोड़े ही निकालना है? वीतरागता से निकालना है, अहिंसा से निकालना है। यह मन-वचन-काया बला जैसे ही हैं। उसे पूर्णरूप से 'देखा और जाना' कि वह अपने आप छूटते चले जाते हैं।

मोक्ष ही उपादेय है

मोक्ष का ही आग्रह रखने जैसा है। बाकी सभी जगह पर निराग्रही बन जा। चीज़ें ज़हर नहीं हैं, लेकिन तेरा आग्रह ही ज़हर है। हम यह स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जितने भी मेहनत के मार्ग हैं, वे सभी संसारमार्ग हैं। मोक्ष की ही इच्छा करने योग्य है। मोक्ष का विचार यदि एक बार भी आया हो, तो लाख जन्म में भी ज्ञानीपुरुष मिल जाएँगे और तेरा मोक्ष हो जाएगा।

मोक्ष अर्थात् 'मुक्तभाव' सभी सांसारिक दुःखों से मुक्ति। मेहनत तो संसार के लिए की जाती है, मोक्ष के लिए नहीं। मोक्ष तो खुद का स्वभाव ही है। आत्मा का स्वभाव ही मोक्ष स्वरूप है। जैसे पानी का स्वभाव ठंडा है। उसे गरम करने में मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन क्या ठंडा करने में मेहनत करनी पड़ती है? नहीं करनी पड़ती, वह तो अपने आप ही, उसके स्वभाव से ही ठंडा हो जाएगा। लेकिन यह बात समझ में कैसे आए? खुद का स्वभाव ही मोक्ष स्वरूप है, इसे नहीं समझने का कारण यही है कि बड़ी ज़बरदस्त भ्राँति बरतती है। वह भ्राँति किसी काल में जाए ऐसी नहीं है। वह तो ज्ञानीपुरुष की भेंट हो तो पार आए। इसलिए ज्ञानीपुरुष को खोजना! सजीवन मूर्ति को खोजना!

जो खुद छूट चुके हैं, उन्हें खोजना। खुद तर चुके हैं और अनेकों को तारने का सामर्थ्य जिन में है, ऐसे तरणतारण ज्ञानीपुरुष को खोजना और निर्भय होकर उनके पीछे-पीछे चले जाना। इस काल के सिर्फ हम अकेले ही तरणतारण हैं। ग़ज़ब का ज्ञानावतार है। घंटेभर में मोक्ष दे दें, ऐसे हैं। तुझे कुछ भी नहीं करना है। कुछ भी नहीं देना है, क्योंकि हम किसी चीज़ के भिखारी नहीं हैं। जिनका भिखारीपन संपूर्ण रूप से खत्म हो गया हो, उन्हीं में भगवान प्रकट होते हैं। लक्ष्मी जी के भिखारी नहीं हों, ऐसे कुछ साधु मिलेंगे, विषयों के भिखारी नहीं हों, ऐसे भी मिलेंगे, लेकिन फिर वे मान के भिखारी होंगे या कीर्ति के भिखारी होंगे, नहीं तो शिष्यों के भिखारी होंगे। किसी न किसी कोने में भिखारीपन पड़ा ही रहता है। जहाँ संपूर्ण अयाचकता प्राप्त होती है, वहीं परमात्म स्वरूप प्रकट होता है। हम लक्ष्मी के, विषयों के, शिष्य के, या कीर्ति के, उनमें से किसी चीज़ के भिखारी नहीं हैं। हम किसी चीज़ के भिखारी नहीं हैं। हमें कुछ नहीं चाहिए। हाँ, तुझे हमारे पास से जो चाहिए, वह ले जा। लेकिन ज़रा सीधा माँगना, ताकि फिर से नहीं माँगना पड़े।

संसार के भौतिक सुख तो बाइ–प्रोडक्ट हैं और आत्मा प्राप्त करना, वह मेन प्रोडक्शन है। मेन प्रोडक्शन का कारखाना छोड़कर लोगों ने बाइ प्रोडक्शन के लिए कारखाने लगाए हैं। इससे दिन कैसे फिरेंगे। मोक्षमार्ग नहीं जानने के कारण सारा संसार भटकता रहता है और जहाँ जाए, वहाँ खो जाता है। यदि मोक्ष चाहिए तो आखिरकार ज्ञानी के पास ही जाना होगा। अरे! दादर स्टेशन पर पहुँचना हो, तो भी तुझे उस रास्ते के ज्ञानी से पूछना पड़ेगा। तब फिर यह मोक्ष की गली तो पतली, अटपटी और भूलभुलैयावाली है। खुद पार करने गया, तो कहीं का कहीं भटक जाएगा। इसलिए ज्ञानी को खोज निकाल और उनके पदचिन्हों पर, पीछे पीछे चला जा। हम मोक्षदाता हैं। मोक्ष देने के लाइसेन्स सहित हैं। अंत तक का दे सकें, ऐसे हैं। यह तो अक्रम ज्ञानावतार है! एक घंटे में हम तुझे भगवान पद दे सकते हैं! लेकिन तेरी पूर्ण तैयारी चाहिए।

हमारे पास दो ही चीज़ें लेकर आना। एक 'मैं कुछ जानता नहीं' और 'परम विनय'। 'मैं कुछ जानता हूँ', यह तो कैफ़ है और यदि यथार्थ जान लिया हो, तब वह तो प्रकाश कहलाता है और जहाँ प्रकाश हो वहाँ ठोकर नहीं लगती। जबकि अभी तो जगह–जगह पर ठोकरें लगती हैं। उसे 'जान लिया' कैसे कहें? एक भी चिंता कम हुई? सही जाना होता, तो एक भी चिंता नहीं होनी चाहिए। यदि 'मैं कुछ जानता हूँ', ऐसा तेरा मानना है, तो फिर मैं तेरे अधूरे घड़े में क्या डालूँ? तेरा घड़ा खाली हो, तो मैं उसमें अमृत भर दूँ। फिर तू जहाँ जाना चाहे, वहाँ जाना। बाल–बच्चों का ब्याह करना, संसार चलाना, लेकिन मेरी आज्ञा में रहना।

यह बात अपूर्व है। पहले सुनी नहीं हो, पढ़ी नहीं हो ऐसी। सारे संसार का कल्याण करने के हम निमित्त हैं, कर्ता नहीं।

संसार महापोल

यह सारा संसार पोलम्पोल है। यह हम अपने ज्ञान में देखकर कह रहे हैं। तू यदि संसार को सही मानकर चल रहा है, तो यह तेरी ही भूल है। पोलम्पोल अर्थात् अवकाश-आकाश।

एक वैद्य था। उसने अपने मरीज़ को बहुत अच्छी दवाई दी। उसने मात्र मिर्ची से परहेज़ करने को कहा था, क्योंकि वह रोग अधिक मिर्च खाने से ही उत्पन्न होता था। बेचारे वैद्य ने बड़ी मेहतन की, अच्छी से अच्छी दवाई दी। दवाईयाँ बदलता रहा, लेकिन महीने दो महीने होने पर भी रोग में कोई फर्क नहीं पड़ा। एक दिन अचानक वैद्य रोगी के घर जा पहुँचा। वहाँ उसने क्या देखा? मरीज़ भोजन ले रहा था और थाली में दो बड़ी हरी मिर्च रखी हुई थीं। इस पर वैद्य रोष से भर गया और एकदम से इमोशनल (भावुक) हो जाने से वहीं के वहीं उसका हार्ट फेल हो गया! इसमें दोष किस का? अरे, मरीज़ ने तो ज़हर पीया लेकिन तूने क्यों ज़हर पी लिया? यह तो महापोल है। किसी स्टेशन पर डेरा डालने जैसा नहीं है। वर्ना फ़ँस गए समझो। यह तो, मरीज़ मिर्च खाए और दिमाग़ का पारा चढ़ने से नस फट जाए वैद्य की! यह तो, देखा उसी का ज़हर है न? यदि चाय में कुछ कचरा गिरा देखे, तो ज़हर चढ़ता है, लेकिन जिसे पता नहीं है, वह तो आराम से पी जाता हैं। यह तो देखे तभी लगता है कि गलत हुआ, उसी का नाम पोलम्पोल। सही बात जानें तब घबरा जाते हैं और नहीं जाना, तो कुछ भी नहीं।

एक व्यक्ति मेरे पास आया करता था। उसकी एक लड़की थी। उसे मैंने पहले से समझा दिया था कि यह तो कलियुग है। कलियुग का असर बेटी पर भी हो सकता है, इसलिए सावधान रहना। यह बात वह अच्छी तरह समझ गया और जब उसकी बेटी घर छोड़कर किसी के साथ भाग गई, तब उस आदमी ने

मुझे याद किया। मेरे पास आकर मुझसे कहने लगा, 'जो बात आपने कही थी वह सही थी, यदि आपने मुझे सावधान नहीं किया होता, तो मुझे ज़हर ही पीना पड़ता।' ऐसा है यह संसार! पोलम्पोल। जो हो उसे स्वीकार करना पड़ता है। उसके लिए क्या ज़हर पी लें? ऐसा करने पर लोग तुझे पागल कहेंगे। ये लोग तो कपड़े पहनकर आबरू ढँकते हैं और कहते हैं कि हम खानदानी हैं!

जबकि ज्ञानीपुरुष बड़े सयाने होते हैं। पूरा सड़े, उससे पहले ही काट डालते हैं। इस संसार को कम्प्लीटली पोलम्पोल देखना (अनुभव करना) कोई ऐसी-वैसी बात है?

ये चरवाहे क्या करते हैं? भेड़ों को पुचकारकर बाड़े में बाँधते हैं, एक भी भेड़ को छटकने नहीं देते। भेड़ें समझती हैं कि बाघ से हमारी रक्षा कर रहे हैं और चरवाहा कहता भी है कि मैं भेड़ों की रक्षा करता हूँ। लेकिन चरवाहे उन भेड़ों का क्या-क्या उपयोग कर लेते हैं, यह भेड़ों की समझ में कैसे आए? रोज़ाना दुह लेते हैं। भेड़ों के बाल, जो ठंड से उनकी रक्षा करते हैं, उन्हें उतार लेते हैं और आखिर में कोई मेहमान आएँ, तो उसका साग बनाकर खा जाते हैं! इसका नाम पोलम्पोल!

मनुष्यों की निराश्रितता

इस कलियुग के सभी मनुष्य निराश्रित कहलाते हैं। ये सारे जानवर आश्रित कहलाते हैं। इन मनुष्यों को तो किसी का आसरा तक नहीं है। जिस किसी का आसरा लिया हो, वही खुद निराश्रित होता है। तब फिर तेरा क्या भला होगा? अब निराश्रित किस प्रकार, वह मैं तुम्हें भगवान की भाषा में समझाता हूँ।

एक सेठ, एक साधु और उनका पालतू कुत्ता तीनों प्रवास पर निकले। रास्ते में एक घना जंगल आया और चार लुटेरे बरछे-बंदूक के साथ सामने आ गए। इसका तीनों पर क्या असर होता

है? सेठ सोचता है, 'मेरे पास दस हज़ार की गठरी है जो ये मुए ले लेंगे, तो मेरा क्या होगा? यदि मुझे मार डालेंगे तो क्या होगा' साधु को होता है, 'हमारे पास से तो उन्हें कुछ मिलनेवाला है नहीं। यह लोटा-वोटा है उसे ले लिया, तो देखा जाएगा। लेकिन मुए टँगड़ी तोड़ देंगे, तो मेरा क्या होगा? मेरी सेवा कौन करेगा? सदा के लिए लंगड़ा हो गया, तो मेरा क्या होगा?' जबकि कुत्ता एक बार लुटेरों पर भौंकेगा। यदि लुटेरों ने उसे डंडा जमाया, तो क्यांऊँ-क्यांऊँ करते हुए, अपने मालिक को मार पड़ते हुए देखता रहेगा। लेकिन उसे ऐसा नहीं लगेगा कि मेरा क्या होगा? क्योंकि वह आश्रित है और बाकी दोनों निराश्रित हैं। 'अब मेरा क्या होगा?' 'एक बार भी ऐसा सोचे,' तो वह निराश्रित है। भगवान क्या कहते हैं? 'जब तक प्रकट के दर्शन नहीं किए, तब तक तुम निराश्रित हो, और प्रकट के दर्शन हो गए, तो तुम आश्रित हो।'

प्रकट के दर्शन हो जाने के बाद बाहर के या अंदर के, कैसे भी संयोग आने पर, मेरा क्या होगा, ऐसा नहीं लगता।

हमारा आसरा जिसने लिया, उसकी अनंतकाल की निराश्रितता खत्म हो जाती है।

चाहे कैसे भी विपरीत संयोग क्यों न हों, लेकिन ज्ञानीपुरुष के आश्रित को, 'मेरा क्या होगा,' ऐसा नहीं होता। क्योंकि वहाँ 'हम' और 'हमारा ज्ञान' दोनों ही हाज़िर हो ही जाते हैं और आपका हर तरह से रक्षण करते हैं!

कुदरती तंत्र संचालन-भौतिक विज्ञान

आज फॉरेन में सब जगह भौतिक साइन्स आवश्यकता से अधिक हो गया है, अबव नॉर्मल हो गया है। उसमें नॉर्मेलिटी चाहिए, चीज़ में नॉर्मेलिटी होगी, तभी तू सुखी रहेगा। सत्तानवे फैरेनहाइट इज़ बिलो नॉर्मल फीवर, और निन्नानवे इज़ अबव नॉर्मल

फीवर। अट्ठानवे इज़ दी नॉर्मेलिटी। अमरीका और अन्य फॉरेन के देश अबव नॉर्मल फ़ीवर के शिकार हैं और भारत देश बिलो नॉर्मल फ़ीवर से ग्रस्त है। नॉर्मेलिटी चाहिए। ये फॉरेनवालों की खोजबीन अबव नॉर्मल हो रही है, लेकिन उन्हें जो चाहिए वह मिल नहीं पाता। यह क्या निर्देश करता है कि वे भटक गए हैं। अभी तो वे इतने अबव नॉर्मल हो गए हैं कि अड़सठ मील और तीन फ़र्लांग पर कार पंक्चर हो जाए, तो उसकी खबर देने के साधन भी वहाँ होते हैं। अरे, देह को जिसकी ज़रूरत है, ऐसे साधन खोज निकाल न? ये मर्दों को रोज़ाना दाढ़ी बनानी पड़ती है, इसलिए दाढ़ी उगे नहीं ऐसा कुछ खोज निकाल न! देह विषयवाली है, इसलिए देह को जिसकी ज़रूरत है, उसे वह देना चाहिए। एक साथ बहुत सी बरसात होती रहे, तो क्या होगा? सर्वत्र नुकसान ही होगा न? अबव नॉर्मल से नुकसान होता है। लोग तो ज़रा सी गर्मी ज़्यादा पड़े, तो शोर मचाते हैं। मेरा एक मित्र एक दिन शोर मचा रहा था कि बहुत गर्मी है, बहुत गर्मी है। इस पर मैंने उससे पूछा, 'यदि ताप के कंट्रोल स्टेशन पर तुम्हें कंट्रोलर के रूप में रखें, तो आज तुम कितना ताप रखते?' वह कहता है, 'इतना ही रखता।' मूर्ख! तू भी इतनी ही गर्मी रखता, तो फिर शोर क्यों मचा रहा है? वह तो नैचुरल है। जब जितनी ज़रूरत हो, उतना सहजरूप से मिलता रहता है, अपने आप ही। लेकिन ये लोग उसे बद्दुआ देकर उसमें बाधा डालते हैं। एक आदमी अच्छे कपड़े पहनकर बाहर गया हो और रास्ते में बरसात आई, तो वह बरसात को खरी-खोटी सुनाता है। कुछ लोग कहते हैं, 'आज बेटी की शादी है, बरसात नहीं आए, तो अच्छा' और वहाँ खेतों में बेचारा किसान चातक दृष्टि से बरसात की राह देख रहा होता है। ऐसा विरोधाभास उत्पन्न होने पर तो कुदरत को भी बाधा पहुँचेगी। आपके भाव और नेचर का ऐडजस्टमेन्ट दोनों के आधार पर तो सारा तंत्र चल रहा है, इसलिए नेचर (प्रकृति) में दख़लंदाज़ी मत करना। अपने आप नेचुरली

(प्राकृतिक रूप से) सब आ मिलेगा। 'कल सबेरे सूरज नहीं निकलेगा, तो क्या होगा?' क्या किसी को ऐसा विचार आता है? और अगर आए तो क्या हो? निरी दख़लंदाजी, इसलिए नेचर में दख़लंदाज़ी मत करना।

ये सभी बाह्य विज्ञान में इतने आगे बढ़ गए हैं, अबव नॉर्मल हो गए हैं कि फिर लोग ही ऐसा कहेंगे कि हमें ये साइन्टिस्ट नहीं चाहिए। ये सभी क्राँति की तैयारियाँ हो रही हैं।

जहाँ-जहाँ एक्सेस हुआ, उन सभी से थक जाते हैं। अधिक बैठना हुआ, तो उससे भी थकान होती है। अधिक सोने से भी थकान होती है। दु:ख और सुख रिलेटिव(सापेक्ष) हैं। कोई सेठ धूप में घूम रहा हो, फिर बबूल मिले, तब उसकी छाँव में भी ठंडक लेने बैठेगा। यदि वहीं पर उसे चार घंटे बैठने को कहें, तब वह मना करेगा, क्योंकि बैठे-बैठे थक जाते हैं।

हिन्दुस्तान में साढ़े सात फीट ऊँचा आदमी, तो वह लंबा लगता है। लेकिन यदि हम सात फीट ऊँचाईवालों के देश में जाएँ, तो नाटे लगेंगे। यह तो सब रिलेटिव है। एक के आधार पर दूसरा लंबा-नाटा लगता है।

कोई व्यक्ति पचपन साल तक पढ़ाई करता रहे, तो लोग क्या कहेंगे? अरे! तू पढ़ाई ही करता रहेगा, तो शादी कब करेगा? वह अबव नॉर्मल। जबकि दो साल के बालक का ब्याह रचाए, तो वह बिलो नॉर्मल।

भौतिक डेवेलपमेन्ट-आध्यात्मिक डेवेलपमेन्ट

हिन्दुस्तानी लोगों को, फॉरेनवाले तिरस्कृत करते हैं। उन्हें अन्डरडेवेलप्ड (अविकसित) कहते हैं। तब मुझे कहना पड़ता है कि तू अन्डरडेवेलप्ड है। अध्यात्म में तू अन्डरडेवेलप्ड है और भौतिक में तू फुल्ली डेवेलप्ड है। भौतिक में तुम्हारा देश फुल्ली डेवेलप्ड है। जबकि भारत देश, भौतिक में अन्डरडेवेलप्ड (अविकसित)

है और अध्यात्म में फुल्ली डेवेलप्ड प्रजा है। यहाँ के जेबकतरे को भी मैं एक घंटे में भगवान बना सकता हूँ। बाहर की सारी की सारी प्रजा आंतर्विज्ञान में अन्डरडेवेलप्ड है, यह बात तुम्हें कैसे समझाऊँ?

फॉरेन के लोगों में क्रोध-मान-माया-लोभ अभी डेवेलप हो रहे हैं। जबकि हिन्दुस्तान के लोगों के क्रोध-मान-माया-लोभ फुल्ली डेवेलप हो गए हैं, टॉप (शिखर) पर जा पहुँचे हैं।

फॉरेन में आपकी जान-पहचानवाला कोई हो और आप उनसे कहो कि यहाँ से पचास मील दूर जाना है, तो वह आपको अपनी कार (गाड़ी) में ले जाएगा, वापस लाएगा और ऊपर से रास्ते में होटल का बिल भी वही चुकाएगा। जबकि यहाँ आपके चाचा के लड़के से कार माँगोगे, तो वह हिसाब लगाएगा कि पचास मील जाने के और पचास मील आने के, कुल मिलाकर सौ मील हुए। पेट्रोल का खर्च इतना, ऑइल-पानी का खर्च इतना और ऊपर से कार की घिसाई का हिसाब लगाकर फिर झूठ बोलेगा कि कल तो मेरे साहब आनेवाले हैं!

ऐसा क्यों है? पहलेवाले का लोभ ही डेवेलप नहीं हुआ और इसका फुल्ली डेवेलप हो गया है। सात पुश्तों तक का डेवेलप हो गया है। जबकि वहाँ की प्रजा का लोभ कितना डेवेलप हुआ होता है? खुद तक ही सीमित। पति और पत्नी तक ही सीमित। बेटा अट्ठारह साल का हुआ कि तू अलग और हम अलग। और यदि पत्नी के साथ ज़रा सा टकराव हुआ, तो फिर, तू अलग और मैं अलग, तुरंत ही डायवोर्स। जबकि अपने यहाँ तो ममता ठेठ तक डेवेलप हो चुकी है। एक अस्सी साल की महिला और पचासी साल के बुज़ुर्ग सारी ज़िंदगी रोज़ लड़ते-झगड़ते थे, रोज़ाना किट-किट चलती थी और एक दिन बुज़ुर्ग की मृत्यु हो गई, तब उनकी पत्नी ने तेरहवीं के दिन उत्तरक्रिया में शैय्यादान करते समय, 'तेरे चाचा को यह भाता था और तेरे चाचा को

वह पसंद था,' ऐसे याद करके सब रखवाया। मैंने कहा, 'क्यों चाची जी आप तो रोज़ लड़ती थीं न? तब चाची बोलीं, 'ऐसा ही होता है। लेकिन तेरे चाचा जी जैसे मुझे फिर नहीं मिलेंगे। मुझे तो हर जन्म में वही चाहिए।' ममता भी टोप पर पहुँची हुई होती है।

प्राकृतिक साहजिकता

फॉरेन की प्रजा साहजिक होती है। साहजिक अर्थात्, यदि नहीं मारनेवाली गाय हो, तब अगर छोटा बच्चा भी उसका सींग पकड़े, तो भी नहीं मारेगी और मारनेवाली गाय होगी तो उसे कुछ न करें, तो भी वह मारेगी। इस प्रकार उन लोगों का ऐसा साहजिक होता है। उसे, आपको ले जाना हो, तो तुरंत हाँ कर देगा और न ले जाना हो, तो तुरंत मना भी कर देगा। लेकिन झूठ-वूठ नहीं बोलेंगे। उनमें दोनों ओर का होता है। सीधे, तो एकदम सीधे और टेढ़े, तो हर ओर से उतने ही टेढ़े। भारतीय लोग असहज। हिन्दुस्तान में साहजिकता थी, लेकिन वह सतयुग के समय में थी। और वह सही मानों में आदर्श साहजिकता थी। भारत में पहले लोग चार वर्ग में बँटे हुए थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो कि डेवेलपमेन्ट दर्शाते थे। अब तो डेवेलपमेन्ट टोप पर गया है। सुतार के बेटे भी उतने ही कुशल। साहजिकता उन दिनों परिपूर्ण थी, इसलिए देश इतना ऊपर उठ गया था। फिर वहाँ से धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। यही नियम है। जो चार वर्ग थे, उनका लोगों ने दुरुपयोग किया, जैसे कि हरिजनों का तिरस्कार किया। बुद्धि का इतना ज़्यादा, तीक्ष्ण दुरुपयोग किया कि वे असहज होते गए और भारत का सूरज अस्त हो गया। भयंकर दुराग्रही हो गए। निम्नतम कोटि के, राक्षसी कोटि के आचार हो गए थे। अरे! कोई बीस साल की विधवा मिले, तो बेचारी को शांति देने के बजाय अपशकुन हुए, ऐसा कहते थे! मुए, विधवा अर्थात् गंगास्वरूप! उससे

अपशकुन कैसे हो सकते हैं? बाद में फिर अंग्रेज आए। इसलिए उनकी सहजता का मिश्रण हुआ। परिणाम स्वरूप यहाँ के लोगों को कुछ ठंडक हुई।

यह तो सब एक्सेस हो गया था, उसके परिणाम थे। अब भारत का सूर्य उग रहा है। इस समय फॉरेन में सब जगह संध्या के पाँच बजे हैं और यहाँ भारत में प्रातः के पाँच बजे हैं। हम १९४२ से कहते आए हैं कि २००५ के साल में हिन्दुस्तान संसार का केन्द्र बन चुका होगा। इस समय बन रहा है। फिर फॉरेन से प्रजा यहाँ यह पढ़ने आएगी कि जीवन कैसे जीना? नोर्मेलिटी किसे कहते हैं? वे इस हद तक एबनॉर्मल हो गए हैं कि जीवन जीना तक नहीं आता। भौतिक सुखों की इतनी भरमार हो गई है कि रात में नींद की गोलियाँ खाकर सोना पड़ता हैं। अरे! ज़हर खाते हो तुम! इस हद तक एक्सेस हो गए हैं कि नींद जो एक कुदरती भेंट है, उसे भी खो बैठे हैं। इसे जीवन कैसे कहें? भले ही चंद्र तक पहुँचे, लेकिन उसमें खुद का क्या लाभ हुआ? क्या नींद की गोलियाँ खाना बंद हुआ तुम्हारा?

साधक दशा

साधु कौन कहलाता है? आत्मदशा साधे वह साधु। साधु तो साधक ही होता है। जबकि आज कलियुग में साधु तो 'साधक-बाधक' दशा में ही रहते हैं। जब सामयिक-प्रतिक्रमण या ध्यान करते हैं, तब सौ कमाते हैं और शिष्य पर कुढ़ते-चिढ़ते हैं, तब एक सौ पचास का घाटा कर लेते हैं! निरंतर साधक दशा तो 'स्वरूप' का भान (ज्ञान) होने के बाद ही उत्पन्न होती है। साधक दशा यानी सिद्ध दशा, उत्पन्न होती ही जाती है। सिद्ध दशा से मोक्ष और साधक-बाधक दशा से संसार। इसमें किसी का दोष नहीं है। नासमझी का फँसाव है यह। उनकी भी इच्छा तो साधक दशा की ही होती है न?

पुण्य और पाप

संसार में आत्मा और परमाणु दो ही हैं। किसी को शांति दी हो, सुख पहुँचाया हो, तो पुण्य के परमाणु इकट्ठे होते हैं। किसी को दु:ख पहुँचाया हो, तो पाप के परमाणु इकट्ठे होते हैं और फिर वे ही काटते हैं। इच्छानुसार होता है वह पुण्य का उदय और इच्छा के विपरीत होता है वह पाप का उदय। पाप के दो प्रकार हैं और पुण्य के दो प्रकार हैं:-

१) **पापानुबंधी पाप:** वर्तमान में पाप (दु:ख) भुगतता है और (बदले में किसी को दु:ख देकर) फिर नया पाप का अनुबंध बाँधता है। किसी को दु:ख पहुँचाता है और ऊपर से खुश होता है।

२) **पुण्यानुबंधी पाप:** पूर्व के पाप को लेकर आज दु:ख भुगतता है, लेकिन नीति और अच्छे संस्कार से नया अनुबंध पुण्य का बाँधता है।

३) **पापानुबंधी पुण्य:** पूर्व के पुण्य से आज सुख भोगता है, लेकिन भयंकर पाप का नया अनुबंध बाँधता है। आजकल सब जगह पापानुबंधी पुण्य है। किसी अमीर का बहुत बड़ा बंगला हो, लेकिन चैन से बंगले में रह नहीं पाता। सेठ पूरे दिन पैसों के लिए बाहर होते हैं। जबकि सेठानी मोह के बाज़ार में सुंदर साड़ी के पीछे लगी होती है और सेठ की बेटी कार लेकर घूमने निकली होती है। घर पर नौकर ही होते हैं और इस तरह सारा बंगला औरों के हवाले होता है। पुण्य के आधार पर, बंगला मिला, कार मिली, सब मिला। ऐसा पुण्य होता है, लेकिन फिर भी अनुबंध पाप का बाँधें, ऐसी करतूतें होती हैं। लोभ में, मोह में समय गुज़रता है और भोग भी नहीं सकते हैं। पापानुबंधी पुण्यवाले लोग तो विषय की ही लूट करते हैं।

४) **पुण्यानुबंधी पुण्य:** पुण्य भोगते हैं और साथ ही

आत्मकल्याण हेतु अभ्यास-क्रिया करते हैं। पुण्य भोगते हैं और नया पुण्य बाँधते हैं, जिससे अभ्युदय से मोक्षफल मिलता है।

हठ से किए गए सभी कार्यों से, हठाग्रही तप से, हठाग्रही क्रियाओं से पापानुबंधी पुण्य बंधता है। जबकि समझदारी के साथ किए गए तप, क्रियाएँ, अपने आत्मकल्याण हेतु किए गए कर्मों से पुण्यानुबंधी पुण्य बंधता है और कभी किसी काल में ज्ञानीपुरुष से भेंट हो जाती है और मोक्ष में जाते हैं।

पुण्य के बिना लक्ष्मी नहीं मिलती।

इस संसार में सबसे अधिक पुण्यवान कौन? जिसे ज़रा सा विचार आने पर तय करे और सालों तक बिना इच्छा किए मिलता ही रहे, वह।

दूसरे नंबर पर, इच्छा हो और बार-बार तय करे और फिर शाम तक सहज रूप से मिल जाए, वह।

तीसरे नंबरवाला, इच्छा होने पर प्रयत्न करता है और उसे प्राप्त होता है। चौथे नंबरवाले को इच्छा होती है और अत्यधिक प्रयत्नों के बाद प्राप्ति होती है और पाँचवे को इच्छा होने के बाद अत्यधिक प्रयत्नों के बावजूद भी प्राप्ति नहीं होती। इन मज़दूरों को कठोर महेनत करनी पड़ती है, ऊपर से गालियाँ सुनते हैं, फिर भी पैसे नहीं मिलते। मिलें, तो भी घर जाकर खाना मिलेगा या नही इसका कोई ठिकाना नहीं होता। वे सबसे ज़्यादा प्रयत्न करते हैं फिर भी प्राप्ति नहीं होती।

कितने ही लोग कहते हैं कि अनजाने में पाप हो जाएँ, तो उसका कोई फल नहीं आता। नहीं क्यों आएगा? अरे, अनजाने में अंगारों पर हाथ रख दें, तब पता चलेगा कि फल आता है या नहीं? जान-बूझकर किया गया पाप और अनजाने में किया गया पाप, दोनों समान हैं। लेकिन अनजाने में किए गए पाप का फल अनजाने में, और जान-बूझकर किए गए पाप का फल

जानते हुए भुगतना पड़ता है। दोनों में इतना ही अंतर है। उदाहरणार्थ, दो भाई हैं। एक सोलह साल का और दूसरा दो साल का। उनकी माँ मर गई। अतः दोनों को पाप का फल भुगतना पड़ा, लेकिन बड़े को जानकर भुगतना पड़ा और छोटे ने अनजाने में भुगत लिया।

अनजाने में पुण्य भी होता है। उदाहरणार्थ, आप चार घंटे राशन की लाइन में खड़े रहकर कंट्रोल की शक्कर लेकर घर जाते हैं। लेकिन थैली में ज़रा सा छेद हो, तो रास्ते में शक्कर गिरती जाती है और चींटियों का भला हो जाता है। वह अनजाने का पुण्य। उसका फल अनजाने में भोगा जाएगा।

पुण्य और पाप, पाप और पुण्य, उसके अनुबंध में ही प्रत्येक इंसान भटका करता है। इसलिए कभी भी उनसे मुक्ति नहीं मिलती। बहुत पुण्य करे, तब बहुत हुआ, तो देवगति मिलती है, लेकिन मोक्ष तो मिलता ही नहीं। मोक्ष तो, ज्ञानीपुरुष मिलें, और आपके अनंत काल के पापों को जलाकर भस्म करके आपके हाथों में शुद्धात्मा रख दें, तब होता है। तब तक तो चार गतियों में भटकते ही रहना है।

आत्मा के ऊपर ऐसी परतें हैं, आवरण हैं कि किसी इंसान को अंधेरी घुप्प कोठरी में बंद करके, उसे केवल दो वक्त का खाना दें, तब उसे जैसे दुःख का अनुभव होता है, ऐसे अपार दुःखों का अनुभव ये पेड़-पौधे आदि एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को होता है। इन पाँच इन्द्रियवाले मनुष्यों को इतना दुःख है, तो जिनकी कम इन्द्रियाँ हैं उन्हें कितना दुःख रहता होगा? पाँच से ज़्यादा छठी इन्द्रियोंवाला कोई नहीं है। ये पेड़-पौधे और जानवरों की तिर्यंचगति है। वह सख़्त कैद की सज़ा है। मनुष्यगति में सामान्य कैदवाले और नर्कगति में तो भयंकर दुःख, उसका यथातथ्य वर्णन करूँ, तो सुनते ही इंसान मर जाए। चावल को उबालें, तब जैसे वे उछलते हैं, उससे लाख गुना अधिक

दु:ख होता है। एक जन्म में पाँच-पाँच बार मृत्यु वेदना और फिर भी मृत्यु नहीं होती। उनके अंग-अंग विच्छेद होते और फिर जुड़ जाते हैं। वेदना भोगनी ही पड़ती है। नर्कगति यानी उम्रकैद की सज़ा।

देवताओं को नज़रक़ैद जैसा है, लेकिन उनका भी मोक्ष तो नहीं होता। आप किसी की शादी में गए हों, तो आप सब भूल जाते हो। मोह में पूर्णरूप से तन्मय हो जाते हो। आइसक्रीम खाएँ, तब जीभ खाने में लगी होती है। बैन्ड बजता है, तब कानों को प्रिय लगता है। आँखें दुल्हेराजा की राह देखती हैं। नाक, अगरबत्ती और इत्र की गंध में जाती है। पाँचों इन्द्रियाँ व्यस्त होती हैं। मन झमेले में होता है। यह सब जहाँ पर हो, वहाँ आत्मा की याद नहीं आती। देवलोक में सदा ऐसा ही माहौल रहता है। इससे भी अनेक गुना, अधिक सुख होता है। इसलिए वे भान में ही नहीं रहते। उन्हें आत्मा का लक्ष्य ही नहीं रहता। लेकिन देवगति में भी कुढ़न, बेकरारी और ईर्ष्या होते हैं। देवता भी फिर इतने सुखों से ऊब जाते हैं। वह कैसे? शादी में चार दिनों तक लड्डू रोज़ आएँ, तो पाँचवे दिन खिचड़ी की याद आती है, वैसा है। उन लोगों की भी इच्छा होती है कि कब मनुष्य देह मिले और भरतक्षेत्र में अच्छे परिवार में जन्म हो और ज्ञानीपुरुष से भेंट हो जाए। ज्ञानीपुरुष के मिलने पर ही हल निकल सकता है, वर्ना चतुर्गति की भटकन तो है ही।

संकल्प-विकल्प

विकल्प यानी 'मैं' और संकल्प यानी 'मेरा'। 'मैं चंदूलाल' यह विकल्प, सबसे बड़ा विकल्प और 'यह मेरी बीवी, ये मेरे बच्चे और यह मेरा बंगला, मोटर आदि,' वह सब संकल्प।

सर्जन-विसर्जन

खुद ब्रह्म, और रात में चद्दर ओढ़कर सो गया! फिर तरह-

तरह की योजनाएँ बनाता है। उस समय ब्रह्मा बनकर सर्जन करता है। विसर्जन उसके हाथों में नहीं है। विसर्जन नेचर के हाथों में है। जब विसर्जन होता है, तब वह भ्रमित पद में आता है, और बावला और व्याकुल हो जाता है। योजना बनाई, विचार आया, और उसमें तन्मयाकार हुआ, वह सर्जन, और रूपक में आए, वह विसर्जन। विसर्जन को कोई बाप भी बदल नहीं सकता। यदि विसर्जन खुद के हाथों में होता, तो कोई अपनी पसंद बिना का होने ही नहीं देता। पसंद ही रूपक में लाता। लेकिन विसर्जन परसत्ता में है, व्यवस्थित के हाथों में है। वहाँ किसी की नहीं चलती। इसलिए सीधा रहकर सर्जन करना। यदि एक बार ब्रह्मा बन बैठा, तो कभी भी ब्रह्मपद नहीं मिलनेवाला। हाँ, ज्ञानी से मिले, तब ज्ञानीपुरुष उसकी जगत्‌निष्ठा छुड़वाकर एक ही घंटे में उसे ब्रह्मनिष्ठा में स्थित कर देते हैं। वे ब्रह्मनिष्ठ बना दें, फिर तो वह निरंतर ब्रह्मपद में ही रहा करता हैं। अतः वह नया सर्जन नहीं करता, और जो देह है, उसका विसर्जन हो जाता है।

मनुष्य जन्म सृजनात्मक है। उसमें से ही सारी गतियों का सर्जन होता है और मोक्ष भी यहीं से प्राप्त हो सके, ऐसा है।

पुरुष और प्रकृति

सारा संसार प्रकृति को समझने में फँसा है।

पुरुष और प्रकृति को तो अनादि से खोजते आए हैं। लेकिन वे यों हाथ में आ जाएँ, ऐसे नहीं हैं। क्रमिकमार्ग में पूरी प्रकृति को पहचान ले उसके बाद में पुरुष की पहचान होती है। उसका तो अनंत जन्मों के बाद भी हल निकले ऐसा नहीं है। जबकि अक्रममार्ग में ज्ञानीपुरुष सिर पर हाथ रख दें, तो खुद पुरुष होकर सारी प्रकृति को समझ जाता है। फिर दोनों सदा के लिए अलग-अलग ही रहते हैं। प्रकृति की भूलभूलैया में अच्छे-अच्छे फँसे हुए हैं, और वे करते भी क्या? प्रकृति द्वारा प्रकृति को पहचानने

जाते हैं न, उसका कैसे पार पाएँ? पुरुष होकर प्रकृति को पहचानना है, तभी प्रकृति का हर एक परमाणु पहचाना जा सकता है।

प्रकृति अर्थात् क्या? प्र = विशेष और कृति = किया गया। स्वाभाविक की गई चीज़ नहीं। लेकिन विभाव में जाकर, विशेष रूप से की गई चीज़, वही प्रकृति है।

प्रकृति तो स्त्री है, स्त्री का रूप है और 'खुद'(सेल्फ) पुरुष है। कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा कि त्रिगुणात्मक से परे हो जा, अर्थात् त्रिगुण, प्रकृति के तीन गुणों से मुक्त, 'तू' ऐसा पुरुष बन जा। क्योंकि यदि प्रकृति के गुणों में रहेगा, तो 'तू' अबला है और पुरुष के गुणों में रहा, तो 'तू' पुरुष है।

'प्रकृति लट्टू जैसी है।' लट्टू यानी क्या? डोरी लिपटती है, वह सर्जन, डोरी खुले, तब घूमता है, वह प्रकृति। डोरी लिपटती है, तब कलात्मक ढंग से लिपटती है, इसलिए खुलते समय भी कलात्मक ढंग से ही खुलेगी। बालक हो, तब भी खाते समय निवाला क्या मुँह में डालने के बजाय कान में डालता है? साँपिन मर गई हो, तब भी उसके अंडे टूटने पर उनमें से निकलनेवाले बच्चे निकलते ही फन फैलाने लगते हैं, तुरंत ही। इसके पीछे क्या है? यह तो प्रकृति का अजूबा है। प्रकृति का कलात्मक कार्य, एक अजूबा है। प्रकृति इधर-उधर कब तक होती है? उसकी शुरूआत से ज़्यादा से ज़्यादा इधर-उधर होने की लिमिट है। लट्टू का घूमना भी उसकी लिमिट में ही होता है। जैसे कि, विचार उतनी ही लिमिट में आते हैं। मोह होता है, वह भी उतनी लिमिट में ही होता है। इसलिए प्रत्येक जीव की नाभि, सेन्टर है और वहाँ आत्मा आवृत्त नहीं है। वहाँ शुद्ध ज्ञानप्रकाश रहा हुआ है। यदि प्रकृति लिमिट से बाहर जाए, तो वह प्रकाश आवृत्त हो जाता है और पत्थर हो जाता है, जड़ हो जाता है। लेकिन ऐसा होता ही नहीं है। लिमिट में ही रहता है। यह मोह होता है, इसलिए उसका आवरण छा जाता है। चाहे जितना मोह टॉप पर

पहुँचा हो, लेकिन उसकी लिमिट आते ही फिर नीचे उतर जाता है। यह सब नियम से ही होता है। नियम से बाहर नहीं होता।

त्रिगुणात्मक प्रकृति

ब्रह्मा, विष्णु और महेश, वे तीन गुणों के अधिपति देवता हैं। सत्त्व, रजस् और तमस्। तमस् गुणवाले, महादेव को भजते हैं। सत्त्व गुणवाले, ब्रह्मा को भजते हैं और रजस् गुणवाले, विष्णु को भजते हैं। जो जिसे भजे, उसे वे गुण प्राप्त होते हैं। इन्डिया में रजस्गुणवाले अधिक होते हैं, लेकिन संसार तमस् गुण में पड़ा है। ये तीनों ही गुणों के देवता हैं। वे जन्में नहीं हैं, रूपक रखे हैं। वेद भी इन तीन गुणों से मुक्त होकर, तू पुरुष बन, ऐसा कहते हैं।

यह तो प्रकृति नाच नचाती है, जबकि यह मूर्ख कहता है कि मैं नाचा! लट्टू घूम रहा है, उसमें उसका क्या पुरुषार्थ? लाख कमाए तब कहता है कि मैंने कमाया, फिर घाटा होने पर ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैंने घाटा किया? तब तो सारा दोष भगवान पर उँडेल देता है, कहेगा भगवान ने घाटा किया। भगवान बेचारे का कोई बाप नहीं, कोई तरफदारी करनेवाला नहीं, इसलिए ये लोग भगवान पर गलत आरोप लगाते हैं।

यह तो प्रकृति जबरन करवाती है, और कहता है कि मैं कर रहा हूँ। दान करना, जप-तप, धर्मध्यान, दया, अहिंसा, सत्य आदि सभी प्राकृत गुण हैं। अच्छी आदतें और बुरी आदतें भी प्राकृत गुण हैं। प्राकृत चाहे कैसा भी स्वरूपवान क्यों न हो, लेकिन कब भेष बनाए या फ़जीहत करवाए, कह नहीं सकते। एक राजा हो, बड़ा धर्मनिष्ठ और दानेश्वरी हो, लेकिन जंगल में भटक गया हो और चार दिनों तक खाना नसीब नहीं हुआ हो, तो जंगल में भील के पास से माँगकर खाने में क्या उसे शरम आएगी? नहीं । तब कहाँ गई उसकी दानशीलता? कहाँ गई उसकी

राजस्विता? अंदर से प्रकृति चिल्लाकर माँगती है, अतः जब संयोगों के शिकंजे में आता है, उस समय राजा भी भिखारी बन जाता है। वहाँ फिर औरों की तो बिसात ही क्या? यह तो प्रकृति दान करवाती है और प्रकृति भीख मँगवाती है, उसमें तेरा क्या? एक चोर बीस रुपयों की चोरी करता है और होटल में चाय-नाश्ता करके मजे लूटता है। लेकिन जाते-जाते दस रुपये का नोट कोढ़ी को दे देता है, यह क्या है? यह तो प्रकृति की माया है। समझ में आए ऐसी नहीं है।

कोई कहेगा कि आज मैंने चार सामयिक कीं और प्रतिक्रमण किया और दो घंटे शास्त्र पढ़े। यह भी प्रकृति करवाती है और तू कहता है कि मैंने किया। यदि तू ही सामयिक का कर्ता है, तो दूसरे दिन भी करके दिखा न? दूसरे दिन तो कहेगा कि आज तो मुझसे नहीं होता! ऐसा क्यों कह रहा है? और कल जो कहा था, 'मैंने किया,' इन दोनों में कितना बड़ा विरोधाभास है? यदि तू ही करनेवाला हो, तो 'नहीं होता', ऐसा कभी भी बोल ही नहीं सकता। 'नहीं होता,' इसका मतलब यही कि तू करनेवाला नहीं है। सारा संसार ऐसी उलटी समझ के कारण अटका हुआ है। त्याग करता है, वह भी प्रकृति ही करवाती है और ग्रहण करता है, वह भी प्रकृति करवाती है। यह ब्रह्मचर्य का भी प्रकृति जबरन पालन करवाती है, फिर भी कहता है कि मैं ब्रह्मचर्य पालन कर रहा हूँ। कितना बड़ा विरोधाभास!

ये राग-द्वेष, दया-निर्दयता, लोभ-उदारता, सत्य-असत्य सारे द्वंद्व गुण हैं। वे प्रकृति के गुण हैं और खुद द्वंद्वातीत है।

आत्मा, सगुण-निर्गुण

कितने ही लोग भगवान को निर्गुण कहते हैं। अरे! भगवान को क्यों गाली दे रहा है? पागल को भी निर्गुणी कहते हैं। पागल निर्गुणी कैसे है? पागलपन तो एक गुण हुआ, फिर वह निर्गुण

कैसे हैं? इसका अर्थ, आत्मा को निर्गुण कहकर, पागल से भी खराब दिखाते हैं, जड़ समान दिखाते हैं? अरे, जड़ भी नहीं और निर्गुण भी नहीं है। उसके भी गुण हैं। आत्मा को, भगवान को निर्गुण कहकर तो लोग उल्टी राह चल पड़े हैं। यहाँ मेरे पास आ, तो तुझे सही समझ दूँ। 'आत्मा प्रकृति के गुणों की तुलना में निर्गुण है, लेकिन स्वगुणों से भरपूर है।' आत्मा के अपने तो अनंत गुण हैं। अनंत ज्ञानवाला, अनंत दर्शनवाला, अनंत शक्तिवाला, अनंत सुख का धाम, परमानंदी है। उसे निर्गुण कैसे कह सकते हैं? उसे यदि निर्गुण कहेगा, तो कभी भी आत्मा प्राप्त नहीं हो सकेगा। क्योंकि, आत्मा उन गुणों से कुछ अलग नहीं है। वस्तु में वस्तु के गुणधर्म रहे हैं, इसलिए यदि उसके गुणधर्मों को पहचानेंगे, तभी वस्तु को पहचान पाएँगे। जैसे कि सभी धातुओं में से सोने को पहचानना हो, तो उसके गुणधर्म जान लिए हों, तो उसे पहचान सकते हैं। सोना अपने गुणधर्मों से अलग नहीं है। फूल और सुगंध दोनों कभी भिन्न नहीं हो सकते। वह तो सुगंध पर से फूल की पहचान होती है। वैसे ही, आत्मा को आत्मा के गुणधर्म से ही पहचाना जाता है। वही धर्म जानना है। आत्मधर्म जानना है। प्रकृति के धर्मों को तो अनंत जन्मों से जानते आए हैं, लेकिन फिर भी हल नहीं निकला, पार नहीं पाया। ये रिलेटिव धर्म, जो लौकिक धर्म हैं, वे सारे ही प्रकृति के धर्म हैं, देह के धर्म हैं। अलौकिक धर्म ही आत्मधर्म है, रियलधर्म है।

इस देह को नहलाएँ, धुलाएँ, खिलाएँ, उपवास करवाएँ वे सभी प्राकृतधर्म हैं। प्राकृत धर्म का पता-ठिकाना नहीं होता। क्योंकि वह खुद की सत्ता से बाहर का धर्म है। यह तो बिना जुलाब की दवाई लिए जुलाब हो जाता है और जुलाब रोकने की दवाई लिए बगैर बंद हो जाता है, ऐसा है प्रकृति का काम!

प्राकृत पूजा-पुरुष पूजा

संसार में जितनी भी भक्ति चल रही है, वह प्राकृत गुणों

की भक्ति चल रही है। प्राकृत गुण यानी जिनका अस्तित्व शाश्वत नहीं है, ऐसे काल्पनिक गुण। प्राकृत गुण वात, पित्त और कफ के अधीन हैं। खुद के (आत्मा) गुण स्वावलंबी हैं। प्रकृति के गुण परावलंबी हैं। वह तो सन्निपात हो जब, तब पता चल जाता है। संसार में सर्वत्र प्रकृति की ही पूजा चल रही है। पुरुष की पूजा कहीं देखने में नहीं आती। प्रकृति की पूजा का फल संसार है, और पुरुष की पूजा का फल मोक्ष है।

हम स्वयं पुरुष के तौर पर, शुद्धात्मा के तौर पर स्ववश हैं, और प्रकृति के तौर पर परवश हैं। प्रकृति और रेग्युलेटर ऑफ द वर्ल्ड के हिसाब से यह सब चल रहा है। उसमें भगवान हाथ नहीं डालते। पुरुष होने के बाद प्रकृति के साथ कुछ लेना-देना नहीं रहता। हुआ सो प्रकृति। उसके प्रति राग-द्वेष नहीं हुए वह शुद्धात्मा। मारामारी करने पर भी राग-द्वेष नहीं हों, हमारा ऐसा ग़ज़ब का ज्ञान है!

प्रकृति धर्म- पुरुष धर्म

जितने विकल्प हुए, वे सभी प्रकृति में आते हैं। विकल्प नहीं हुए हों, वे प्रकृति में नहीं आते।

यह वणिक है, यह पटेल है, यह मुसलमान है, वे उनकी प्रकृति से पहचाने जाते हैं। बनिए की प्रकृति विचारशील और समझदारीवाली होती है। पटेल, क्षत्रिय कहलाते हैं। उनकी प्रकृति ऐसी कि विपक्षी का सिर काट कर ले आएँ और समय आने पर अपना सिर काट कर दे दें, ऐसी होती है। मुसलमान की प्रकृति कुछ और तरह की होती है। असल में प्रकृति तो प्रत्येक मनुष्य की अलग-अलग होती है। उसका कोई अंत नहीं है।

मन-वचन-काया, ये प्रकृति के तीन हिस्से हैं। तीनों चार्ज़ें इफेक्टिव हैं। उस इफेक्ट में भ्रांति से फिर कॉज़ेज़ खड़े होते

हैं और उसमें से कारण प्रकृति गठित होती है और उसका इफेक्ट है कार्य प्रकृति।

जब तक संदेह नहीं जाता, तब तक प्राकृतधर्म है। संदेह जाए, आत्मा के लिए संपूर्ण नि:शंक हो जाए, तब पुरुष बनता है और उसके बाद ही कारण प्रकृति का गठन होना बंद होता है।

प्राकृत बगीचा

जो-जो इफेक्ट हैं, कार्य प्रकृति हैं, वह कभी भी बदलती नहीं है। हर एक बाप चाहता है कि मेरा बेटा मेरे जैसा बने। अरे! घर को बगीचा बनाना है या खेत? हर एक की प्रकृति अलग-अलग, हर एक पर फूल अलग-अलग आते हैं। दूसरें पौधों पर खुद के जैसे फूल आएँ ऐसा कैसे हो सकता है? यदि केवल गुलाब के ही पौधे हों, तो क्या वह बगीचा कहलाएगा? नहीं, गुलाब का खेत कहलाएगा। जैसे बाजरे का खेत, वैसे ही गुलाब का खेत। यह तो एक साथ मोगरा हो, चंपा हो, जूही हो और काँटे भी हों, तब बगीचा कहलाता है। प्रकृति तो बगीचा है।

लोगों को गुलाब चाहिए, लेकिन काँटे पसंद नहीं, बिना काँटों के गुलाब कैसे हो सकते हैं?

ये नीबू बोते हैं, वह कैसे पनपता है? पृथ्वी, जल, वायु, तेज और अवकाश इन तत्वों से पनपता है। पोषण मिले, तो उस पोषण में स्वाद है? खट्टा रस है? नहीं, फिर वह खट्टापन आया कहाँ से? उसके पास ही कड़वा नीम बोया हो, उसके पत्ते-पत्ते में कड़वाहट कहाँ से आई? पोषण तो दोनों को पाँच तत्वों का सरीखा ही दिया गया था। क्या पानी कड़वा था? नहीं। तो यह कैसे हुआ? वह तो बीज में ही खट्टापन और बीज में ही कड़वाहट थी, इसलिए ऐसा फल आया। बरगद का बीज राई से भी छोटा होता है, और बरगद कितना विशाल होता है? उस बरगद के बीज में ही पूरा बरगद, डालियाँ, पत्ते और जटाओं

के साथ सूक्ष्म रूप से होता है, शक्ति के रूप में होता है। फिर व्यवस्थित शक्ति, संयोग इकट्ठे कर देती है और बीज बरगद के रूप में परिणमित होता है, जो उसके प्राकृत स्वभाव से ही है।

ऐसा ग़ज़ब का प्रकृति ज्ञान है। नदी के पार जा सकते हैं, लेकिन प्रकृति के पार नहीं जा सकते, ऐसा है।

वैराग्य के प्रकार

वैराग्य के तीन प्रकार है:

१) **दुःखगर्भित वैराग्यः** दुःख के मारे संसार छोड़कर भाग जाते हैं और बीवी-बच्चों को कहीं का नहीं रखते। संसार में गुज़ारा नहीं हो रहा हो, तो सोचता है कि 'चलो, वैराग्य लेंगे, तो दो टाइम खाने को तो मिलेगा न? अकेले नंगे पैर चलना और माँगकर खाना इतना ही कष्ट न? वह तो देखा जाएगा।' ऐसा सोचकर वैराग्य लेता है, फिर उसका परिणाम क्या आता है? कई जन्मों तक भटकते ही रहना पड़ता है।

२) **मोहगर्भित वैराग्यः** शिष्य मिलेंगे, मान मिलेगा, कीर्ति मिलेगी, वाह-वाह होगी, लोग पूजा करेंगे, उस लालच से वैराग्य ले ले, तो उसका फल भी संसार में भटकन ही है।

३) **ज्ञानगर्भित वैराग्यः** यही यथार्थ स्वरूप वैराग्य है। ज्ञानहेतु वैराग्य ले, वह। ज्ञान के लिए वैराग्य लेनेवाला कोई एकाध होता है, लेकिन ज्ञान मिलना बहुत कठिन है।

ज्ञान तो ज्ञानी के पास जाने पर ही मिले, ऐसा है। और उसके बाद ही ज्ञानप्रकाश से यथार्थ वैराग्य उत्पन्न होना शुरू होता है।

आत्मा का उपयोग

आत्मा के उपयोग के चार प्रकार हैं:

१) अशुद्ध उपयोगः कोई मनुष्य बिना किसी स्पष्ट कारण के हिरण का शिकार करे और वह भी केवल शिकार के आनंद के लिए ऊपर से गर्व करे कि मैंने कैसा मार गिराया? बिना हेतु के मौज मनाने को ही मारना, वह आत्मा का अशुद्ध उपयोग। किसी का घर जलाकर गर्व करे, गलत काम करके खुश हो, सामनेवाले का नुकसान करके फिर मूछों पर ताव दे- ये सभी थर्ड क्लास के पैसेंजर जैसे हैं। उसका फल नर्कगति।

२) अशुभ उपयोगः घरवाले कहें कि आज तो हिरण लाकर खाना ही पड़ेगा, क्योंकि घर में और कुछ खाने को है ही नहीं। अत:, बीवी-बच्चे जब भूख से तड़प रहें हों, तब वह कोई हिरण मारकर घर ले आए, लेकिन मन में उसे अपार दु:ख होता हो, पश्चाताप होता हो कि मैंने किया सो गलत किया। वह आत्मा का अशुभ उपयोग। अशुद्ध और अशुभ उपयोग में क्रियाएँ एक समान ही होती हैं, फिर भी, एक व्यक्ति की गई क्रिया का गर्व करता है, आनंद मनाता है, जबकि दूसरा पश्चाताप के आँसू बहाता है। इतना ही अंतर है। ये सभी अशुभ उपयोगवाले जीव सेकन्ड क्लास के पैसेंजर जैसे हैं। वे तिर्यंचगति बाँधते हैं।

३) शुभ उपयोगः शुभ उपयोग में घरवाले भूख से तड़प रहे हों, फिर भी वह तो ऐसा ही कहता है कि 'किसी को मारकर मुझे भूख नहीं मिटानी।' वह आत्मा का शुभ उपयोग। परायों के लिए शुभ भावना रखना, लोगों की भलाई करना, ओब्लाइज़ (परोपकार) करना, दिल सच्चा व नीतिमय रखना, वह शुभ उपयोग। सिर्फ शुभ उपयोग तो किसी-किसी को ही होता है। हर जगह शुभाशुभ उपयोग होता है। शुभाशुभ उपयोगवाले, फर्स्ट क्लास के पैसेंजर। उसका फल मनुष्यगति। जबकि सिर्फ शुभ उपयोग में ही रहें, वे तो एर कंडिशन्ड क्लास के पैसेंजर जैसे, वे देवगति पाते हैं।

(४) शुद्ध उपयोग : शुद्ध उपयोग किसे कहते हैं? शुद्ध

उपयोगी शुद्ध को ही देखते हैं। अंदर का माल देखते हैं, पैकिंग नहीं देखते। तत्वदृष्टि से देखना, वही शुद्ध उपयोग। शुद्ध उपयोग आत्मा प्राप्त करने के बाद ही शुरू होता है। उपयोग संपूर्ण शुद्ध हो जाए, तब केवलज्ञान होता है। शुद्ध उपयोग का फल, मोक्ष। हम संपूर्ण शुद्ध उपयोगी हैं। एक महाराज ने मुझसे पूछा, 'आप कार में घूमते हैं, तो कितने ही जीव कुचले जाते हैं, आपको इसका दोष नहीं लगता?' मैंने उनसे कहा, महाराज! आपके शास्त्र क्या कहते हैं,

'शुद्ध उपयोगी और समताधारी, ज्ञान-ध्यान मनोहारी रे,
कर्म कलंक कु दूर निवारी, जीव वरे शिवनारी रे।'

हम शुद्ध उपयोगी हैं। शुद्ध उपयोगी को हिंसा होती है? महाराज बोले, 'नहीं!' मैंने कहा कि 'हमें दोष नहीं लगता, आपको लगता है,' क्योंकि 'मैं महाराज हूँ, ये पैर मेरे हैं और ये जंतु मुझसे कुचले जा रहे हैं।' ऐसा ज्ञान, ऐसा भान आपको निरंतर बरतता है। अरे! नींद में भी बरतता है। इसलिए आपको दोष लगता है, जबकि हम निरंतर शुद्ध उपयोग में ही रहते हैं। यह देह मेरी है, एक क्षण के लिए भी हमें ऐसा नहीं होता। पूरा मालिकीभाव ही हमारा खत्म हो गया है। इसलिए हमें दोष नहीं लगता।

आपका एक प्लॉट हो जिसे आठ दिन पहले आपने लल्लूभाई को बेच दिया हो। दस्तावेज भी कर दिया हो। और एक दिन पुलिस आपके घर हथकड़ी लेकर आती है और आपसे कहती है, 'चलिए चंदूभाई! आपको पुलिस स्टेशन आना होगा।' आप पूछेंगे, 'क्यों भैया, क्या गुनाह किया है मैंने?' इस पर पुलिस कहे, 'आपके प्लॉट में से दस लाख का तस्करी का सोना बरामद हुआ है, यही आपका गुनाह है।' सुनते ही तुरंत 'हाश' करके, पुलिस को आप लल्लूभाई को प्लॉट बेचा, उसका दस्तावेज दिखाएँगे। देखते ही पुलिस समझ जाएगी और ऊपर से आपसे माफी माँगकर चली जाएगी और पहुँचेगी लल्लूभाई के पास।

ऐसा हमारा है। इस देह के भी हम मालिक नहीं हैं। हम सारे ब्रह्मांड के स्वामी हैं, लेकिन मालिकीभाव हमारा एक भी प्लॉट में नहीं है। सारे ब्रह्मांड को थरथराने की शक्ति 'हममें' है, लेकिन इस अंबालाल मूलजीभाई में सेका हुआ पापड़ तोड़ने की शक्ति भी नहीं है!

मनुष्यपन का डेवेलपमेन्ट

इस संसार में मनुष्यपन के चौदह लाख स्तर हैं। उनमें से ऊपर के पचास हज़ार स्तर ही यह बात सुनने लायक हैं। मनुष्यगति में ही होते हैं, लेकिन सबका डेवेलपमेन्ट एक सरीखा नहीं होता। हरेक का स्टेन्डर्ड अलग-अलग होता है। उनके डेवेलपमेन्ट के अनुसार उनके भगवान होते हैं। इसलिए नियम से ही उन्हें उस भगवान की भक्ति प्राप्त होती है। शास्त्र भी उनके डेवेलपमेन्ट के आधार पर आ मिलते हैं। ये सारे मनुष्य डेवेलपमेन्ट के आधार पर अपने स्टेन्डर्ड में होते हैं और उनके पास, उनके स्टेन्डर्ड के हिसाबवाले भगवान भी होते हैं। वे स्टेन्डर्ड लौकिक धर्म-रिलेटिव धर्म के हैं।

माया और मुक्ति !

'माया माथे शींगड़ा, लंबे नव नव हाथ,
आगे मारे शींगड़ा ने पीछे मारे लात।'

माया क्या कहती है? मेरा मान नाम का लड़का जब तक जीवित है, तब तक यदि मेरी सारी संतानों को मार दोगे, फिर भी वे सजीवन हो जाएँगे। क्रोध-मान-माया (कपट)-लोभ-राग-द्वेष, ये छह, मेरे बेटे और सातवीं मैं, ऐसी हमारी वंशावली की बगिया हरी-भरी रहेगी। अतः इस माया और उसके छह बेटों ने सारे संसार को लड़ाई-झगड़ों में फँसा रखा है। यदि एटम बम गिराना है, तो उस पर गिराओ न? झगड़े यही करवाते हैं और संसार कायम रहता है। उसके छह बेटों में क्रोध भोला है।

तुरंत ही भड़भड़ कर डालता है, उसकी तो कोई भी पहचान करवा सकता है। कोई न कोई कह देगा, 'अबे! क्रोध क्यों करता है?' मान, वह भी अच्छा है। लेकिन क्रोध से थोड़ा निम्न कक्षा का, कोई न कोई तो कहेगा, 'अब सीना ताने क्या घूम रहा है?' लेकिन कपट और मोह तो किसी को भी दिखाई नहीं देते और मालिक को खुद भी खबर नहीं होती। अंतिम नंबर आता है लोभ का। कपट, मोह और लोभ से तो भगवान भी तंग आ जाते हैं। ये जल्दी मोक्ष में नहीं जाने देते। बहुत भारी वंशावली है, इस माया की तो! अंत तक यह माया जीती जा सके, ऐसा नहीं है। क्रमिक मार्ग में भगवान पद सामने से पुष्पमाला लेकर आए, तब यह माया! उसे मिलने नहीं देती। वह तो ज्ञानीपुरुष मिलें तभी हल निकलता है और माया की वंशावली निर्मूल हो जाती है। हम और कुछ नहीं करते। मान और अहंकार नाम का उसका जो सबसे बड़ा बेटा है, उसे ही जड़मूल से उखाड़ फेंकते हैं। निकाल देते हैं। फिर पाँचों बेटे और माया बुढ़िया सभी मर जाते हैं ताकि छुटकारा हो और मुक्ति मिले। हम ज्ञान देते हैं, तब आपको सभी प्रकार की माया से मुक्ति दिला देते हैं।

सुख के प्रकार

संसार में तीन प्रकार के सुख हैं:

(१) इन्द्रिय सुख (२) निरीन्द्रिय सुख (३) अतीन्द्रिय सुख।

पंचेन्द्रियों से ही विषय भोगते हैं, वह इन्द्रिय सुख। इन्द्रिय सुख की डाली छोड़ दी और अतीन्द्रिय सुख हाथ नहीं लगा! इसलिए बीच में लटके। निरीन्द्रिय सुख में। और अतीन्द्रिय सुख केवल वही अपना स्वयं का, आत्मा का अनंत सुख है। वह तो बिना आत्मा जाने उत्पन्न होता ही नहीं।

सर्दी की रात की कड़ाके की ठंड थी और एक गाँव के मुसाफिरखाने में एक इन्द्रिय सुखवाला, दूसरा निरीन्द्रिय सुखवाला

और तीसरा अतीन्द्रिय सुखवाला, ऐसे तीन जन जा पहुँचे। रात में हिमपात हुआ और तीनों के पास ओढ़ने-बिछाने को कुछ भी नहीं था। अब तीनों की सारी रात कैसे गुज़री, पता है? इन्द्रिय सुखवाला हर पाँच मिनट पर चिल्ला उठता, 'ओ बाप रे! मर गया रे, इस ठंड ने तो मुझे मार डाला रे!' फलतः सुबह वह सच में मर गया था।

निरीन्द्रिय सुखवाला थोड़ी-थोड़ी देर पर बोलता, 'अबे साली ठंड बहुत है! लेकिन धत्, मुझे कहाँ लग रही है? यह तो देह को लग रही है।' ऐसे अहंकार करके सारी रात गुज़ारी और सुबह देखें, तो सारा शरीर ठंडा पड़ चुका होता है, लेकिन उसकी साँस धीमी-धीमी चल रही होती है।

और अतीन्द्रिय सुखवाला? वह तो बाहर हिमपात होते ही अपनी ज्ञानगुफा में चला जाता है। देह से पूर्ण रूप से सारी रात अलग ही रहता है! अपने अनंत सुख के धाम में ही रहता है! और सुबह उठकर चल पड़ता है।

निरीन्द्रिय सुखवाला अहंकार की मस्ती में ही रहा करता है। लोग बाप जी, बाप जी करते हैं और वह उसी मस्ती में रहता है।

मल-विक्षेप-अज्ञान : राग-द्वेष-अज्ञान

वेदांत में कहा है कि मल, विक्षेप और अज्ञान जाएँ, तब मोक्ष होता है। जबकि जैन दर्शन में कहा है कि राग-द्वेष और अज्ञान जाएँ, तब मोक्ष होता है।

देह के मल तो जुलाब से निकल जाते हैं, लेकिन मन के मल नहीं निकलते। और चित्त का तो किसी से भी नहीं जानेवाला। जब तक अज्ञान है तब तक सारे विक्षेप रहेंगे। थोड़ी शांति रहे, इसलिए ये लोग मल, विक्षेप निकालते रहते हैं। ज्ञान

मिलने के बाद रहा क्या? मल और विक्षेप तो सत्संग में आने से चले जाएँगे।

इस जीव को किसका बंधन है? अज्ञान का, तो छूटे कैसे? जिससे बंधा है, उसके प्रतिपक्षी से, यानी कि ज्ञान से।

'मैं चंदूलाल हूँ' उसी आरोपित जगह पर राग है और अन्य जगहों पर द्वेष है। अर्थात् स्वरूप के प्रति द्वेष है। एक ओर राग हो, तो उसके प्रतिपक्ष के लिए, दूसरे कोने के प्रति द्वेष होगा ही। हम स्वरूप का भान करवाते हैं, शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठा देते हैं, तब उसी क्षण से वह 'वीतद्वेष' में आ जाता है और ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों वीतराग होता जाता है। वीतराग यानी मूल जगह का, स्वरूप का ज्ञान-दर्शन। हम आपको संपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रदान करते हैं। इसलिए आपको संपूर्ण केवलदर्शन उत्पन्न होता है और केवलज्ञान, तीन सौ साठ डिग्री का, पूर्ण रूप से पचता नहीं है, काल की वजह से। अरे! हमें ही चार डिग्री का अजीर्ण हुआ है न? हम देते हैं तीन सौ साठ डिग्री का केवलज्ञान, लेकिन वह आपको पचेगा नहीं। अत: आप अंश केवलज्ञानी कहलाते हैं। जितने अंशों तक आत्म स्वभाव प्रकट होता जाता है, उतने अंशों का केवलज्ञान प्रकट होता जाता है। सर्वांश आत्म स्वभाव प्रकट हो तब सर्वांश केवलज्ञान कहलाता है।

'भ्रांति से भ्रांति को काटना', ऐसा क्रमिक मार्ग में कहा है। जैसे कपड़ा मैला हो, तो उसका मैल निकालने को साबुन चाहिए। अब वह साबुन अपना मैल छोड़ता जाता है। उस साबुन का मैल निकालने के लिए फिर टीनोपाल चाहिए। टीनोपाल साबुन का मैल निकालता है, लेकिन अपना मैल छोड़ता जाता है। ऐसे अंत तक जिन-जिन साधनों को उपयोग में लाएँ, वे अपना मैल छोड़ते जाते हैं। निर्मल कभी भी नहीं हो पाता। वह तो, जो निर्मल हैं, ऐसे ज्ञानीपुरुष से भेंट हो जाए, तभी निर्मल हो पाएगा।

ज्ञानीपुरुष जो संपूर्ण निर्मल हुए हैं, शुद्ध हुए हैं, वही आपके प्रत्येक परमाणु को अलग करके, आपके पापों को भस्मीभूत करके, केवल शुद्धात्मा आपके हाथों में रख दें, तब अंत आएगा। तभी मोक्ष होगा। वर्ना अनंत जन्म, कपड़ा धोते रहना है और जिस साबुन से धोया उसी का मैल लगता जाता है।

वाणी का विज्ञान

सास सुबह से शाम तक किच-किच करती है और बहू मन ही मन झुँझलाती रहती है। यदि वह चार घंटे तक लगातार गालियाँ सुनाती रहे और हम उसे कहें कि 'सास जी, आप फिर से वही गालियाँ, उसी क्रम में फिर से सुनाइए तो!' तो वह सुना पाएँगी क्या? नहीं। क्यों? अरे, वह तो रिकॉर्ड बोल रही थी। यह रिकॉर्ड बोले कि चंचल में अक्ल नहीं है, चंचल में अक्ल नहीं है, तो क्या चंचल रिकॉर्ड से कहेगी कि तुझमें अक्ल नहीं है?' वाणी रिकॉर्ड स्वरूप है, ऐसा स्पष्टीकरण करनेवाले ही हम हैं। वाणी जड़ है, रिकॉर्ड ही है। यह टेपरिकार्ड बजता है, उसमें पहले टेप उतरती है या नहीं? उसी तरह यह वाणी की भी पूरी टेप उतरी हुई है और उसे संयोग मिलते ही, जैसे पिन रखते ही रिकॉर्ड बजने लगता है, वैसे वाणी निकलने लगती है और वह कहता है कि 'मैं बोला।' वकील कोर्ट में केस जीत कर आए, तो सबसे कहता है कि मैंने ऐसे प्लीडिंग की और ऐसा करके केस जीत गया। तू जब हारता है, तब तेरी प्लीडिंग कहाँ जाती है? तब तो कहेगा कि मुझे यह दलील करनी थी, लेकिन करनी रह गई! अरे! तू नहीं बोलता, वह तो रिकॉर्ड बोलती है। यदि जमा-जमाकर बोलने जाएँगे तो एक अक्षर भी नहीं निकलेगा।

कईबार ऐसा होता है या नहीं कि आपने दृढ निश्चय किया हो कि सास के सामने या पति के आगे नहीं बोलना है फिर भी निकल ही जाते हैं? निकल जाते हैं, वह क्या है? हमारी

तो इच्छा नहीं थी। तब क्या पति की इच्छा थी कि पत्नी मुझे गाली दे? तब कौन बुलावाता है? वह तो रिकॉर्ड बोलती है और जो रिकॉर्ड हो चुका हो उसे तो कोई बाप भी बदल नहीं सकता।

कईबार कोई मन में निश्चय करके आया हो कि आज तो फलाँ को ऐसी सुनाऊँगा, वैसा बोल दूँगा, लेकिन जब उसके पास जाता है, तो दूसरे पाँच लोगों को देखकर, एक अक्षर भी बोले वगैर वापस लौट जाता है या नहीं? अरे, बोलना है, लेकिन बोलती बंद हो जाती है, ऐसा होता है या नहीं? यदि वाणी तेरी सत्ता में हो, तो तू जैसी चाहे वैसी वाणी निकलेगी। लेकिन ऐसा होता है क्या? कैसे होगा? यह अंबालाल मूलजीभाई, देहधारी है, फिर भीतर परमात्मा संपूर्ण प्रकट हो गए हैं, फिर भी उनकी वाणी भी रिकार्ड स्वरूप है। हमें बोलने की सत्ता ही नहीं है। हम तो, रिकॉर्ड कैसा बजता है, उसे देखते हैं और जानते हैं। वाणी पूर्णतया जड़ है। लेकिन हमारी यह वाणी चेतन को, प्रकट परमात्मा को स्पर्श करके निकलती है, इसलिए उसमें चेतन भाव है, प्रत्यक्ष सरस्वती है। यह फोटोवाली सरस्वती तो परोक्ष सरस्वती है। लेकिन हमारी वाणी तो प्रत्यक्ष सरस्वती है। इसलिए सामनेवाले के अनंत जन्मों के पापों को जला कर भस्मीभूत कर देती है।

हमारी वाणी संपूर्ण वीतराग होती है, स्याद्‌वाद होती है। वीतराग को पहचानने की सादी रीत उनकी वाणी है। जितना आपका जौहरीपन होगा, उतनी इसकी क़ीमत होगी। लेकिन इस काल में जौहरीपन ही कहीं रहा नहीं है। मुए, पाँच अरब के हीरे की क़ीमत पाँच रुपये लगाते हैं, तब हीरे को खुद बोलना पड़ता है कि मेरी क़ीमत पाँच अरब की है। वैसे ही आज हमें खुद बोलने की नौबत आई है कि हम भगवान हैं! अरे! भगवान के भी *ऊपरी* हैं! संपूर्ण वीतराग! भगवान ने हमें *ऊपरी* का पद खुद दिया है। उन्होंने कहा, 'हम पात्र खोज रहे थे, जो हमें आप में दिखाई दिया। हम तो अब संपूर्ण वीतराग होकर मोक्ष में बैठे

हैं। अब हम से किसी का कुछ सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए आप प्रकट स्वरूप में सर्व शक्तिमान हैं। देहधारी होते हुए भी संपूर्ण वीतराग हैं। इसलिए हम आपको हमारा भी *ऊपरी* बना देते हैं! आज हम चौदह लोक के नाथ के *ऊपरी* हैं। सर्व सिद्धि सहित यह ज्ञानावतार प्रकट हुआ है! अरे! तेरा दीया सुलगाकर (अपनी ज्योति जलाकर) चलता बन। बहुत नाप-तौल मत करना। अतुल्य और अथाह ज्ञानीपुरुष, उसकी तू क्या क़ीमत लगाएगा? घर पर बीवी तक तुझे झिड़क देती है कि 'तुम्हारे में अक्ल नहीं है,' फिर तुम ज्ञानीपुरुष को कैसे नाप सकते हो? जौहरीपना है तुम में? अरे! मुझे नापने जाएगा, तो तेरी मति का ही नाप निकल जाएगा। उसके बजाय सारा आड़ापन गठरी में बाँधकर बांद्रा की खाड़ी में फेंक आ और सयाना होकर, सीधा होकर कह दो कि 'मैं कुछ जानता नहीं हूँ' और आप मुझे अनंतकाल की भटकन से छुड़ाइए बस इतना ही कह दो, ताकि तेरा हल ला देंगे। ज्ञानीपुरुष चाहे सो करें, क्योंकि मोक्षदान का लाइसेन्स उनके हाथों में होता है। ज्ञानी कितने होते हैं संसार में? पाँच या दस? अरे! कभी कभार ही ज्ञानी जन्म लेते हैं, और उसमें भी अक्रम मार्ग के ज्ञानी तो दस लाख वर्षों में जन्म लेते हैं और वह भी ऐसे वर्तमान आश्चर्य युग जैसे कलियुग में ही। लिफ्ट में ही ऊपर चढ़ाते हैं। सीढ़ियाँ चढ़कर हाँफना नहीं पड़ता। अरे! बिजली की चमक में मोती पिरो ले। यह बिजली की चमक हुई है, तब तू अपना मोती पिरो ले। लेकिन भाई तब धागा खोजने निकलता है। क्या करें? पुण्य कच्चा पड़ जाता है।

मात्र वीतराग वाणी ही मोक्ष में ले जानेवाली है। हमारी वाणी मीठी, मधुरी होती है, अपूर्व होती है। पहले कभी सुनने में नहीं आई हो ऐसी होती है, डायरेक्ट (प्रत्यक्ष) वाणी होती है। शास्त्र में जो वाणी होती है वह इनडायरेक्ट (परोक्ष) वाणी होती है। डायरेक्ट वाणी यदि एक ही घंटा सुनें, तो समकित हो जाए। हमारी वाणी स्याद्वाद होती है। किसी का भी प्रमाण

नहीं दु:खे, उसका नाम स्याद्वाद। सर्व नय सम्मत होती है। सभी व्यू पोइन्ट को मान्य रखती है। क्योंकि हम खुद सेन्टर में होते हैं। हमारी वाणी निष्पक्षपाती होती है। हिन्दु, मुस्लिम, पारसी, खोजा सभी हमारी वाणी सुनते हैं और उन्हें हम आप्तपुरुष लगते हैं, क्योंकि हममें भेदबुद्धि नहीं होती। सभी के अंदर मैं ही बैठा होता हूँ न! बोलनेवाला भी मैं और सुननेवाला भी मैं ही।

'कैसे सामनेवाले का संपूर्ण रूप से आत्म कल्याण हो,' ऐसे भाववाली वाणी, वही वीतराग वाणी। और वही उसका कल्याण करती है, ठेठ मोक्ष में ले जाती है।

मौन-परमार्थ मौन

हमारी यह रिकॉर्ड पूरे दिन चलती है, लेकिन फिर भी हम मौन हैं। आत्मार्थ के अलावा और किसी अर्थ को लेकर हमारी वाणी नहीं होती है, इसलिए हम मौन हैं। मौन का पालन करे वह मुनि। लेकिन ये मुनि तो बाहरी मौन का पालन करते हैं जबकि भीतर अशांति रहा करती है, वे मुनि कैसे कहलाएँगे? हम महामुनि हैं! संपूर्ण मौन हैं! इसे परमार्थ मौन कहते हैं।

हित, मित और प्रिय - इन तीनों गुणोंवाली वाणी ही सत्य है और शेष सभी असत्य है। व्यवहार वाणी में यह नियम लागू होता है।

नटुभाई यह हमारी वाणी आप उतार लेते हैं, लेकिन वह आपको पचास प्रतिशत फल देगी और अन्य कोई पढ़ेगा, तो उसे दो प्रतिशत भी फल नहीं मिलेगा। यह बुलबुला जब तलक फूटा नहीं है, तार जोड़कर अपना काम निकाल लो। हम सभी से कहते हैं कि हमारे पीछे हमारी मूर्ति या फोटो मत रखना। हम अपने पीछे ज्ञानीओं की वंशावली छोड़ जाएँगे, हमारे वारिसदार छोड़ जाएँगे और बाद में ज्ञानियों की लिंक चालू रहेगी। इसलिए सजीवन मूर्ति को खोज लेना। उसके बगैर हल निकलनेवाला नहीं है।

अंत:करण

सारी दुनिया जिस साइन्स की खोज में है, उस साइन्स का सर्व प्रथम संपूर्ण स्पष्टीकरण हम दे रहे हैं। मन को समझना मुश्किल है। मन क्या है? बुद्धि क्या है? चित्त क्या है? अहंकार क्या है? उन सभी का यथातथ्य स्पष्टीकरण हम देते हैं।

अंत:करण चार चीज़ों से बना हुआ है। १. मन २. बुद्धि ३. चित्त और ४. अहंकार।

चारों रूपी हैं और पढ़े जा सकते हैं। चक्षुगम्य नहीं हैं, ज्ञानगम्य हैं। कम्पलीट फिज़िकल हैं। शुद्ध आत्मा का और उनका कोई लेना-देना नहीं है। वे पूर्णतया अलग ही हैं। हम पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं, इसलिए उनका असल वर्णन कर सकते हैं।

हरएक का फंक्शन (कार्य) अलग-अलग होता है फिर भी प्रत्येक कार्य चारों के सहयोग से ही संपन्न होता है। मनुष्य देह जिस आधार पर कार्य करती है उसके दो विभाग हैं :- (१) स्थूल - बाह्य विभाग, जिसे बाह्यकरण कहते हैं। (२) सूक्ष्म - अंदर का विभाग, जिसे अंत:करण कहते हैं।

किसी भी कार्य की पहली फोटो, पहली छाप अंत:करण में पड़ती है और फिर वह बाह्यकरण में तथा बाह्य संसार में दृश्यमान होती है।

शरीर में से जो कभी भी बाहर नहीं निकलता, वह मन है। मन तो अंदर बहुत ही उछल-कूद करता है। भाँति-भाँति के पैम्फलेट्स दिखलाता है। मन का स्वभाव भटकना नहीं है। लोग, जो ऐसा कहते हैं कि, 'मेरा मन भटकता है,' वह गलत है। जो भटकता है, वह चित्त है। सिर्फ चित्त ही इस शरीर से बाहर जा सकता है। वह ज्यों की त्यों तसवीरें खींचता है। उसे देख सकते हैं। बुद्धि सलाह देती है और डिसीज़न बुद्धि लेती है और

अहंकार उसमें हस्ताक्षर कर देता है। मन, बुद्धि और चित्त, इन तीनों की सौदेबाज़ी चलती है। बुद्धि इन दोनों में से जिसके साथ भी मिल जाती है, चित्त के साथ या मन के साथ, उसमें अहंकार हस्ताक्षर कर देता है।

मान लीजिए, आप सांताक्रुज में बैठे हैं और भीतर मन ने पैम्फलेट दिखलाया कि दादर जाना है। तब तुरंत चित्त दादर पहुँच जाएगा और दादर की हूबहू फोटो यहाँ बैठे-बैठे दिखाई देगा। फिर मन दूसरा पैम्फलेट दिखाएगा कि चलिए बस में चलेंगे, तब चित्त बस देखकर आएगा। फिर मन तीसरा पैम्फलेट दिखाएगा कि टैक्सी में ही जाना है। फिर चौथा पैम्फलेट दिखलाएगा कि ट्रेन में जाएँ। तब चित्त ट्रेन, टैक्सी, बस सभी देख आता है, उसके बाद चित्त बार-बार टैक्सी दिखाता रहेगा। अंत में बुद्धि डिसिज़न लेगी कि टैक्सी में ही जाना है। अहंकार इन्डिया के प्रेसिडेन्ट की तरह हस्ताक्षर कर देगा, और तुरंत ही कार्य हो जाएगा, और आप टैक्सी के लिए खड़े हो जाएँगे। जैसे ही बुद्धि ने अपना डिसिज़न दिया कि तुरंत मन पैम्फलेट दिखाना बंद कर देगा। फिर दूसरे विषय का पैम्फलेट दिखाएगा। बुद्धि + मन की बात पर अहंकार हस्ताक्षर करेगा या बुद्धि + चित्त की बात पर अहंकार हस्ताक्षर करेगा। मन और चित्त में बुद्धि तो कॉमन रूप से रहती है, क्योंकि बगैर बुद्धि के किसी भी कार्य का डिसिज़न नहीं आता और डिसिज़न आने पर अहंकार हस्ताक्षर कर देता है और कार्य होता है। अहंकार के बगैर तो कोई काम ही नहीं हो सकता, पानी पीने के लिए भी नहीं उठा जा सकता।

यह अंतःकरण वह तो पार्लियामेन्टरी सिस्टम है।

मन कैसा है? विचार क्या है?

अब, यह मन क्या है? उसका स्वरूप क्या है? यह समझाता हूँ।

मन तो ग्रंथि है। गाँठों का बना है। मन सूक्ष्म है। अणु भी नहीं और परमाणु भी नहीं। दोनों के बीच का स्टेज है। जो-जो अवस्था खड़ी होती है, उसमें तन्मय हो जाता है। उस अवस्था में राग या द्वेष करे तब उस 'अवस्था' में 'अवस्थित' होता है। इसलिए 'कारण मन' के रूप में तैयार होता है और उसका जो फल आता है, वह फल 'व्यवस्थित' देता है। वह 'कार्य मन' के रूप में होता है। हर एक का अलग-अलग मन होता है, क्योंकि 'कारण मन' अलग-अलग होता है। 'अवस्था' में जितना ज़्यादा 'अवस्थित' होता जाता है उतनी अधिक मात्रा में परमाणु इकट्‌ठा होते जाते हैं और उसकी ही ग्रंथि बनती है। 'मन ग्रंथि स्वरूप है।' जब ग्रंथियाँ 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर टाइमिंग का संयोग मिलते ही फूटती हैं, तब वह विचार कहलाता है। विचार पर से मन का स्वरूप समझ सकते हैं कि किसकी गाँठ पड़ी हुई है। विचार आता है, उसे पढ़ा जा सकता है। मनचाहे विचार आते हैं, उसमें राग करते हैं और अनचाहे विचार आते हैं, उन पर द्वेष करते हैं और कहते हैं कि हम मन को वश करने जा रहे हैं। मन तो कभी भी वश हो ही नहीं सकता। मन को तो ज्ञान से ही बाँध सकते हैं। जैसे पानी सुराही में बंधता है वैसे। मन को वश करना तो सबसे बड़ा विरोधाभास है। खुद चेतन है और मन अचेतन है, उन दोनों का मेल कैसे हो सकता है? वह तो चेतन, चेतन का कार्य करे और मन को मन का कार्य करने दें, तभी हल निकलेगा। हाँ, जागृति इतनी रखनी है कि मन के कार्य में दखल नहीं करनी है, तन्मय नहीं होना है।

मन की गाँठें कैसी होती हैं, वह मैं आपको समझाता हूँ। एक खेत में गरमी के मौसम में गए हों, तो आपको खेत साफ-सुथरा दिखाई देगा। यह देखकर आप मान लेंगे कि मेरा खेत एकदम साफ है। तब मैं कहूँगा, 'नहीं, भैया, अभी बरसात आने दे, फिर देखना।' बरसात होते ही बाड़ों के पास और हर जगह

तरह-तरह की बेलें निकल आएँगी। ककोड़े की, करेले की, कुँदरू की और जंगली बेलें, ऐसी तरह-तरह की बेलें फूट निकलेंगी, ये बेलें कहाँ से अंकुरित हुई? वहाँ हर एक बेल की गाँठ थी, जो बरसात का संयोग आ मिलते ही फूट निकली। फिर आप खेत को साफ करने के लिए जड सहित बेलें उखाड़ फेंकते हैं और खुश होते हैं कि अब मेरा खेत साफ हो गया, तब मैं कहूँगा, 'नहीं अभी तीन साल तक, बरसात होने के बाद देखते रहो और उसके बाद यदि बेल नहीं उगे, तभी ऐसा कहा जाएगा कि आपका खेत साफ सुथरा हो गया।' उसके बाद ही निर्ग्रंथ होगा। वैसे ही यह मन भी गाँठों का बना है। जिसकी गाँठ बड़ी, उसके विचार ज़्यादा आएँगे। जिसकी गाँठ छोटी, उसके विचार बहुत कम आएँगे। जैसे कि एक बनिए के बेटे से पूछें कि तुझे माँसाहार के विचार कितनी बार आया? तो वह कहेगा, 'मेरी बाइस साल की उम्र में चार-पाँच बार आए होंगे।' इसका अर्थ यही कि उसकी मांसाहार की गाँठ छोटी है, सुपारी जितनी। जबकि एक मुसलमान के बेटे से पूछें, तो वह कहेगा, 'मुझे तो रोज़ कितनी ही बार मांसाहार के विचार आते हैं।' उसका अर्थ यह है कि उसकी मांसाहार की गाँठ बहुत बड़ी है। ज़मीकंद की गाँठ जैसी। जब तीसरे किसी जैन के बेटे से पूछें तो कहेगा, 'मुझे ज़िंदगी में मांसाहार का विचार ही नहीं आया।' उसका अर्थ यही कि उसमें मांसाहार की गाँठ ही नहीं है।

अब आपसे कहा जाए कि एक महीने का ग्राफ बनाकर लाइए। ग्राफ में नोट करें कि सबसे अधिक किस विषय के विचार आए? फिर दूसरे नंबर पर किसके विचार आए? ऐसे नोट करते जाओ। फिर एक सप्ताह का ग्राफ बनाकर लाओ, और फिर एक दिन का ग्राफ बनाकर लाओ। इस पर से आपको पता चल जाएगा कि किस-किस की गाँठे अंदर पड़ी हुई हैं और कितनी-कितनी बड़ी हैं। बड़ी-बड़ी गाँठें तो पाँच दस ही होती हैं, जो बाधक हैं। छोटी-छोटी गाँठें बहुत बाधक नहीं हैं। इतना कर सकते हो या नहीं?

हमारे अंदर एक भी गाँठ नहीं है, हम निर्ग्रंथ हैं। मनुष्य मात्र गाँठदार लकड़ी कहलाता है। उससे फर्निचर भी नहीं बन सकता। अब ये मन की गाँठें बहुत एक्सेस हो जाए, तो देह के ऊपर भी फूट निकलती हैं, ट्यूमर्स कहते हैं उन्हें।

स्व-स्वरूप और मन बिल्कुल भिन्न ही हैं और कभी भी एक नहीं हो सकते। जब मनचाहे विचार आते हैं, तब भ्रांति से ऐसा लगता है कि मैं विचार कर रहा हूँ, मेरे विचार कितने अच्छे हैं और जब अनचाहे विचार आते हैं, तब कहता है कि मुझे बहुत बुरे विचार आ रहे हैं। मना करता हूँ, फिर भी आ जाते हैं। वह क्या सूचित करता है? अच्छे विचार करनेवाला तू और बुरे विचार आने पर कहता है कि मैं क्या करूँ? यदि स्वयं ही विचार करता हो, विचार करने की खुद की सत्ता होती, तो हर कोई मनचाहे विचार ही करता। अनचाहे विचार कोई करता ही नहीं। लेकिन क्या वास्तव में ऐसा होता है? नहीं। वह तो, मनचाहे और अनचाहे, दोनों ही विचार आएँगे ही!

कार्य प्रेरणा मन से है

कई लोग कहते हैं कि मुझे चोरी करने की प्रेरणा भीतर से भगवान देते हैं। यानी तू साहूकार और भगवान चोर, ऐसा? मुए, भगवान कहीं ऐसी प्रेरणा देते होंगे? भगवान तो चोरी करने की प्रेरणा भी नहीं देते और न ही चोरी नहीं करने की प्रेरणा देते हैं। वे क्यों तुम्हें चोरी की प्रेरणा देकर चोर ठहरेंगे? कानून क्या कहता है कि जो प्रेरित करे, वह चोर!

भगवान ऐसी बातों में हस्तक्षेप करते होंगे क्या? वे तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी। सबकुछ देखते और जानते हैं। तब वह प्रेरणा क्या होती होगी? वह तो भीतर में चोरी करने की गाँठ फूटती है, तब तुझे चोरी करने का विचार आता है। गाँठ बड़ी रही, तो बहुत विचार आएँगे और चोरी करके भी आएगा। फिर

कहेगा, मैंने कैसी चालाकी से चोरी की। ऐसा कहने पर चोरी की गाँठ को पुष्टि मिलती है। पोषण मिले, तो नये बीज पड़ते हैं और चोरी की गाँठ और बड़ी होती जाती है। अब एक दूसरा चोर है, वह चोरी करता है, लेकिन साथ-साथ वह भीतर पछताता है कि यह चोरी होती है वह बहुत गलत हो रहा है, लेकिन करूँ भी तो क्या? पेट भरने को करना पड़ता है। वह दिल से पश्चाताप करता रहे, तो चोरी की गाँठ को पोषण नहीं मिलता। अगले जन्म के लिए, चोरी नहीं करनी, ऐसे बीज बोता है। अतः वह दूसरे जन्म में चोरी नहीं करेगा।

मन जो-जो विचार दिखाता है, उसमें खुद अज्ञानता से संकल्प विकल्प करता है, उसके फोटो पड़ते हैं। उसकी नेगेटिव फिल्म तैयार होती है और जब वह रूपक में आता है। तब वह परदे पर पिक्चर देखता है, ऐसा होता है। सिनेमा हॉल में जो फिल्म देखते हैं, वहाँ तो तीन घंटे के बाद, 'दी एन्ड' दिखाते हैं। वह एन्डवाली फिल्म है, जबकि मन का फिल्म अंतहीन है। जब उसका 'दी एन्ड' होता है, तब मोक्ष होता है। इसलिए तो कवि ने औरंगाबाद में, सिनेमा हॉल के ओपनिंग में गाया था,

'तीन घंटे का फिल्म दिखावा दुनिया भर में चलते हैं,
किन्तु मन के फिल्मों का 'दी एन्ड' को मोक्ष ही कहते हैं।'

लोग तो मन को वश में करने निकले हैं। अनचाही फिल्म दिखती है, तब उसे काटता रहता है। कैसे कटे? वह तो फिल्म उतारते समय ही चौकस रहना था न? मन तो एक फिल्म है। फिल्म में जो आए उसे देखना और जानना चाहिए। उसमें रोना या हँसना नहीं चाहिए। कुछ तो फिल्म में, किसी की बीवी मर जाए, तो कुर्सी में बैठे-बैठे रोने लगते हैं। मानों खुद की ही बीवी नहीं मर गई हो! उसमें रोना नहीं चाहिए। वह तो फिल्म है।

ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध

हम तो मन की फिल्म देखते और जानते हैं। क्या-क्या विचार आए और गए उन्हें देखते और जानते हैं। हमारा विचारों से केवल हाथ मिलाने तक का ही संबंध होता है। शादी नहीं कर लेते उनसे। महावीर भगवान भी ऐसा ही करते थे। उन्हें तो विचार आते दिखाई देते और जाते दिखाई देते थे। आते और चले जाते। उन्हें भी विचार अंत तक आते थे। अरे विचार हैं, तो तू है। वे ज्ञेय हैं और तू ज्ञाता है। ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है। यदि ज्ञेय ही नहीं रहे, तो तू ज्ञाता किस का? ठेठ मोक्ष में जाने के अंतिम समय तक मन की फिल्म दिखाई देती है और उसकी समाप्ति पर संपूर्ण मुक्ति होती है, निर्वाण होता है। अंधेरे में अकेले निकलने पर यदि चोर के विचार आएँ, तो समझ लेना कि आज नहीं तो किसी और दिन लूटनेवाले हैं। यदि विचार ही नहीं आते, तो समझ लेना कि लूटनेवाले नहीं हैं। विचारों का आना फोरकास्ट है। वह माल अंदर भरा है, इसलिए विचार के स्वरूप में प्रकट होता है। ऐसे विचार का आना एक एविडन्स (संयोग) है। हमें तो देखना और जानना है और वहाँ विशेष जागृत रहना है। संसार में मन का विज्ञान खास समझने जैसा है। हर कोई मनोलय करने जाता है। अरे मन का नाश नहीं करना है। मन का नाश हो गया, तो मेन्टल हो जाएगा। मन में अच्छा ही आए, ऐसा नहीं होना चाहिए। जो आए सो भले ही आए। मन से हमें क्या कहना है? तू भों-भों बजाना चाहे, तो ऐसा बजा और पिपीहरी (बांसुरी,मुरली) बजाना चाहे, तो वह बजा। कार्य मन को रोकनेवाले या बदलनेवाले हम कौन होते हैं? कोई बाप भी उसे बदल नहीं सकता क्यों कि वह तो इफेक्ट (परिणाम) है। उससे क्या डरना? वह बाजा नहीं बजाएगा, तो हम सुनेंगे क्या? हमें एडजस्टमेन्ट लेना है। जिस ओर का गाना चाहो, उस ओर का गाओ, हमें तो हर ओर का शौक है। ज्ञान होने से पहले अच्छे का शौक था, इसलिए और कुछ सुनना नहीं

भाता था। अब तो हम तेरे साथ एडजस्ट हो गए हैं, इसलिए तू जो बजाना चाहे बजा। अब राग-द्वेष करनेवाले और कोई होंगे, हम नहीं।

मन पर सवार हो जाइए

हमें ज्ञान नहीं था, तब भी हमें विचार आने लगे, तो हम समझ जाते थे कि आज ये सोने नहीं देंगे। तब मैं मन से कहता, 'दौड़, दौड़! बहुत अच्छे, बहुत अच्छे, दौड़ता रह। तू घोड़ा और मैं सवार। तू जिस राह पर चलना चाहे, चल। तू है और हम हैं।' ऐसे ही सुबह के सात बज जाते थे। इस संसार का नियम क्या है? जिस पर रोक लगाएँ, जिस पर कंट्रोल करें, वह ऊपर चढ़ बैठता है। जैसे शक्कर का कंट्रोल करें, तो शक्कर की क़ीमत बढ़ जाएगी। मन का भी यही हाल है। मन पर यदि अंकुश लगाने जाओगे, तो वह दुगनी गति से दौड़ेगा। इसलिए मन पर अंकुश मत लगाना। आज्ञाधीन मन हो और अंकुश रखें, तो चलेगा। आज्ञाधीन न हो, तो उसे दौड़ाते रहना, ताकि थक जाए, हाँफने लगे, हमें क्या? लगाम हमारे हाथ में है न? तब लोग क्या कहते हैं? भाड़ में जाए मन, नींद नहीं आएगी। फिर सोने के लिए मन को दबाते रहेंगे। अंकुशित, नियंत्रित किया करेंगे। अरे! नींद को रखें एक तरफ! यह तो मज़े की बात है, मन पर सवारी करने का मौका है, ऐसा मौका फिर कब मिलेगा?

हमने तो मन पर सवारियाँ करी थी, तभी तो यह अविरोधाभास ज्ञान उत्पन्न हुआ है।

मन तो संसार सागर की नैया है। लेकिन लोग मन को फ्रेक्चर करके निर्विचार भूमिका कर देते हैं। लेकिन निर्विचार पद कभी भी प्राप्त होनेवाला नहीं है। निर्विचार होना, यानी पत्थर जैसा हो जाना। लोग निर्विचार पद किसे कहते हैं? जिन विषयों में मन बहुत उछल-कूद करता हो, उन विषयों को दबा देते हैं,

फल स्वरूप मन दूसरी ओर उछल-कूद करने लगेगा। निर्विचार पद तो किसे कहते हैं? कि समय-समय पर आनेवाले विचारों को, खुद शुद्धात्मा दशा में स्थित रहकर, पूर्णरूप से अलग होकर देखे और जाने। यही भगवान की भाषा का निर्विचारी पद है।

मन को वश करने के लिए लोग लंगोटी बाँधकर, सब छोड़कर, घर-संसार, बीवी-बच्चों, सबको छोड़कर चले गए। यहाँ लोकदर्शन छोड़कर जंगल में जंगली जानवरों के और पेड़-पौधों के दर्शन करने गए। लेकिन अरे वे मन तो साथ ले गए हैं। जो सभी करनेवाला है। गाय-बकरी पालेगा, गुलाब का पौधा लगाएगा, झोंपड़ी बाँधेगा। मन का तो स्वभाव ही ऐसा है कि जहाँ जाए वहाँ संसार खड़ा कर दे। हिमालय में जाएगा, तो वहाँ भी संसार खड़ा कर देगा। अब ऐसे मन को आप कैसे वश में करेंगे? 'मन को वश करना' तो सबसे बड़ा विरोधाभास है। मन के स्वभाव को वश में कर सकें ऐसा नहीं है। लेकिन योगी आदि होते हैं, जो पूर्व जन्म की ऐसी ग्रंथि लेकर आए होते हैं, इसलिए उन्हें आज ऐसा लगता है कि मन वश में हो गया है। लेकिन जब मन टेढ़ा चलता है तब उन्हें खुद को भी मालूम हो जाता है कि मन वश में नहीं है। योगवालों के साथ जब कोई छेड़खानी करे, तब पता चलेगा कि मन कितना वश में है। योग करने की उनकी गाँठ है। वह तो प्राकृत स्वभाव से योग होता है। तब वे ऐसा समझते हैं कि मैंने योग किया, मैंने मन को वश में किया।

मन ज्ञान से वश में आता है। यानी कि ज्ञानी, 'स्वरूप ज्ञान से' ग्रंथियाँ विलय कर देते हैं और तब वह निर्ग्रंथ पद को प्राप्त करता है।

आपका मन ही आपकी अमीरी की फोटो है। मन को पहचान लो। उसका स्वभाव कैसा है, यह पूर्ण रूप से जान लो।

क्षत्रिय का मन कैसा होता है? राजमान राजर्षि जैसा होता

है। मंदिर में गए हों, तब जेब में हाथ डाला और जितने पैसे हाथ में आए, उतने डाल दिए। फिर वह देखने को नहीं रूकता कि कितने निकले और कितने डाल दिए? वणिक बुद्धिवाले का मन बहुत संकीर्ण होता है। पाटीदार तो क्षत्रिय कहलाते हैं। उनका राजर्षि मन होता है, यानी उनमें वणिक जैसी व्यावहारिक समझ नहीं होती। कोई भी पूर्ण नहीं है।

लक्ष्मी जी कहाँ बसती हैं?

लक्ष्मी जी क्या कहती हैं? जो एक सौ लोगों को सिन्सियर रहता है, वहाँ मेरा वास है। वास यानी जिस प्रकार समुद्र में उफान आता है उसी प्रकार से लक्ष्मी आने लगती है। जबकि और सब जगह, मेहनत के अनुसार ही फल मिलता रहता है। सिन्सियर कैसे कहलाएगा? सिन्सियर किसे कहते हैं? तब कहे, मन को पहचान लो। उसकी सिन्सियरिटी कैसी है, उसका विस्तार कैसा है वह पहचान लो।

मेहनत से नहीं कमाते हो। ये तो बड़े मनवाले कमाते हैं। ये जो सेठ लोग होते हैं, वे क्या मेहनत करते हैं? नहीं, वे तो राजर्षि मनवाले होते हैं। मेहनत तो उनका मुनीम ही करता रहता है और सेठ लोग तो मज़े उड़ाते रहते हैं।

मन तो दैवीय होना चाहिए। दैवीय मन यानी अपकार पर उपकार करे वह। सामनेवाला हमारा हजम कर गया हो और ऊपर से हमें मूर्ख कहता हो, लेकिन जब वह संयोगों का शिकार हो जाए तब दैवी मनवाला ही उसकी मदद करता है। दैवी मनवाला देवगति बाँधता है।

वणिक बुद्धि क्या करती है? खुद को ठंड में ओढ़ने को मिला हो और साथवाले को नहीं मिला हो, तो खुद ओढ़कर सो जाएगा। सिर ढँककर सो जाएगा और नींद में होने का स्वाँग करेगा, यदि खुद जागता हुआ दिखेगा, तभी साथवाला माँगेगा न?

इसी तरह मन बहुत मार खिलाता है। जितने राजर्षि उतना आपका। यह दुनिया आपकी है। आपको भोगना आना चाहिए। कबीर जी बड़े समझदार थे, वे कहा करते थे,

'खा-पी खिलाई दे, कर ले अपना काम,
चलती बखत हे नरो! संग न आवे बदाम।'

अपना काम कर ले यानी मोक्ष का काम निकाल ले। संकुचित मन से ही लक्ष्मी जी अवरोधित होती हैं, वर्ना लक्ष्मी जी अवरोधित हों ही क्यों? वणिक बुद्धि समझवाली कहलाती है, लेकिन मोक्ष में जाने हेतु कितनी बाधक है!

मन का संकोच-विकास

मन यदि प्रतिदिन का हिसाब लगाता रहे, तो अगले दिन कढ़ी भी नहीं बना सकेगा। दुकान में चार आने की भी कमाई नहीं हुई हो, तो क्या दूसरे दिन कढ़ी नहीं बनाएँगे? रास्ता यदि पाँच फीट चौड़ा हो, तो भी झाँखर आ लगेगा, दो फीट चौड़ा रास्ता हो, तब भी झंखाड़ आ लगेगा। एकदम संकरा, एक आदमी मुश्किल से जा सके ऐसा रास्ता हो, तब भी झाड़ (झंखाड़) तो आ ही लगेगा, लेकिन वह उसमें से निकल तो जाएगा ही। जितना भी रास्ता हो उसमें से निकल तो जाएगा ही। आज कौन से छेद से गुज़रना है, यह मन जानता है। इसलिए सिकुड़कर, किसी भी रास्ते से निकल जाएगा। दो तार के बीच में से भी निकल जाएगा। इसलिए ही हम कहा करते हैं कि राजा जैसा मन हुआ हो, उसे भिखारी मत होने देना। फूल नहीं तो फूल की पंखुडी बिखेरना पर मन को भिखारी मत बनाना। अरे! संयोग वश तो राजा भी भीख माँगता है, लेकिन इसमें उसका मन थोड़े भिखारी हो जाता है? वह तो राजर्षि ही रहेगा। जितना मन विशाल उतनी विशाल जगह मिलती है। मन जितना संकुचित उतनी संकरी जगह मिलती है।

यह तो ऐसा है न कि जिसकी जैसी मन की गाँठ होगी वैसा ही उसे खींचेगा। लोभी को लोभ की गाँठ होती है। दानशील को दान की गाँठ होती है। तपस्वी को तप की गाँठ होती है। त्यागियों को त्याग की बड़ी गाँठ होती है। वह गाँठ ही उन्हें त्याग करवाती है और त्यागी कहते हैं कि 'मैंने त्याग किया।' अरे, ऐसा कहकर तो तूने गाँठ को और अधिक मजबूत किया, दोहरी गाँठ लगाई। इसका अंत कब आएगा? गाँठ को तो देखना और जानना है, तू जुदा और तेरे मन की गाँठ अलग। मन हम से जुदा है, यह तो साफ पता चलता है, क्योंकि जब सोना हो, तो भीतर मन उछल-कूद करने लगता है और सोने नहीं देता। सब तरह की सोने की सुविधा उपलब्ध होगी, लेकिन फिर भी शांति से सोने नहीं देता।

मन की शांति की खोज में विदेशों से लोग दौड़-दौड़कर इन्डिया आते हैं। लेकिन ऐसे शांति कैसे होगी? ये जैन भी शांति हेतु शांतिनाथ भगवान के दर्शन करने के लिए जाते हैं, लेकिन भगवान कहते हैं कि मेरे दर्शन तो करते हो, लेकिन साथ-साथ जूतों के भी दर्शन करते हों और फिर दुकान के भी दर्शन किया करते हों, इसमें शांति कैसे होगी? अरे! बेटी का नाम 'शांति' रख दे और 'शांति, शांति' बोलता रहेगा, तो तुझे शांति हो जाएगी!

मन के वक्र परिणाम

इस काल में मनुष्य का मन अलग, उसकी वाणी अलग और उसका बर्ताव भी अलग है।

उदाहरण के तौर पर चंदू और उसका मित्र घूमने और शॉपिंग को निकले। तब चंदू के मन, वाणी और वर्तन तीनों अलग-अलग हैं। उसके मन में ऐसा रहता है कि कम दाम में हड़प लेना है और वाणी और बर्ताव से ऐसा दिखावा करता है कि वाजिब दाम से खरीदना है। जब उसका मित्र मन, वाणी और

काया से ऐसा ही रखता है कि वाजिब दाम पर मिले तो खरीद लेना है। इसका परिणाम, चंदू का मित्र ऊर्ध्वगति में जाता है और चंदू अधोगति में जाता है। मन में अलग क्यों रखा? यही मन का वक्र परिणाम है। अतः उतना उसे बंधन हुआ। मन-वचन-काया की भिन्नता रखते हैं, वह भगवान से छिपा नहीं रहता। यह कलियुग है इसलिए वक्र परिणाम है, और वह जन्मघूँटी में से ही हर एक में कम-ज़्यादा मात्रा में होते हैं।

मन का स्वभाव

मन का स्वभाव कैसा है? उसे, अपने से कम सुखवाला बताएँ, तो मन को ज़्यादा सुख मिलता है कि खुद अधिक सुखी है। यदि तेरे दो रूम हैं और किसी दिन मन उछल-कूद करे कि हमारे यदि फ्लेट होता, तो अच्छा रहता। तब मन को दिखाना कि वे जो एक रूम में रहते हैं, वे कैसे रहते होंगे, उनके घर में तो बैठने को कुर्सी तक नहीं है, वे क्या करते होंगे, ताकि तेरा मन फिर खुश हो जाए। यह तो यदि मन कभी फुरसत में हो, और किसी दिन खुराक माँगे, तो हमें मन को ऐसे समझाना चाहिए। वह तो जिसका मन थोड़ा ढीला हो जाए, तो उसे ज़रा शिक्षा देनी चाहिए। बाकी, हम जो देते हैं, वह ज्ञान ही ऐसा है कि और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं रहती। 'व्यवस्थित' का ज्ञान ही ऐसा है कि मन शोर नहीं मचाएगा। मन जहाँ जाए वहाँ समाधान, समाधान और समाधान ही रहेगा। सर्व अवस्थाओं में संपूर्ण समाधान रहे, वही ज्ञान! वही धर्म!

मन का स्वभाव तो बड़ा ही विचित्र है। वह तो ऐसा है कि किसी से झूठ बोलकर पाँच रुपये हड़प ले और फिर बाहर निकलने पर किसी को दो रुपये दान भी कर दे। जिसके ऊपर निरंतर फूल बरसाते हों, उसके प्रति कभी भी अभाव पैदा कर दे, ऐसा है मन। इसलिए सावधान रहना। मन के चलाए मत चलना। कबीर जी क्या कहते हैं, 'मन का चलता तन चले ताका

सर्वस्व जाए' हमें ठग जाए और पता भी नहीं चलने दे, ऐसा चंचल है मन। यदि मन में आत्मा की शक्तियाँ शामिल हों, तन्मयाकार हो जाए, तो सेबोटेज (तहस-नहस) करवा डाले। अरे! तालाब में जाकर छलाँग तक लगा दे और फिर चिल्लाए, 'बचाओ, बचाओ।'

इस काल के लोगों के मन फ्रेक्चर हो गए होते हैं, वे जब चोटी तक पहुँचे, तब उन्हें पानी में डाल दे, ऐसा है।

मन तो नाचनेवाली जैसा है। लोग कहते हैं कि बादशाह नर्तकी को नचाता है। मैं कहता हूँ कि नहीं, नर्तकी बादशाह को नचाती है। ठीक वैसे ही आपका मन आपको नचाता है।

दो मित्र जा रहे हों, उनमें से एक को रास्ते में होटल में से माँस की सुगंध आई। उसके मन में माँसाहार के लिए गाँठे फूटना शुरू हो जाती है, उसके अंदर चंचलता खड़ी होने लगती है, माँसाहार की तीव्र इच्छा होने लगती है, इसलिए वह अपने मित्र से कहता है कि 'मैं अपने एक रिश्तेदार से मिलकर आता हूँ। तू यहाँ खड़े रहना।' ऐसा झूठ बोलकर माँसाहार कर आता है। अरे! भगवान की झूठी सौगंध तक खाता है। गाँठ फूटे, तब सारा उल्टा ही बोलता है। भगवान ने इसे ही कषाय कहा है। तब वह कपट की गाँठ बाँधता है, झूठ की गाँठ बाँधता है और माँसाहार की गाँठ मज़बूत करता है। अज्ञानी में जब एक गाँठ फूटे तब वह और दूसरी पाँच नयी गाँठें बाँधता है। इसके बजाय, जब माँसाहार की गाँठ फूटे, उस घड़ी थोड़ा ढीला पड़ जाए, तो उसका कभी न कभी छुटकारा होना संभव है। अज्ञान दशा में गाँठ से छूटता तो नहीं है, लेकिन यदि सच बोलकर जाए कि मैं माँसाहार करने जाता हूँ, तो उसका उसे बहुत फायदा होता है। यदि मित्र खानदानी हो, तो माँसाहार से छुड़वा भी सकता है या तो कोई रास्ता दिखाएगा, समझाएगा और यदि पछतावा करता रहे, तो आखिरकार उस आदत से छुटकारा भी पा सकता

है। लेकिन ढीला नहीं पड़े और झूठ-कपट का सहारा लेकर जाए, तो कभी भी नहीं छूट पाएगा, ऊपर से कपट और झूठ की नई गाँठें बाँधेगा। इसी कारण से ही भगवान ने ऐसे नियम का पालन करने को कहा था कि मन-वचन-काया से चोरी नहीं करूँगा, इससे वह गाँठ कभी न कभी तो खत्म हो जाएगी।

अंदर तो तरह-तरह की मन की गाँठें होती हैं। लोभ की, मान की, क्रोध की, सभी की गाँठें होती हैं। लोभ की तुलना में मान की गाँठ अच्छी। लोभ की गाँठ तो बहुत बुरी। मालिक को खुद को भी पता नहीं चलता। जबकि मान की गाँठ तो सामनेवाले को दिखाई देती है, इसलिए कोई तो कहेगा कि 'अबे, क्या ऐसे सीना तानकर घूम रहा है? बड़ा अकड़ू हो गया है न?' इससे मान की गाँठ का छेदन हो जाएगा। लोभ की गाँठ का भी कभी न कभी पता चल जाता है, लेकिन कपट की गाँठ का तो कभी भी पता नहीं चलता।

मन की गाँठें कैसे विलय हों?

लोभ की गाँठ और क्रोध की गाँठ खुद को मार खिलाती है और सामनेवाले को भी खिलाती है। भगवान ने लोभ की गाँठ वालों को दान करने का कहा है। एक बार पाँच-पचीस रुपयों की रेज़गारी लेकर रास्ते में बिखेरते जाना। फिर मन उछल-कूद करने लगे, तो फिर से डालना फिर मन धीरे-धीरे चुप हो जाएगा। यदि सोच-समझकर लोभ की गाँठ छेदी जाए, तो उसके समान और कुछ भी नहीं। यदि सोचें कि इतना सारा जमा करता हूँ, यह सब किसके लिए? अपने कौन से सुख के लिए? खुद का (आत्मा का) सुख प्राप्त नहीं करते, परायों के लिए अपना सुख हम खो देते हैं और ऊपर से जो जो गुनाह किए हों, उनकी दफाएँ लागू होती हैं।

जब ज्ञानीपुरुष में गाँठ फूटती है, तब वे तो गाँठ को देखा

करते हैं और जानते हैं। ज्ञानीपुरुष की आज्ञा से, शुद्धात्मा दृष्टि से मन की गाँठों के ऊपर दृष्टि रखने से, गाँठे धीरे-धीरे पिघलती जाती हैं। हमारे पास तो अनंत सिद्धियाँ हैं इसलिए आपकी गाँठे पिघला सकते हैं, लेकिन जहाँ तक संभव हो, हम सिद्धियाँ व्यर्थ खर्च नहीं करते हैं। हम आपको रास्ता बताते हैं। उन गाँठों के फूटने पर आपको एक्सपीरियेन्स होता है और आपको फिल्म देखने को मिलती है। यदि ज्ञेय नहीं रहा, तो ज्ञाता क्या करेगा? जितना मन खिले उतना ही आत्मा खिलता है। जितने ज्ञेय बढ़ते जाते हैं उतनी ही शुद्धात्मा की ज्ञान शक्ति बढ़ती जाती है।

मन को जहाँ-जहाँ कीचड़ लगा है, वहाँ-वहाँ हमारा ज्ञानरूपी वाक्यों का साबुन के रूप में इस्तेमाल करोगे, तो मैल धुल जाएगा।

मन यदि पकौड़ी की माँग करे, तो तुरंत जागृति में आ जाना चाहिए कि यह व्यवस्थित की माँग है या फिर लबाड़ों की माँग है? यदि तीन बार विचार फूटें, तो समझ लेना कि यह व्यवस्थित है। शरीर को ज़रूरत के अनुसार ही यदि भोजन मिलता रहे, तो मन-बुद्धि ठिकाने रहेंगे। यद्यपि हमारे ज्ञान में ग्रहण-त्याग नहीं है, 'व्यवस्थित' आपका मार्ग दर्शन करेगा।

मन को हमेशा खुराक चाहिए, प्रेशर चाहिए। भीड़ में ही एकांत होता है, एकांत में तो बल्कि मन बहकता है। हमारा ज्ञान प्राप्त किए हुए महात्मा तो संसार में निर्लेप रहते हैं और भारी भीड़ में भी एकांत का अनुभव करते हैं। भारी भीड़ हो, तब मन को अपनी खुराक मिल जाती है और मन उसके कार्य में मग्न हो जाता है, तभी 'शुद्धात्मा' अकेले पड़ते हैं और परमानंद में रहते हैं।

किसी का मन ज़रा ढीला पड़ गया हो, तो अज्ञानी भी कहता है किस सोच में डूबे हो? चलो बाहर निकलो। मन तो हर तरह की बात बताता है।

क्या हर किसी को मृत्यु का विचार नहीं आता? आता ही है। हर किसी को मृत्यु का विचार आता है। लेकिन लोग क्या करते हैं? विचार आते ही उसे भगा देते हैं। तो फिर सभी विचारों को भगा दो न? लेकिन नहीं, दूसरा अच्छा लगनेवाला विचार आया तो नहीं भगाते। हमारा यह ज्ञान ही ऐसा है, मृत्यु का पल आए तब 'स्वयं' संपूर्ण प्रकट हो ही जाता है। उस समय 'स्वयं' की गुफा में ही चला जाता है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी चुप। बम गिरनेवाला हो, तब कैसा चुप हो जाता है? वैसे ही ये सभी चुप हो जाते हैं। इसलिए मृत्यु के समय समाधि हो जाती है। हमारे ज्ञानियों (स्वरूपज्ञान प्राप्त महात्माओं) को समाधि मरण होता है।

मन फिज़िकल है

मन तो कम्पलीट फिज़िकल है, मिकेनिकल है। उदाहरण के तौर पर, एक व्यक्ति कोई मशीनरी बनाता है। वह बनाता है तब उसका आत्मा मशीनरी के साथ एकाकार हो जाता है और मशीनरी चलती है, तब अहंकार करता है कि मैंने कैसी सुंदर बनाई? लेकिन यदि उस मशीन को बंद करने का साधन उसमें नहीं दिया हो, तो वह आदमी उसे बंद कैसे करेगा? और यदि भूल से भी उसके द्वारा ही निर्मित मशीन के किसी गीयर में उसकी उँगली फँस गई, तो क्या मशीन उसकी शर्म रखेगी? नहीं रखेगी। फट से उँगली काट देगी, क्योंकि मशीन फिज़िकल है। उस पर बनानेवाले की सत्ता नहीं चलती। ऐसा ही मन का हाल है। बॉडी के परमाणु से, हलके परमाणुओं से, वाणी बनती है और उनसे भी हलके परमाणुओं से मन बनता है।

मन के प्रकार

मन के दो प्रकार हैं, स्थूल मन और सूक्ष्म मन। अन्य शब्दों में, सूक्ष्म मन को 'भाव मन' और स्थूल मन को 'द्रव्य

मन' कहते हैं, कारण मन और कार्य मन। भाव मन का स्थान कपाल में, सेन्टर में, भ्रमर से ढाई इंच की दूरी पर रहा है। जबकि स्थूल मन हृदय में है। स्थूल मन पंखुड़ियोंवाला है। इसलिए ही, कई लोग कहते हैं कि मेरा दिल कबूल नहीं करता। कुछ दहशत हो, तब दिल में खलबली मच जाती है। वह द्रव्य मन है। द्रव्य मन कम्पलीट इफेक्ट है, डिस्चार्ज रूपी है। जबकि भाव मन कॉज़ेज़ उत्पन्न करता है, वह चार्ज करता है।

भाव मन सहेतुक है। इसलिए नये बीज पड़ते हैं। हेतु पर से भाव मन पकड़ में आता है। लेकिन उस हेतु को देखनेवाली दृष्टि खुद में होती नहीं है न? जब 'खुद' शुद्धात्मा हो जाए और पूर्णरूप से निष्पक्षता उत्पन्न हो और मन को कम्पलीटली, अलग फिल्म की तरह देख सके, तभी यह समझ में आएगा कि 'भाव मन क्या है।' भाव मन तक तो सर्वज्ञ के अलावा और कोई पहुँच ही नहीं सकता। ज्ञानीपुरुष जो सर्वज्ञ हैं, वे आपके भाव मन के आगे डाट लगा देते हैं, इसलिए नया मन चार्ज नहीं होता और केवल डिस्चार्ज मन ही रहता है। अत: फिर उसके इफेक्ट को ही देखना और जानना है।

ये अंग्रेज, जिसे सबकॉन्शियस और कॉन्शियस माइन्ड कहते हैं, वह सभी स्थूल मन है। सूक्ष्म मन का एक परमाणु तक किसी से पकड़ा जाए ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञानीपुरुष का ही काम है, क्योंकि वह ज्ञानगम्य है।

आप सभी महात्माओं को मैंने स्वरूप का ज्ञान दिया है इसलिए आप मन से पूर्णरूप से मुक्त हो गए हों। आपका चार्ज मन मैंने बंद कर दिया है और डिस्चार्ज मन के ज्ञाता-दृष्टा बना दिया है। इसलिए अब आपके मन की अनंतगुनी अनंत अवस्थाएँ आने पर भी आप स्वस्थ रह सकते हैं। वही ज्ञान है। जो मन की अवस्था में अस्वस्थ होता है, वहाँ वह अवस्थित हो जाता है। उसी से फिर व्यवस्थित आकर खड़ा हो जाता है, वह भोगते

समय तब फिर से अस्वस्थ हो जाता है और इस तरह यह चक्र चलता ही रहता है।

मन-आत्मा का ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध

हम अचल हैं और विचार विचल हैं। दोनों अलग हैं। ज्ञाता-ज्ञेय के संयोग संबंध के अलावा हमारा और कोई संबंध नहीं है। इसलिए हम सभी से कहते हैं कि किसी भी संयोग में भाव मत बिगाड़ना। असमय अचानक मेहमान आ जाएँ, तो भी भाव मत बिगाड़िए। दाल-रोटी खिलाना, लेकिन अपना भाव मत बिगाड़ना। मन दुर्बल मत होने देना।

क्रोध से तो सामनेवाले का मन टूट जाता है और फिर कभी जुड़ नहीं पाता और अनंत जन्मों तक भटकाता है। कहावत है न, 'मन, मोती और काँच टूट जाए, तो फिर नहीं जोड़े जा सकते।'

'मन:पर्यव ज्ञान' यानी सामनेवाले व्यक्ति के मन में क्या विचार चल रहे हैं, उसका प्रतिघोष खुद के अंत:करण में पड़ना, पहले वह समझ में आता है और फिर धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से खुद पढ़ता, देखता और जानता है, उसे मन:पर्यव ज्ञान कहते हैं। वीतरागों की भाषा में अपने मन के प्रत्येक पर्याय को देखना और जानना वह 'मन:पर्यव ज्ञान'।

वर्ल्ड में हम 'मन' के डॉक्टर हैं। देह के डॉक्टर तो हर जगह मिलेंगे, लेकिन मन का डॉक्टर खोज लाएँ तो जानें। मन के रोगों से, देह के रोग उत्पन्न होते हैं। हम आपके मन के सारे रोग मिटा देते हैं, नये रोग होने से बचाते हैं और जो तंदुरुस्ती प्राप्त हुई है, उसे मेन्टेन करते हैं। आपका मन आपसे अलग कर देते हैं। फिर मन आपको परेशान नहीं करता। फिर तो मन ही आपको मोक्ष में ले जाएगा, इतना ही नहीं, वही मन पूर्ण रूप से आपके वश बरतेगा।

बुद्धिप्रकाश- ज्ञानप्रकाश

पूरे संसार के तमाम विषयों का ज्ञान बुद्धि में समाता है और निर्‌अहंकारी ज्ञान वह ज्ञान में समाता है।

संसार के तमाम सब्जेक्ट्स का ज्ञान हो, लेकिन उसमें अहंकार रहे तो वह सारा ज्ञान बुद्धि में समाता है। अहंकारी ज्ञान, बुद्धिजन्य ज्ञान कब शून्य हो जाए, इसका कोई भरोसा नहीं है। अच्छे-अच्छे बुद्धिमान, संयोगों की चपेट में आकर बुद्धू हो गए हैं। बुद्धिवाला ही बुद्धू होता है।

बुद्धि तो इनडाइरेक्ट प्रकाश है। अहंकार के मीडियम थ्रू आता है। अहंकार के माध्यम से आता है। जैसे कि सूर्य का प्रकाश छप्पर के छेद से आकर शीशे पर पड़े और उसमें से फिर परावर्तित प्रकाश बिंब वापस पड़े, वैसे ही।

जबकि ज्ञान तो आत्मा का डाइरेक्ट प्रकाश है, फुल लाइट है। जैसा है, वास्तव में वैसा ही दिखाए, वह ज्ञान। बुद्धि परप्रकाश है, स्वयं प्रकाशक नहीं है। जबकि ज्ञान स्वयं प्रकाशक है। खुद स्वयं ज्योतिर्मय है और सारे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की उसमें अनंत शक्ति है। जैसे कि सूर्य स्व-पर प्रकाशक है, जबकि चंद्र पर प्रकाशक है।

संपूर्ण ज्ञानप्रकाश के आगे बुद्धि तो सूर्य के सामने दीये के समान है। हमारे पास संपूर्ण ज्ञानप्रकाश है। इसलिए बुद्धि हममें नाम मात्र को भी नहीं है। हम खुद अबुध हैं। हमें एक किनारे पर अबुध पद प्राप्त हुआ ठीक उसके सामनेवाले किनारे पर सर्वज्ञ पद आकर खड़ा हो गया। जो अबुध होता है, वही सर्वज्ञ हो सकता है।

बुद्धि के प्रकार

बुद्धि के दो प्रकार : (१) सम्यक् बुद्धि (२) विपरीत बुद्धि।

(१) सम्यक् बुद्धि अर्थात् सुल्टी दिशा में चलती हुई बुद्धि। समकित होने के बाद ही सम्यक् बुद्धि उत्पन्न होती है और वह फिर सुल्टा ही दिखाती है। जैसा है वैसा दिखाती है। किसी-किसी को ही सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है। (२) विपरीत बुद्धि :- जहाँ सम्यक् बुद्धि का अभाव है, वहाँ विपरीत बुद्धि अवश्य होती ही है। विपरीत बुद्धि यानी मोक्ष के हेतु से विपरीत। बुद्धि का स्वभाव ही है कि वह ऐसा दिखाती है कि जिससे संसार की ही नींव मज़बूत होती है। कभी भी मोक्ष में नहीं जाने देती, वह विपरीत बुद्धि। बुद्धि संसारानुगामी है यानी कि संसार का ही हिताहित रखनेवाली है, मोक्ष का नहीं।

ज्यों-ज्यों बुद्धि बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों संताप बढ़ता जाता है। दो साल के बच्चे की माँ मृत्यु शैय्या पर हो, तो उसे कोई असर नहीं होता, हँसता-खेलता रहता है। जबकि बीस साल के बेटे को बहुत संताप होता है। अतः बुद्धि बढ़ने से संताप बढ़ा। इन मज़दूरों को बिल्कुल चिंता नहीं होती, वे तो रोज़ाना आराम से सोते हैं, जबकि सेठ लोग चिंता किया करते हैं। यहाँ तक कि रात को भी चैन से नहीं सोते। ऐसा क्यों? क्योंकि बुद्धि बढ़ी, इसलिए। बुद्धि के प्रतिपक्ष में संताप, काउन्टर वेट में होता ही है।

बुद्धि हो वहाँ 'मैं करता हूँ' ऐसा अहंकार होता ही है और इसलिए चिंता रहा करती है। वही भगवान से दूर रखती है।

कृष्ण भगवान ने बुद्धि को व्यभिचारिणी बताया है। वह तो संसार में ही भटकाया करती है, ऐसा कहा है।

बुद्धि की आवश्यकता कब तक? जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, तब तक आवश्यकता है, लेकिन वह कितनी? संसार में पत्थर के नीचे उँगली फँस गई हो, तो उसे युक्तिपूर्वक निकाल लेने जितनी ही और फिर से उँगली नहीं फँसे, उतनी ही बुद्धि काम में लेनी चाहिए। पैसे कमाने में या किसी को ठगने हेतु बुद्धि का उपयोग नहीं करना चाहिए। वह तो बहुत बड़ा जोखिम है।

लक्ष्मी तो पुण्य से आती है, बुद्धि के प्रयोग से नहीं आती। इन मिल मालिक और सेठ लोगों में तनिक भी बुद्धि नहीं होती, लेकिन लक्ष्मी ढेरों आया करती है और उनका मुनीम बुद्धि चलाता रहता है। इन्कमटैक्स के ऑफिस में जाएँ, तब साहब की गालियाँ भी मुनीम ही सुनता है, जबकि सेठ तो चैन की नींद सोया रहता है।

बुद्धि का आशय

हर इंसान को अपने घर में ही आनंद आता है। झोंपड़ेवालों को बंगले में आनंद नहीं आता और बंगलेवाले को झोंपड़े में आनंद नहीं आता। उसकी वजह उनकी बुद्धि का आशय है। जो जैसा बुद्धि के आशय में भर लाया हो, वैसा ही उसे मिलता है। बुद्धि के आशय में जो भरा हो, उसकी दो शाखाएँ निकलती हैं। (१) पाप फल और (२) पुण्य फल। बुद्धि के आशय में हर एक का अपना विभाजन होता है, यानी सौ प्रतिशत में से अधिकतर भाग तो मोटर-बंगले, बेटे-बेटियाँ, और बहू के लिए भरे होते हैं। तो वह सब प्राप्त करने में पुण्य खर्च हो जाता है। धर्म के लिए मुश्किल से एक या दो प्रतिशत ही बुद्धि के आशय में रहता है।

दो चोर चोरी करते हैं। उनमें से एक पकड़ा जाता है और दूसरा आज़ाद घूमता है। इससे क्या सूचित होता है? चोरी करना, ऐसा दोनों बुद्धि के आशय में भर लाए थे। लेकिन जो पकड़ा गया, उसका पापफल उदय में आया और खर्च हो गया। जबकि दूसरा छूट गया, उसका पुण्य उसमें खर्च हो गया। इस प्रकार हर एक की बुद्धि के आशय की पूर्ति में पाप पुण्य कार्य करते हैं। एक मनुष्य बुद्धि के आशय में लक्ष्मी प्राप्त करनी है, ऐसा भर लाया है, तो उसका पुण्य उसमें खर्च होने के कारण लक्ष्मी की बरसात होती है। दूसरा भी बुद्धि के आशय में लक्ष्मी प्राप्त करनी है, ऐसा लेकर तो आया लेकिन उसमें पुण्य के बदले पापफल

सामने आया, परिणाम स्वरूप लक्ष्मी जी मुँह ही नहीं दिखातीं। यह सारा तो साफ-साफ हिसाब है, इसमें किसी की एक नहीं चलती। तब यह अकर्मी ऐसा मान लेते हैं कि दस लाख रूपये मैंने कमाए। अरे! यह तो पुण्य खर्च हुआ, वह भी उल्टी राह पर। इसके बजाय अपनी बुद्धि का आशय बदल दीजिए। केवल धर्म के लिए बुद्धि का आशय रखने जैसा है। इन जड़ चीज़ों के लिए, यानी मोटर, बंगला, रेडियो आदि की भजना करके, उनके लिए बुद्धि का आशय बाँधने जैसा नहीं है। धर्म के लिए ही, आत्मधर्म हेतु ही बुद्धि का आशय होना चाहिए। वर्तमान में आपको जो प्राप्त हुआ है, वह भले रहा, लेकिन अब आशय बदलकर सौ प्रतिशत आशय धर्म हेतु ही रखिए।

हम हमारी बुद्धि के आशय में सौ प्रतिशत धर्म और जगत् कल्याण की भावना लेकर आए हैं। अन्य किसी चीज़ के लिए हमारा पुण्य खर्च नहीं हुआ, पैसा, मोटर-बंगले, बेटा-बेटी, कहीं भी नहीं।

जो-जो हमसे मिले और ज्ञान ले गए, उन्होंने दो-चार प्रतिशत धर्म के लिए, मुक्ति हेतु डाले थे इसलिए हमसे भेंट हुई। हमने शत-प्रतिशत धर्म में डाले, इसलिए हमें हर ओर से धर्म के लिए 'नो ऑब्जेक्शन' सर्टिफिकेट मिला है।

गणपति : बुद्धि के अधिष्ठाता देव

गणपति जी सारे गणों के अधिपति हैं। बुद्धि के अधिष्ठाता देव हैं। शास्त्र लिखने के प्रमुख अधिकारी हैं वे। उनकी बुद्धि का प्रकाश हर जगह पड़ता है। उनकी बुद्धि में ज़रा सा भी कच्चापन नहीं है। इसलिए ही सभी देवों में उन्हें पहला स्थान दिया जाता है। पूजा आदि में भी गणपति को प्रथम रखा जाता है। उनकी पूजा से बुद्धि विनम्र होती है, विभ्रम नहीं होती, विपरीत नहीं होती। महीने में दो ही अड़चनें आई हों, लेकिन रोज़ डर

लगता रहे, वही विपरीत बुद्धि। ऐसे बुद्धि विभ्रम नहीं हो जाए, विपरीत नहीं हो जाए, इसलिए गण के पति-गणपति जी को पूजा में प्रथम रखते हैं, लेकिन बिना समझे पूजा होती है, इसलिए जैसा चाहिए वैसा फल प्राप्त नहीं होता। समझकर पूजा हो, तो बहुत ही सुंदर फल मिलता है।

गणपति जी बुद्धि के सभी बंधनों में से होकर निकल चुके हैं, ऐसे देवता हैं। इसलिए समझकर उनकी पूजा करने से बुद्धि का भ्रम टल जाता है और सद्बुद्धि प्राप्त होती है।

बुद्धिजन्य अनुभव और ज्ञानजन्य अनुभव

जिसने आइसक्रीम कभी खाई ही नहीं है, उसे अंधेरे में आइसक्रीम दे दी जाए, तो वह कल्पना ही करता रहेगा कि क्या आइसक्रीम ठंडे स्वभाव की ही होगी? दूध का स्वभाव भी ऐसा ही ठंडा होगा? इलायची भी ठंडे स्वभाव की होगी? लेकिन आइसक्रीम और उसके अंदर की चीज़ों का जिसे पृथक् -पृथक् बुद्धिजन्य अनुभव होता है, वह सभी चीज़ों को उनके गुणों के आधार पर जानता है और आइसक्रीम ठंडी क्यों लगती है, यह भी जानता है। ऐसा वह बुद्धिगम्य अनुभव से जानता है। जब बुद्धितत्व संसार में इतना सारा काम करता है, तो आत्मतत्व क्या नहीं कर सकता? वह तो डायरेक्ट प्रकाश है।

ज्ञानप्रकाश देने के पश्चात्, हम सभी से बुद्धि को रिटायर करने को कहते हैं। सारे संसार को बुद्धि की ज़रूरत है। वह उसका अवलंबन है। लेकिन स्वरूपज्ञान ऐसा है कि उसमें बुद्धि की ज़रूरत नहीं है। हम बुद्धि को झूठा कहते हैं उसकी कभी मत मानना। उसे कह दीजिए, 'हे बुद्धिबहन! आप मुझे कई जन्मों से परेशान करती आई हैं। बहनजी, आप अब पीहर चली जाएँ। जिसे आपकी ज़रूरत है, उसके पास जाइए। हमें अब आपकी ज़रूरत नहीं है।' मतलब अब बुद्धि को पेन्शन देकर विदा करो।

बुद्धि का तिरस्कार नहीं करना है, क्योंकि ज़रा सा भी तिरस्कार रहेगा, तब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। इसलिए समझा-बुझाकर पेन्शन देकर विदा करो। पेन्शन मतलब आश्वासन।

यदि आप मोक्ष में जाना चाहते हैं, तो बुद्धि की एक मत सुनना। बुद्धि तो ऐसी है कि ज्ञानीपुरुष का भी उल्टा दिखा देती है। अरे! जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है, उसका ही उल्टा देखा? तब फिर आपका मोक्ष आपसे अनंत जन्मों दूर हो जाएगा।

बुद्धि ही संसार में भटका कर मरवाती है। अरे! एक औरत की सुनकर चलें, तब भी पतन होता है, टकराव हो जाता है, तो यह तो बुद्धिबहन! उसकी सुननेवाला तो कहीं का कहीं जा गिरता है। अरे! रात दो बजे जगाकर बुद्धि बहन उल्टा दिखाएगी। स्त्री तो कुछ समय के लिए ही साथ होती है, लेकिन बुद्धिबहन तो निरंतर साथ ही रहती है। इसलिए बुद्धि तो डीथ्रोन (पदभ्रष्ट) कराए, ऐसी है।

एक हीरा पाँच अरब का है और आप सौ जौहरियों को क़ीमत करवाने बुलाएँगे, तो हर एक अलग-अलग क़ीमत करेगा, क्योंकि हर एक अपनी बुद्धि के अनुसार मुल्यांकन करेगा। अरे! हीरा तो वही का वही है और क़ीमत अलग-अलग क्यों? क्योंकि हर एक की बुद्धि में अंतर है इसलिए। इसलिए मैं कहता हूँ, ''यह 'ज्ञानावतार' आपकी बुद्धि की नाप से नहीं नापे जा सकते, इसलिए नापना मत!''

ज्ञानीपुरुष के पास तो भूल से भी बुद्धि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ज्ञानीपुरुष का प्रत्येक अंग, उनका एक-एक दिव्य कर्म पूजने योग्य है। वहाँ बुद्धि इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए। ये ज्ञानीपुरुष तो देहधारी हैं, लेकिन भीतर तो अद्‌भुत अहर्निश जागृत हैं। आपको जो दिखाई देते हैं, वे देहधारी ज्ञानी नाटक का हिस्सा हैं। संपूर्ण नाटकीय भाव में ही रहनेवाले हम, अबुध हैं। अबुध के संग से ही अबुध हो सकते हैं।

संसार के लोगों का काम-काज बुद्धि चलाती है, जबकि ज्ञानियों का 'व्यवस्थित' चलाता है। फिर उसमें व्यतिरेक होता ही नहीं।

बुद्धि क्या है? वह तो पिछले जन्म का आपका व्यू पोइन्ट है। जैसे आप हाई वे पर से गुज़र रहे हो और पहले मील पर एक प्रकार का व्यू पोइन्ट दिखाई दिया, तो इस पर बुद्धि के हस्ताक्षर हो जाते हैं कि हमें भी ऐसा ही हो तो ठीक रहेगा। इस प्रकार पहले मील का व्यू पोइन्ट तय हो जाता है। फिर आगे बढ़ने पर दूसरे मील पर अलग ही दृश्य दिखाई देता है और सारा का सारा व्यू पोइन्ट ही बदल जाता है, तब उसके हिसाब से बुद्धि फिर हस्ताक्षर कर देती है कि हमें ऐसा ही चाहिए, लेकिन इससे पिछला व्यू पोइन्ट भूल गया ऐसा नहीं है इसलिए वह आगे का आगे ही चलता रहता है। यदि पिछले व्यू पोइन्ट का अभिप्राय नहीं लें, तो हर्ज नहीं है, लेकिन ऐसा होना संभव नहीं है। अभिप्राय आकर आगे खड़ा हो ही जाता है। इसे हम गत ज्ञान-दर्शन कहते हैं। क्योंकि बुद्धि ने हस्ताक्षर करके मुहर लगा दी है, इसलिए अंदर मतांतर होता ही रहता है। आज की आपकी बुद्धि आपके पिछले जन्म का आपका व्यू पोइन्ट है और आज का व्यू पोइन्ट आपके अगले जन्म की बुद्धि होगी, ऐसे परंपरा चलती ही रहती है।

चोर चोरी करता है, वह उसका व्यू पोइन्ट है। उस पर पिछले जन्म में बुद्धि ने मुहर लगाई है। इसलिए इस जन्म में चोरी करता है। यदि उसे अच्छों का संग मिल जाए, तो फिर उसका व्यू पोइन्ट बदल भी जाता है और ऐसा तय करता है कि चोरी करना गलत है। अतः पिछले जन्म के व्यू पोइन्ट के आधार पर चोरी तो करता है, लेकिन आज का उसका व्यू पोइन्ट चोरी नहीं करनी चाहिए, ऐसा हो रहा है, इससे अगले जन्म में चोरी नहीं करने की बुद्धि प्राप्त होती है।

मतभेद क्यों?

किसी के साथ मतभेद होता है, उसकी क्या वजह है? हर एक का व्यू पोइन्ट अलग-अलग होने के कारण। हर एक मनुष्य अलग-अलग देखता है। चोर चोरी करता है, वह उसका व्यू पोइन्ट है। वह खुद चोर नहीं है। किसी के व्यू पोइन्ट को गलत कहना, उसके आत्मा को गलत कहने के समान है, क्योंकि उसकी बिलीफ में ऐसा है। इसलिए वह तो उसे ही चेतन मानता है, इसलिए चेतन को गलत बतलाया कहा जाएगा। उसके व्यू पोइन्ट से वह सही है, क्योंकि जब तक अज्ञान है तब तक उसका व्यू पोइन्ट ही उसका आधार है। ज्ञान प्राप्ति के बाद सेन्टर में (आत्मा में) आने से अज्ञान और व्यू पोइन्ट दोनों निराधार हो जाते हैं।

हम किसी को भी 'तू गलत है' ऐसा नहीं कहते। चोर को भी गलत नहीं कहते हैं, क्योंकि उसके 'व्यू पोइन्ट' से वह सही है। हाँ, हम उसे चोरी करने का फल क्या होगा, वह जैसा है वैसा, समझाते हैं।

संसार के सारे लोग सद्‌बुद्धि और दुर्बुद्धि के बीच ही झूलते रहते हैं। सद्‌बुद्धि शुभ दिखलाती है और दुर्बुद्धि अशुभ दिखलाती है। कुल मिलाकर दोनों प्रकार की बुद्धि संसारानुगामी है। इसलिए हम उसे विपरीत बुद्धि कहते हैं। विपरीत बुद्धि लेनेवाले और देनेवाले दोनों का ही अहित करती है। जबकि सम्यक् बुद्धि लेनेवाले और देनेवाले दोनों का हित ही करती है।

बुद्धि तो ज़बरदस्त मार खिलवाती है। यदि घर में कोई बीमार हो जाए और यदि बुद्धि दिखलाए कि ये मर जाएँगे तो? बस, हो गया। सारी रात बुद्धि रुलाती रहेगी।

बनियों में बहुत बुद्धि होती हैं, इसलिए उन्हें बहुत मार पड़ती है। वणिक बुद्धि से तो मोक्षमार्ग में अंतराय पैदा होता

है। मोक्ष में जाना वह तो शूरवीरों का काम है, क्षत्रियों का काम है। आत्मा वर्ण से तो अलग है, लेकिन प्राकृत गुण उसे उलझा देते हैं, उल्टा दिखलाते हैं। क्षत्रिय तो चतुर-बलवान होते हैं। चोबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय थे। क्षत्रियों को तो जहाँ मोक्ष के लिये भाव आएँ, वहाँ सांसारिक चीज़ का तोल नहीं करते। जबकि वणिक तो मुक्ति का भाव आए, वहाँ भी सांसारिक चीज़ों का तोल करते हैं। वणिक बुद्धि पर तो नज़र रखने जैसा है, उससे जागृत रहने जैसा है। मोक्ष मार्ग पर वणिक बुद्धि बहुत उलझाती है।

वणिक में लोभ की गाँठ बहुत बड़ी होती है और वह तो दिखाई तक नहीं देती। जबकि क्षत्रिय तो उछल-कूद मचा देते हैं। सब जगह रौब जमाते फिरते हैं। लेकिन वह तो जब मार खाते हैं तब ठिकाने पर आ जाता है, लेकिन वणिक को राह पर लाना बड़ा मुश्किल है।

क्षत्रिय मंदिर में पैसे डालने जेब में हाथ डाले, तो जितने पैसे हाथ में आएँ उतने डाल देते हैं। जबकि वणिक घर से तय करके निकलता है कि पाँच पैसे डालने हैं और रास्ते में छूट्टे करवाएगा और प्रत्येक मंदिर में पाँच या दस पैसे डालेगा। जब भाव होता है, तब वणिक बुद्धि खर्च करेगा।

पैसा-वैसा क्या है? *पूरण-गलन* है। *पूरण* हुआ, तो *गलन* होगा ही। बहीखातों का हिसाब है। उसमें लोग बुद्धि खर्च करके दख़ल कर डालते हैं। ये तो मरे, *पूरण-गलन* में शक्तियाँ बरबाद कर देते हैं। पैसा तो बैंक बैलेन्स है, हिसाब है। निश्चित ही है। उसमें, पैसा कमाने में बुद्धि खर्च करते हैं, वे अपना ध्यान बिगाड़ते हैं और अगला जन्म बिगाड़ते हैं।

अधूरे में पूरा ट्रिक करना सीख गए हैं। ट्रिक यानी सामनेवाले की कम बुद्धि का गलत लाभ उठाकर अपनी ज़्यादा बुद्धि से सामनेवाले की धोखा देकर हड़प लेना। ट्रिकवाला बड़ा चपल होता

है, और दूसरा चोर भी चपल होता है। ट्रिकवाला तो भयंकर अधोगति में जाता है।

वणिक तो बुद्धि की ऐसी बाड़ बना लेते हैं कि अपना खुद का ही संभालते हैं, पड़ोसी का नहीं देखते। वे व्यवहार में अच्छे किसलिए दिखाई देते हैं? बुद्धि की बाड़ से। उनकी दृष्टि खुद की ओर ही होती है। केवल अपने स्वार्थ में ही रहता है। यदि उसे न्याय करने को कहा जाए, तो उसमें सामनेवाले को सुख होगा या दु:ख होगा, यह देखने बैठ जाता है। मतलब न्याय ऐसा करेगा कि सामनेवाले को बुरा नहीं लगे। सामनेवाले को बुरा नहीं लगे, इसलिए मरा झूठ बोलता है, गलत न्याय करता है। फलत: भगवान तो भीतर बैठे हैं, वे देखते हैं कि इसने तो दोनों ओर से परदा रखा हुआ है। सच-सच बोलना चाहिए, कड़वा नहीं लगे ऐसा सत्य कहो, लेकिन यह तो परदा रखकर झूठा न्याय करता है। अत: भयंकर जोखिम मोल लेता है। सामनेवाला गलत हो, उसे सच्चा साबित करना तो बहुत बड़ा जोखिम लेना कहलाता है। जैसा है वैसा कह देना चाहिए।

यह सब कैसे खड़ा हुआ है? तो वह इसलिए कि, जब तक सामनेवाले की समझ में नहीं आता, तब तक स्वार्थ में लगे रहते हैं। संसार में शांति रहे इस हेतु से बुरा संग्रह किया है, वह जो मोक्ष में जाते हुए, काट-काटकर, पीड़ा देकर वह माल खाली होगा। यह माल तो बहुत परेशान करेगा। सीधे-सीधे मोक्ष में नहीं जाने देगा।

ये वणिक बुद्धिवाले तो किसी जीव को नहीं मारते और किसी की जेब से कुछ निकालते नहीं है। मतलब स्थूल चोरियाँ और स्थूल हिंसा बंद कर दीं, लेकिन सूक्ष्म चोरी ओर सूक्ष्मतम चोरियाँ थोक में होती हैं। यह स्थूल चोरीवालों की जमात तो ऊपर उठेगी, लेकिन यह सूक्ष्म चोरीवालों की जमात ऊँची नहीं आएगी। यह ट्रिकवाला तो बैठा हुआ ही है अपने घर में, लेकिन

ऐसी सूक्ष्म मशीनरी काम में लगाई हुई होती है कि बेचारे किसानों की हड्डी-चमड़ी ही बचती है और सारा लहू वह ट्रिकवाला चूस जाता है। भगवान ने इसे सूक्ष्म हिंसा बताया है। 'बंदूक से मार डालनेवालों का निबटारा आ जाएगा, लेकिन इन ट्रिकबाज़ों का हल नहीं निकलनेवाला है,' ऐसा भगवान ने कहा है।

बंदूक से मारनेवाला तो नर्क में जाकर वापस ठिकाने पर आ जाएगा और मोक्ष की राह खोज निकालेगा। जबकि ट्रिक मारनेवाला संसार में अधिक से अधिक गहरे उतरता जाएगा। लक्ष्मी के ढेर लगेंगे, उसका दान करता रहेगा। बीज उगते ही रहेंगे और संसार चलता ही रहेगा। यह तो पॉलिश्ड ट्रिकें हैं।

ज्ञानीपुरुष में एक भी ट्रिकवाला माल ही नहीं होता। वणिक बुद्धि ट्रिक के आधार पर ही खड़ी है न? उसके बजाय नहीं आता हो, वह अच्छा है। ज्ञान से पहले, मैं लोगों को ट्रिकें सिखलाया करता था, वह भी सामनेवाला फँस गया हो, तो उस पर करुणा आती थी, इसलिए। लेकिन बाद में तो वह भी बंद कर दिया। हमारे पास ट्रिक नहीं होतीं। जैसा है वैसा होना चाहिए। मन से, वाणी से और देह से एक ही होना चाहिए, जुदाई नहीं होनी चाहिए।

यह घड़ी आपने नब्बे रुपये में खरीदी और एक सौ दस में बेचने को निकाली। इसमें ट्रिक करके कहता है कि मैंने तो एक सौ दस रुपये में खरीदी है। अतः एक सौ दस में ही बेचता है। उसके बजाय सही-सही बता दे कि नब्बे में ली है और एक सौ दस में बेचनी है, सामनेवाले को लेनी होगी, तो एक सौ दस रुपये देकर ले जाएगा। 'व्यवस्थित' ऐसा है कि एक सौ दस रुपये आपको मिलनेवाले ही हैं, इसलिए आप ट्रिक करें या नहीं करें तो भी वह मिलेंगे ही। यदि सब इतना हिसाबी है, तो मुफ्त में ट्रिक आजमाकर जोखिमदारी क्यों मोल लेवें? यह तो ट्रिक का जोखिम मोल लिया। उसका फल अधोगति है।

लक्ष्मी जी के अंतराय क्यों आते हैं? ये ट्रिकें आज़माया करते हैं इसलिए। आदत सी हो गई है ट्रिकें आजमाने की। वर्ना वणिक तो व्यापार करते हैं, चोखा व्यापार करते हैं। उन्हें तो भला कहीं नौकरी करना थोड़े ही होता होगा?

चोखा व्यापार करें

इसलिए हम परम हित की बात कह रहे हैं, ट्रिकें इस्तेमाल करना बंद करें। स्वच्छ व्यापर करें। ग्राहकों से साफ कह दें कि इसमें मेरे पंद्रह प्रतिशत मुनाफा जुड़ा है, आपको चाहिए, तो ले जाइए। भगवान ने क्या बताया है? यदि तुझे तीन सौ रुपये मिलनेवाले हैं, तो तू चाहे चोरी करे, ट्रिक आजमाए या फिर चोखा रहकर धंधा करे, तुझे उतने ही मिलेंगे। उसमें से एक पैसा भी इधर-उधर नहीं होगा। तो फिर ट्रिकें और चोरी की ज़िम्मेदारी क्यों मोल लेता है? थोड़े दिनों न्याय से व्यापार करके देखो। शुरू-शुरू में छह-बारह महीने तकलीफ होगी, लेकिन बाद में फर्स्ट क्लास चलेगा। लोग भी समझ जाएँगे कि इस आदमी का धंधा चोखा है, मिलावटवाला नहीं है। तब बिन बुलाए, अपने आप आपकी दुकान पर ही आएँगे। आज आपकी दुकान पर कितने ग्राहक आनेवाले हैं, वह 'व्यवस्थित' 'व्यवस्थित' ही है। तब अभागा गद्दी पर बैठकर, 'अभी ग्राहक आएँ तो अच्छा है, अभी ग्राहक आएँ तो अच्छा है' ऐसा सोचकर चित्रण करता रहता है और अपना ध्यान खराब करता है।

यदि मन में ऐसा नक्की किया हो कि मुझे चोखा, बिना मिलावटवाला धंधा करना है, तो वैसा ही हो जाएगा। भगवान ने कहा है कि 'खाने की चीज़ों में और सोने में मिलावट करना वह भयंकर गुनाह है।'

कच्छी लोगों को भी ये ट्रिकें आज़माने का भयंकर रोग लग गया है। वे तो बनियों को भी मात दें ऐसे हैं।

आजकल तो ज़माना ही ऐसा है कि ट्रिकवालों के बीच ही रहना पड़ता है, फिर भी लक्ष्य में निरंतर यही रहना चाहिए कि हम ट्रिकों में से कैसे छूटें। यदि यह लक्ष्य में होगा, तो पश्चाताप द्वारा बड़ी जोखिमदारी से छूट जाएँगे और ऐसे संयोग भी प्राप्त होंगे कि आपको एक भी ट्रिक नहीं आज़मानी पड़ेगी और व्यापार भी सुचारू रूप से चलेगा। फिर लोग भी आपके काम की सराहना करेंगे।

यदि हमें मोक्ष में जाना है, तो ज्ञानी के कहे अनुसार करना चाहिए और यदि मोक्ष में नहीं जाना है, तो ज़माने के अनुसार करना। लेकिन मन में इतना खटका अवश्य रखना कि मुझे ऐसा ट्रिकवाला काम नहीं करना है, तो वैसा काम मिल जाएगा। व्यापार में तो ऐसा होना चाहिए कि छोटा बच्चा आए, तो भी उसके माता-पिता को ऐसा भय नहीं रहे कि बच्चा ठग लिया जाएगा।

लक्ष्मी जी की कमी क्यों है?

लक्ष्मी की कमी क्यों है? चोरियों से। जहाँ मन-वचन-काया से चोरी नहीं होगी, वहाँ लक्ष्मी जी की मेहर होगी। लक्ष्मी का अंतराय चोरी से है।

पैसे कमाने के लिए अक्ल का इस्तेमाल नहीं करना होता। अक्ल तो लोगों की भलाई करने में ही इस्तेमाल की जानी चाहिए।

ज्ञान जानने पर प्रकाश में आता है कि क्या करने से खुद सुखी होता है और क्या करने से दु:खी होता है? अक्लमंद तो ट्रिक आज़माकर सब बिगाड़ते हैं।

ट्रिक शब्द ही डिक्शनरी में नहीं होना चाहिए। 'व्यवस्थित' का ज्ञान किसलिए दिया गया है? 'व्यवस्थित' में जो हो सो भले हो। ग्यारह सौ रुपये मुनाफा हो, तो भले हो और घाटा हो, तो भी भले हो। सत्ता 'व्यवस्थित' के हाथों में है, हमारे हाथों में सत्ता नहीं है। यदि सत्ता हमारे हाथों में होती, तो कोई

सिर के बाल सफेद होने ही नहीं देता। कोई भी ट्रिक खोज निकालता और बालों को काले के काले ही रखता।

बिना ट्रिकवाला व्यक्ति सरल दिखता है। उसका मुख देखकर ही प्रसन्नता हो जाती है। लेकिन ट्रिकवाले का मुख तो भारी लगता है, जैसे कि अरंडी का तेल पीया हो। खुद के, 'शुद्धात्मा' हो जाने के बाद, यह सारा माल साफ करना पड़ेगा न? 'जितना लिया, उतना दिया' तो करना ही पड़ेगा न? ट्रिक से भरा हुआ माल, मार खाकर भी लेकिन वापस तो करना ही पड़ेगा न? इसीलिए तो हम कहते हैं कि 'ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी एन्ड डिसऑनेस्टी इस द वर्स्ट फूलिशनेस।'

बुद्धिक्रिया और ज्ञानक्रिया

जो-जो अशुद्ध, अशुभ या शुभ जाने, वह बुद्धिक्रिया है, ज्ञानक्रिया नहीं। ज्ञानक्रिया तो केवल शुद्ध को ही देखती है और जानती है। बुद्धि ज्ञेय को ज्ञाता मनवाती है। 'मैं चंदूलाल हूँ', वह ज्ञेय है, उसे ही ज्ञाता मनवाती है, वह बुद्धि है। उसमें अहंकार मिला हुआ ही रहता है। ज्ञेय को ज्ञाता मानता है। बुद्धिक्रिया को ही ज्ञानक्रिया मान लें, तो फिर मोक्ष का अनुभव कैसे कर पाएँगे?

बुद्धि से, बिल्कुल सामिप्य भाववाला दिखता है। फिर भी बुद्धि की बिसात ही नहीं है कि ज्ञेय को ज्ञेय और ज्ञाता को ज्ञाता देख सके। क्योंकि बुद्धि स्वयं ज्ञेय स्वरूप है, इसलिए रियल सत्य को नहीं देख सकती। संसार का आदि-अंत है ही नहीं। उसको लेकर सभी ने बुद्धि प्रयोग से दख़ल की है, यह जानकर तुम्हें क्या लाभ है? संसार अनादि-अनंत है, गोल है। गोले में आदि कैसा और अंत कैसा? अनादि-अनंत है, यह तो तू बुद्धि से परे होकर ज्ञानी बनेगा, तब अपने आप समझ में आ जाएगा।

स्वच्छंद अर्थात् बुद्धिभ्रम, स्वच्छंद से खुद, खुद का ही भयंकर

अहित कर रहे हैं। अपनी-अपनी समझ से चलना, वही स्वच्छंद है। फिर चाहे वह शुभ या अशुभ कार्य में हो या शास्त्र पठन में हो। यदि शास्त्र पठन में एक भी उल्टी समझ पैदा हो गई, तो अनंत जन्मों की भटकन का साधन खड़ा हो जाएगा। इसलिए स्वच्छंद से सावधान रहना।

जहाँ विपरीत बुद्धि शुरू हो गई, वहाँ यू आर होल एन्ड सोल रिस्पोन्सिबल फॉर देट। ज़िम्मेदार आप ही हो। वहाँ फिर भगवान हस्तक्षेप करने नहीं आते। विपरीत बुद्धि तो देनेवाले को और लेनेवाले को दोनों को ही दु:खी करती है।

बुद्धि के दो प्रकार, आंतरिक बुद्धि और बाह्य बुद्धि। हिन्दुस्तान के लोगों में आंतरिक बुद्धि होती है और परदेशियों में बाह्य बुद्धि होती है। आंतरिक बुद्धिवाले अधिक दु:खी होते हैं, क्योंकि जितनी अधिक बुद्धि डेवेलप हुई होती है, उतना ही संताप बढ़ता है। फिर बाहर की प्रजा साहजिक है, जबकि इन्डियन्स तो कुछ बातों में साहजिक हैं और कुछ बातों को लेकर विकल्पी हैं। अध्यात्म के लिए आंतरिक बुद्धि ही काम की है।

यह बुद्धि बाहर खोज़बीन करती है, लेकिन बाहर सब जगह निरे झाड़-झंखाड़ ही हैं। भीतर खोजें तो फायदा है। लोगों की बुद्धि निरंतर बाहर घूमती रहती है, इसलिए फिर थक जाती है। मैं ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ जो निरंतर अंदर ही घूमती रहे, तब जाकर उसका काम हो जाता है। आपकी बुद्धि विपरीत है, वह सुख को निकाल बाहर करती है और दु:ख को निमंत्रित करती है। आप सुख और दु:ख को भी नहीं पहचान सकते।

बुद्धि तो वक्र ही दिखलाती है। जड़ में जो अस्थायी सुख है, उसे बुद्धि ग्रहण करती है। वास्तव में, चीज़ में सुख या आनंद है ही नहीं। नयी मोटरकार पर कोई चार लकीरें खींच दे तो? पिचका दे तो? बुद्धिग्राह्य जितने भी सुख हैं, वे अंतत:

दु:ख परिणामी हैं। चीज़ के आकर्षण को लेकर, बुद्धि उसमें सुख का आरोपण करती है। चीज़ें अनंत हैं। अपने सुख की खोज के लिए प्रत्येक जीव किसी चीज़ को चखकर देखता है और यह तय करता है कि किस चीज़ के प्रभाव से यह सुख उत्पन्न होता है? फिर उसकी खोज में निकल पड़ता है। पहले यह तय किया कि पैसे में सुख है, इसलिए पैसे के प्रभाव से सुख मिलता है। लेकिन फिर उसके पीछे पागल होकर घूमता है और दु:खी होता है। फिर दूसरा ऐसा नक्की करता है कि स्त्री में सुख है। स्त्री ने पुरुष को और पुरुष ने स्त्री को पसंद किया और सेक्स तथा पैसा दोनों खोज निकाला। इन दोनों चीज़ों से सुख मिले ऐसा निश्चित कर लिया। लेकिन यदि पत्नी विरुद्ध हो जाए, तो दु:ख का दावानल भड़कता है। पैसा विरुद्ध हो जाए तो? एन्फोर्समेन्टवाले यदि धावा बोल दें, तो वही पैसा विरुद्ध में गया कहलाता है, जो महादु:ख का कारण बनता है।

जहाँ बुद्धिभेद वहाँ मतभेद

आज की दुनिया में घर में तीन सदस्य होते हैं, लेकिन शाम होते होते तैंतीस मतभेद सामने आते हों, तो वहाँ हल कैसे निकले? अरे, शिष्य और गुरु के बीच में शाम तक कितने ही मतभेद हो जाते हैं। इसका अंत कैसे होगा? जहाँ पर भेदबुद्धि है, वहाँ मतभेद अवश्य होंगे ही। यदि अभेद बुद्धि उत्पन्न हो जाए, तो समझो बात बन गई। खुद निष्पक्षपाती होकर सेन्टर में बैठकर सबको निर्दोष देखे। बुद्धि उल्टा दिखाए, तो तुरंत ही सम्यक् बुद्धि से हम कह दें कि जाओ निकाल करके आओ, तो वह निकाल कर आती है।

जब आत्मा भ्रमित हुआ, तो संसार खड़ा हो गया। जब बुद्धि भ्रमित होगी, तब ज्ञान प्रकट होगा।

मैं किसी की भी बुद्धि नहीं देखता हूँ, मैं तो 'समझ' देखता

हूँ। बुद्धि तो एक लाइन में तीन सौ जगह पर टेढ़ी होती है, लेकिन समझ सीधी रही, तो हर्ज नहीं है। बुद्धिवाला तो बुद्धि में ऊपर उठता है और फिर नीचे भी आ गिरता है। जबकि समझवाला, दर्शनवाला ऊँचे ही ऊँचे, ठेठ तक पहुँच जाएगा, लेकिन नीचे तो गिरेगा ही नहीं। बुद्धि प्राकृत गुण है, स्वगुण नहीं है। दर्शन वह स्वगुण है।

तेज (पित्त) तत्ववालों को बुद्धि अधिक होती है और वात तत्ववालों की समझ गहरी होती है।

जो लौकिक है, वह सब बुद्धि की कल्पना से खड़ा हुआ है। सभी धर्मों में, जिसकी कल्पना में जो-जो आया, वह शास्त्र में लिख दिया। शास्त्र बुद्धिजन्य ज्ञान ही है। उसमें चेतन नहीं मिलता। जबकि ज्ञान वह तो स्वयंप्रकाश है और वह ज्ञानी के हृदय में ही होता है। बुद्धि के पर्याय हैं, उसकी बोधकलाएँ अपार हैं। बुद्धि अवस्था को स्वरूप मनाने के चक्कर में रहती है। इसलिए हम कहते हैं कि बुद्धि से सावधान रहना। जब बुद्धि दिखलाने लगे तब 'दादाजी' को स्मरण करके कहना, 'मैं वीतराग हूँ,' ताकि बुद्धि बहन बैठ जाए।

ज्ञान किसी की भूल नहीं निकालता। बुद्धि सभी की भूलें निकालती है। बुद्धि तो सगे भाई की भी भूल निकालती है और ज्ञान 'सौतेली माँ' की भी भूल नहीं निकालता। सौतेली माँ, जब बेटा भोजन करने बैठा हो, तो वह नीचे से जली हुई खिचड़ी की खुरचन परोसती है, तब बुद्धि खड़ी हो जाती हैं। वह कहता है कि सौतेली माँ ही बुरी है जो निरा संताप करवाती है। लेकिन यदि बेटे को ज्ञान मिला हो, तो ज्ञान तुरंत हाज़िर हो जाएगा और कहेगा, अरे भाई 'वह भी शुद्धात्मा और मैं भी शुद्धात्मा हूँ और यह तो पुद्गल का खेल है, जिसका निकाल हो रहा हैं।' देह तो मिट्टी की बनी है और बुद्धि तेज से बनी है, इसलिए प्रकाश देती है और जलाती भी है। इसलिए ही बुद्धि

को हम लबाड़ कहते हैं। अबुध होने की ज़रूरत है। बुद्धि तो मनुष्य को अबव नॉर्मल कर देती है और कभी-कभी बिलो नॉर्मल भी कर देती है। संसार में प्रत्येक चीज़ नोर्मेलिटी में चाहिए। 'अबुध' हुए बगैर नोर्मेलिटी कभी भी नहीं आ पाएगी।

हम 'अबुध' हैं, निराग्रही हैं, नोर्मेलिटी में हैं। हमारे एक ही बाल में सारे संसार का 'ज्ञान' समाया हुआ है।

जिसमें बुद्धि कम होती है, उसका हृदय नाज़ुक, कोमल होता है। वह काम निकालना चाहे तो अपना काम निकाल सकता है, वर्ना उतना ही उल्टा भी कर बैठे। सप्ताह में एक रविवार को, बस एक ही दिन, यदि बुद्धि का उपयोग न करे, तो वह काम निकाल सकता है। अगले जन्म का बीज बोना हो, तभी बुद्धि इस्तेमाल करना। बुद्धि का प्रकाश बढ़ाना आपके हाथ में नहीं हैं, लेकिन कम करना तो आपके हाथ में है ही। अतः बुद्धि का प्रकाश डिम रखना। बुद्धि सामुदायिक हितकारी नहीं होती। ज्ञान सामुदायिक हितकारी होता है।

अवधान की शक्ति

कम बुद्धिवालों में द्वेष अधिक होता है। विकसित बुद्धिवालों में द्वेष नहीं होता। जब हम संग्रहालय देखने जाते हैं, तब किसी भी चीज़ के प्रति द्वेष करते हैं क्या? कुसंग अर्थात् बुद्धि की उठापटक, ऐसा सोचता है और वैसा सोचता है।

अवधान लिमिटेड, सीमित है। वह बुद्धि की शक्ति पर आधारित है। प्रत्येक मनुष्य अपनी बुद्धि के आशय में जो माल भरकर लाया है इस जन्म में वही माल निकलता है। उसके अलावा और कुछ नहीं है। हिन्दुस्तान के इन चोरों को चोरी करते समय एक साथ सोलह-सोलह अवधान रहते हैं। जब चोर, चोरी करने जाता है तब बिना खाए-पीए जाता है, इससे उसकी अवधान शक्ति बढ़ती है। इसलिए चोरी कहाँ करनी है? किस पॉइन्ट पर करनी

है? किस समय करनी है? पुलिसवाला कहाँ पर है? बटुवा कौन सी जेब में है? भागना कहाँ से होगा? ऐसे तो सोलह-सोलह अवधान हमारे हिन्दुस्तान के चोरों को एट-ए-टाइम रहते हैं। अवधान शक्ति पूर्णरूप से बुद्धिजन्य है, ज्ञानजन्य नहीं है। अवधान थोड़ी देर के लिए बढ़ जाता है और आधा सेर रबड़ी खा ली, तो उतर भी जाता है। ऐसा विचित्र है यह सब! ज्ञानजन्य हो, तो एक समान ही रहता है। उतार-चढ़ाव नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : क्या बुद्धि ही माया है?

दादाश्री : नहीं, माया यानी अज्ञान। ज्ञान मिलने पर अज्ञान-माया जाती है, लेकिन अंतःकरण तो रहता ही है। बुद्धि रहती ही है। बुद्धि संसार के लिए हितकारी हों, ऐसी चीज़ों में हाथ डलवाती है और संसार में भटकाती है। बुद्धि क्या है? कोई आपके बेटे को फँसाता हो, तो आपकी बुद्धि बीच में घसीटेगी। वास्तव में तो 'व्यवस्थित' ही सब करता है, फिर भी बुद्धि दख़ल देती है। पहले मन, बुद्धि को फोन करता है। तब खुद अंदर दख़ल कर सकता है। बोल उठता है, 'क्या कहा? क्या कहा?' हर बात में बुद्धि का दखल पहले रहता है। रात को नींद में, सपने में दख़ल नहीं देती, तो सब ठीक चलता है। तो फिर यह संसार भी जागृत अवस्था का स्वप्न ही है न?

कोई कार ड्राइवर जब ड्राइविंग कर रहा हो, और सामने से बस आ रही हो, और पास में बैठा हुआ मुसाफिर यदि चलानेवाले का हाथ पकड़ ले तो क्या होगा? टकरा नहीं जाएगा क्या? लेकिन लोग बड़े सयाने होते हैं, बस आए, फिर भी स्टियरिंग पकड़ नहीं लेते, क्योंकि उन्हें मालूम है कि स्टियरिंग चलानेवाले के हाथ में है। जिसका काम है वही करे तो ठीक रहता है। ऐसे, मोटर जैसी स्थूल चीज़ों के बारे में तो लोग समझते हैं, लेकिन इस 'अंदर' की बात को कैसे समझेंगे? इसलिए 'खुद' उसमें दखल दे ही देता है और झमेला खड़ा हो जाता है। यदि

'अंदर' के मामले में भी जैसे सब मोटर ड्राइवर पर छोड़ देता है, वैसा समझ जाए, तो कोई दखलंदाज़ी नहीं होगी।

तत्वबुद्धि अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और वह हाथ में आ गया तो देहबुद्धि चली जाती है। देह में जो बुद्धि थी, वह अब तत्व में परिणमित हुई। तत्वबुद्धि अर्थात् सम्यक् बुद्धि। जब सम्यक् ज्ञान उत्पन्न हो, तब सम्यक् बुद्धि, तत्वबुद्धि उत्पन्न होती है। उसके बिना तो विपरीत बुद्धि ही रहती है।

अंतःकरण का तीसरा अंग : चित्त

अंतःकरण का तीसरा अंग चित्त है। चित्त का कार्य भटकने का है, वह ज्यों की त्यों फोटो खींच देता है। यहाँ बैठे-बैठे अमरीका की यथावत् फिल्म दिखलानेवाला चित्त है। मन इस शरीर से बाहर जाता ही नहीं। जाता है, वह चित्त है और बाहर जो भटकता है, वह अशुद्ध चित्त है। शुद्ध चित्त वही शुद्ध आत्मा है।

चित्त अर्थात् ज्ञान + दर्शन।

अशुद्ध चित्त अर्थात् अशुद्ध ज्ञान + अशुद्ध दर्शन।

शुद्ध चित्त अर्थात् शुद्ध ज्ञान + शुद्ध दर्शन।

मन पैम्फलेट दिखलाता है और चित्त पिक्चर दिखलाता है। ये दोनों जिसमें सिर मारते हैं, उसमें बुद्धि डिसीज़न देती है और अहंकार हस्ताक्षर करता है, तब काम होता है। चित्त वह अवस्था है। अशुद्ध ज्ञान-दर्शन के पर्याय ही चित्त है। बुद्धि के डिसीज़न देने से पहले मन और चित्त की कश्मकश चलती है, लेकिन डिसीज़न आने के बाद सभी चुप। बुद्धि को एक ओर बिठा दें, तो चित्त या मन कोई परेशान नहीं करता।

अनादि काल से चित्त निज घर की खोज में है। वह भटकता ही रहता है। वह तरह-तरह का देखा करता है। इसलिए उसके

पास अलग-अलग ज्ञान-दर्शन जमा होते जाते हैं। चित्तवृत्ति जो-जो देखती है उसका स्टॉक करती है और वक्त आने पर ऐसा है, वैसा है, वह दिखलाती है। चित्त जो जो कुछ देखता है उसमें यदि चिपक गया, तो उसके परमाणु खींचता है और वे परमाणु जमा होकर उनकी ग्रंथियाँ बनती हैं, जो मन स्वरूप है। वक्त आने पर मन पैम्फलेट दिखाता है, उसे चित्त देखता है और बुद्धि डिसीज़न देती है।

ये आपकी जो चित्तवृत्तियाँ बाहर भटकती थीं और संसार में रमणता करती थीं, उन्हें हम अपनी ओर खींच लेते हैं इसलिए वृत्तियों का अन्यत्र भटकना कम हो जाता है। चित्तवृत्ति का बंधन हुआ, वही मोक्ष है।

अशुद्ध चित्तवृत्तियाँ अनंतकाल से भटकती थीं और जिस मुहल्ले में जाती हों, वहाँ से वापस लाना चाहें, तो उल्टा उसी मुहल्ले की ओर खिंची चली जाती थीं। ऐसी वृत्तियाँ निज घर में वापस लौटती हैं, यही अजूबा है न? चित्तवृत्तियाँ जितनी-जितनी जगहों पर भटकेंगी, उतनी-उतनी जगहों पर देह को भी भटकना पड़ेगा। क्रमिक मार्ग में तो मन के अनंत पर्यायों को और फिर चित्त के अनंत पर्यायों पार करते-करते, रिलेटिव अहंकार तक पहुँचते हैं (आईने में देखने जैसा) और आपको तो हमने यह सब पार करवाकर सीधे स्वरूप में बिठा दिया है, निज घर में!

निज घर की खोज में चित्त भटकता रहता है। इसलिए वह जो देखता है, उसीमें सुख खोजता है। जहाँ-जहाँ पर चित्त स्थिर होता है, वहाँ-वहाँ पर अंत:करण का शेष भाग शांत रहता है, इसलिए सुख लगता है। लेकिन स्थिर रहता कितनी देर है? चित्त फिर दूसरी जगह जाता है। इसलिए उसे दूसरे में वहाँ सुख लगता है और पहलेवाला सुख दु:खदायी हो जाता है, क्योंकि जिस बाह्य सुख की खोज में है वह पारिणामिक रूप से दु:खदायी है। क्योंकि बुद्धि आरोपण किए बगैर रहती ही नहीं कि इसमें सुख नहीं

है, दुःख है। अतः चित्त पुनः भटकता है। जब तक चित्तवृत्ति निज घर में स्थिर नहीं होती, तब तक इसका अंत आनेवाला नहीं है। जब सच्चा सुख चखेगा, तब काल्पनिक सुख अपने आप फीके पड़ते जाएँगे। फिर जो भटकता है, वह अशुद्ध चित्त है, और उसे जैसा है वैसा देखनेवाला और जाननेवाला शुद्ध चित्त है। अशुद्ध चित्त के पर्याय फिर धीरे-धीरे कम होते-होते बंद ही हो जाते हैं। और फिर केवल शुद्ध चित्त के पर्याय रहते हैं, वही 'केवलज्ञान'।

ज्ञानीपुरुष अशुद्ध चित्त को हाथ नहीं लगाते। केवल खुद का शाश्वत सुख, अनंत सुख का जो कंद है, वह चखा देते हैं, ताकि निज घर मिलते ही शुद्ध चित्त, जो कि शुद्धात्मा है, प्राप्त हो जाता है और शुद्ध चित्त ज्यों-ज्यों शुद्ध और सिर्फ शुद्ध को ही देखता है, त्यों-त्यों अशुद्ध चित्तवृत्ति फीकी पड़ते-पड़ते, आखिर में केवल शुद्ध चित्त ही शेष बचता है। फिर अशुद्ध चित्त के पर्याय बंद हो जाते हैं। फिर जो शेष बचता है, वह केवल शुद्ध पर्याय।

ज्ञानी ही शुद्ध आत्मा दे सकते हैं

अशुद्ध चित्त की शुद्धि करने के लिए संसार के सारे धर्म प्रयत्न में लगे हैं। जैसे साबुन से मैले कपड़ों को धोकर साफ किया जाता है, वैसे। लेकिन साबुन कपड़ों का मैल तो निकालेगा, लेकिन फिर अपना मैल छोड़ जाएगा। फिर साबुन का मैल निकालने के लिए टीनोपाल चाहिए। टीनोपाल साबुन का मैल निकाल देता है, लेकिन अपना मैल छोड़ जाता है। अंत तक मैल साफ करनेवाली चीज़ अपना मैल, साफ होनेवाली चीज़ पर छोड़ता ही जाएगा। ऐसा संसार के सभी रिलेटिव धर्मों में होता है। जहाँ अंत में शुद्ध किए जानेवाले चित्त के ऊपर भी आखिर में अशुद्धि, मैल रहता ही है। संपूर्ण शुद्ध तो वही कर सकता है जो स्वयं संपूर्ण शुद्ध, सर्वांग शुद्ध है। इसलिए ज्ञानीपुरुष ही ऐसा कर सकते हैं।

इसलिए प्रत्येक शास्त्र अंत में कहता है कि 'तुझे आत्मा प्राप्त करना है, तो ज्ञानी के पास जा। वे ही शुद्ध आत्मा दे सकते हैं। हमारे पास तो मिलावटवाला आत्मा है, अशुद्ध आत्मा है, जिसकी कोई क़ीमत ही नहीं हैं।'

मोक्षमार्ग में, मन को कुछ भी करने जैसा नहीं है। मात्र चित्त को ही शुद्ध करना है। तभी हल निकलेगा। कुछ लोग बिना समझे मन के पीछे पड़ते हैं और उसे वश करने जाते हैं। उनके व्यू पॉइन्ट से वह ठीक है, लेकिन यदि मोक्ष चाहते हों, तो फेक्ट जानना होगा और फेक्ट से वह कम्पलीट गलत है। चित्त शुद्ध होने के बाद मन के साथ कोई लेना-देना ही नहीं रहता। फिर तो शुद्ध चित्त मन की फिल्म देखता रहता है।

इस संसार में मन को रोकने के स्थान हैं, लेकिन चित्त को रोकने के स्थान नहीं हैं। लोग ताश खेलते हैं, वह क्या है? उसमें क्या सुख है? लोगों ने उसमें चित्त को रोकने का स्थान खड़ा किया है। लेकिन पत्ते खेलने में चित्त को रोकना, वह तो पतन (स्लिपिंग) है। इससे आगे चलकर धीरे-धीरे और ज़्यादा गिरते जाते हैं। लेकिन पत्तों में भी चित्त कितना समय रोक पाते हैं? क्या वह भी अंत में असुख पैदा नहीं करता?

चित्त ही अपनी मनचाही जगह पर और भय के स्थानों में विशेष रूप से भटकता है। दोपहर को कमरे में साँप देख लिया, तो सोते समय रात को भी साँप याद आता है। चित्त को जब भय लगता है, तब उसी जगह पर बार-बार जाया करता है। जड़ भी नहीं और चेतन भी नहीं, ऐसा मिश्र चेतन, अशुद्ध चित्त, जहाँ पर अच्छा लगे, वहीं पर भटकता रहता है। बिना टिकट के भटकना है, इसलिए भटकता है। टिकट होता तो अच्छा होता, तो चित्त भटकता ही नहीं।

चित्त पर से चेतन बना है। शुद्ध ज्ञान + शुद्ध दर्शन = शुद्ध चेतन।

पहले जिन-जिन पर्यायों का बहुत ही वेदन किया हो, वे अब ज़्यादा आते हैं। वहीं पर चित्त चिपका रहता है, घंटों तक रहता है, *गुठाणें* (अड़तालीस मिनट) तक रहता है तब वहाँ पर बहुत भारी बीज पड़ते हैं। जो पर्याय हल्के पड़ गए हैं, उन पर्यायों का असर चित्त पर अधिक नहीं रहता, चित्त में चिपकते ही छूट भी जाते हैं।

ज्ञान और दर्शन को एकसाथ बोलना हो, तो चित्त कहना पड़ेगा। चित्त नाशवंत चीज़ें ही दिखाता है। जहाँ-जहाँ वासना लगे, वहाँ चित्त भटकता है। जितना ज्ञान हो उतना दिखता है और दर्शन होता है उतना भाग धुँधला दिखता है। ज्ञान से एक्ज़ेक्ट दिखाई देता है।

मंदिर में मूर्ति के दर्शन करते समय, भीतर के संयोगों को जैसे कि मन के परिणाम, चित्तवृत्ति की स्थिति, इनके अनुसार दर्शन में फर्क दिखाई देता है। उदाहरण स्वरूप, पहले घंटे में एक प्रकार के दर्शन होते हैं, दूसरे घंटे में कुछ और प्रकार के दर्शन होते हैं। जिस तरह के बाहरी और आंतरिक एविडन्स मिलते हैं, वैसे ही दर्शन होते हैं। यदि मूर्ति के सामने से प्रकाश आ रहा हो, तो अलग दर्शन होंगे, साइड से आ रहा हो, तो अलग दर्शन होंगे। ज्ञानीपुरुष का मुखारविंद तो एक समान ही होता है, लेकिन आपके मन के परिणाम या चित्तवृत्ति की चंचलता के आधार पर अलग दिखाई देते हैं। ज्ञानीपुरुष के तो एक ही तरह से दर्शन करने होते हैं।

चित्त प्रसन्नता

आनंदघन जी महाराज क्या कहते हैं? जिनके सारे संसार के भावाभाव चले गए हैं, ऐसे वीतराग भगवान ऋषभदेव जी की मूर्ति के जब दर्शन करते हैं तब उन्हें मूर्ति हँसती दिखाई देती है। आँखें तो काँच की हैं, फिर वे हँसती हुई कैसे दिखाई देती

हैं? दिखाई दे सके ऐसा है क्योंकि उनकी अपनी चित्तवृत्ति, अपनी चैतन्य शक्ति उसमें पिरोई है, इसलिए हँसते दिखाई देते हैं। इसे चित्त प्रसन्नता कहते हैं। जहाँ कपट-भाव पूर्ण रूप से खत्म हो चुका होता है, वहाँ चित्त प्रसन्नता रहती है। चित्त प्रसन्नता और कपट, दोनों एक साथ नहीं हो सकते, कबीर साहब क्या कहते थे?

'मैं जानूँ हरि दूर है, हरि हृदय के माँही,
आडी त्राटी कपट की, तासे दिसत नाही।'

आडी त्राटी कपट की है, इसलिए भगवान दिखते नहीं हैं। वृत्ति में अन्य भाव का नहीं रहता, वह शुद्ध कहलाता है। हमारे महात्माओं को यदि वृत्ति में अन्य भाव नहीं रहें, तो चित्त प्रसन्नता की भक्ति उत्पन्न होती है। अवस्था में बंधे लोग व्यवहार सुख भी नहीं भोग सकते। घंटे भर पहले किसी अवस्था में चित्त एकाग्र हुआ हो, तो उसमें ही चित्त लगा रहता है। इसलिए अवस्था से बंधे होने का बोझ रहता है और चाय पीने की अवस्था के समय उसी बोझ तले चाय पीता है। व्यवहार में तो चित्त वही चेतन है। उसकी हाज़िरी होने पर ही बात बनती है। खाते समय यदि खाने में चित्त हाज़िर नहीं हो, तो ऐसा खाया हुआ किस काम का?

'चित्त में क्लेश नहीं, वही सारे धर्मों का धर्म। यदि इस पद को पा लिया, तो पुनर्जन्म खत्म हो जाए, ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, पिछली रात नींद में, एक सूर्य जैसा प्रकाश बहुत बार दिखाई दिया, वह क्या है?

दादाश्री : वह तो चित्त चमत्कार है। चित्त चमत्कार की ग़ज़ब की शक्ति है।

प्रश्नकर्ता : मंदिर में घंट क्यों लटकाते हैं?

दादाश्री : चित्त को एकाग्र करने। जब टन-टन बजता है,

तब वहाँ पर मन और चित्त थोड़ी देर के लिए एकाग्र रहते हैं। जब तक स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, तब तक संपूर्ण एकाग्रता होती ही नहीं।

चित्त को जो डिगाएँ, वे सभी विषय हैं। बाहर यह जो सब होता है, वे सभी विषय हैं। जिन-जिन चीज़ों में चित्त गया, वे सभी विषय हैं। पकोड़े खाए, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन उसमें चित्त लगा और बार-बार याद आता रहे वह विषय है। ज्ञान के बाहर जो भी जाता है, वह सब विषय ही है।

जब पराई चीज़ में (स्व को छोड़कर) चित्त भटके, तब अगले जन्म के बीज डलते हैं।

चित्त सदैव फोटो खींचता रहता है। कभी धुँधली तो कभी स्पष्ट। आप जैसी फोटो खींचेंगे, वैसी ही फिल्म उतरेगी और फिर उसे देखना पड़ेगा। भुगतना पड़ेगा। इसलिए अच्छी फोटो खींचना। आप अपनी फिल्म फिज़ूल मत गँवाना।

अहंकार

अंतःकरण का चौथा और आखिरी भाग है, अहंकार। मन और चित्त के साथ मिलकर बुद्धि जो डिसीज़न देती है, उसमें आख़िर में हस्ताक्षर करे, वह अहंकार है। जब तक अहंकार के हस्ताक्षर नहीं होते, तब तक कोई कार्य होता ही नहीं। लेकिन बुद्धि वह अहंकार के माध्यम से आनेवाला प्रकाश होने के कारण बुद्धि के डिसीज़न लेने पर अहंकार नियम से ही सहमत हो जाता है और कार्य हो जाता है।

'मैं चंदूलाल' उसे ही ज्ञानी सबसे बड़ा और अंतिम अहंकार बताते हैं। उससे सारा संसार खड़ा रहा है। यह अहंकार जाएगा तभी मोक्ष में जा पाएँगे। यह जीवन किस आधार पर खड़ा हुआ है? क्या पैरों पर या देह पर? नहीं, 'मैं हूँ' इसके ऊपर ही। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इस शुद्ध अहंकार से ही मोक्ष में जाया जा

सकता है। शेष सभी जन्मोंजनम के साधन मात्र रह जाते हैं।

अचेतन में 'मैं हूँ' ऐसा माने तो वह अहंकार है। यदि चेतन में 'मैं हूँ', ऐसा माने तो उसे अहंकार नहीं कहते। 'मैं हूँ' अर्थात् अस्तित्व तो है। अतः 'मैं हूँ', ऐसा कहने का अधिकार तो है, लेकिन 'मैं हूँ', वह किस में हूँ? इसका आपको पता नहीं है। अचतेन में 'मैं' बोलने का अधिकार नहीं है। 'मैं क्या हूँ?' इसका भान नहीं है। यदि यह भान हो जाए, तो काम ही हो गया समझो।

किसी के चलाए कुछ भी चलता नहीं है जबकि संसार तो चलता ही रहता है। मात्र अहंकार ही करता है कि मैं चलाता हूँ। जब तक अपने स्वरूप का भान नहीं है तब तक मनुष्य, चाबी भरी हुई मोटरों जैसे ही हैं।

त्याग किसका करना है

भगवान ने कहा है कि यदि तू मोक्ष में जाना चाहता है, तो कुछ भी त्यागने की ज़रूरत नहीं है। बस अहंकार और ममता, दो ही चीज़ों का त्याग किया, तो उसमें सबकुछ आ गया। अहंकार यानी 'मैं' और ममता यानी 'मेरा'। 'मैं' और 'मेरा', उन दोनों का ही त्याग करना हैं। जब हम ज्ञान देते हैं, आपको स्वरूप का भान करवा देते हैं, तब आपके अहंकार और ममता दोनों का त्याग करवाते हैं। एक ओर त्याग करवाया, तो दूसरी ओर क्या ग्रहण करवाते हैं, मालूम है? 'शुद्धात्मा' ग्रहण करवाते हैं। फिर ग्रहण-त्याग की कोई झंझट ही नहीं रहती। अहंकार निकालने के लिए ही सारा त्याग करना होता है। हम आपका सारा ही अहंकार ले लेते हैं। फिर अस्तित्व क्या रहा? तो कहे, जहाँ अस्तित्वपन है, वहाँ! मूल जगह पर स्थापित किया। किसी एक जगह पर ही अहंकार का अस्तित्वपन होता है, इसलिए हम मूल जगह पर अहंकार को बिठा देते हैं।

आप निश्चय करें कि सुबह पाँच बजे उठना है, तो उठा जाएगा ही। निश्चय यानी अहंकार। अहंकार करने पर क्या नहीं हो सकता? एक बार सहजानंद स्वामी घूमते-घूमते काठियावाड़ पहुँचे। वहाँ एक राजा से मिले। वह कहने लगा, 'मेरे यहाँ एक बहुत बड़े साधु आए हैं। पंद्रह दिन ज़मीन के अंदर रहते हैं।' इस पर सहजानंद स्वामी ने कहा, 'मेरे सामने यह प्रयोग करवाइए।' फिर वह साधु पंद्रह दिनों तक अहंकार करके गड्ढे में रहा। निकलने का समय आया, तब सहजानंद स्वामीने कहा, 'सिर्फ दो पुलिसवालों को ही भेजना। हर वक्त राजा जी आप बाजे-गाजे के साथ जुलूस के साथ लेने जाते हैं, इस बार वह सब बंद।' साधु जब बाहर आया, तो देखा कि कोई भी नहीं है, तो चिल्लाना शुरू किया, 'कहाँ है राजा? कहाँ है बग्घी? बाजे कहाँ है?' ऐसे चिल्लाते-चिल्लाते वहीं का वहीं मर गया। अतः वह अहंकार करके रहा और अहंकार संतुष्ट नहीं हुआ, तो मर गया। खुद जहाँ नहीं है, वहाँ खुद का आरोप करना, वही अहंकार।

वास्तव में 'खुद' मरता ही नहीं है। अहंकार मरता है और अहंकार ही जन्म लेता है। जब तक अहंकार हस्ताक्षर नहीं करता, तब तक मरण आ ही नहीं सकता। लेकिन अभागा बिना हस्ताक्षर किए रहता ही नहीं। बिस्तर में बहुत पीड़ित होने पर या बहुत दुःख आ पड़े, तब हस्ताक्षर कर ही देता है कि इससे तो मर गए होते, तो अच्छा होता। हस्ताक्षर हो ही जाते हैं।

भुगतनेवाला कौन है?

'आत्मा' खुद कुछ भी नहीं भुगतता। किसी भी विषय को आत्मा भुगत ही नहीं सकता। यदि भुगतना उसका स्वगुण होता, तो वह सदा के लिए साथ-साथ ही रहता। और कभी भी मोक्ष होता ही नहीं। भुगतता है, वह तो मात्र अहंकार करता है कि मैंने भुगता। इन्द्रियाँ इफेक्टिव हैं और उन्हें कॉज़ेज़ के आधार पर इफेक्ट होता है, तब भ्रांतिवश अहंकार कहता है कि 'मैं करता

हूँ,' 'मैं भुगतता हूँ।' यदि यह भ्रांति चली जाए कि 'मैं कर्ता नहीं हूँ' और 'कर्ता कौन हैं' यह समझ में आ जाए, तो फिर मोक्ष दूर नहीं रहता। देह सहित ही मोक्ष बरते, ऐसा है।

मनुष्यों की भीड़ नहीं है, लेकिन अहंकार की भीड़ है। ज्ञान से अहंकार की भीड़ में रहा जा सकता है। नेचर पद्धति अनुसार है। आत्मा पद्धति अनुसार है। लेकिन बीच में अहंकार है, वह बहुत विकट है। वह नहीं करने का काम करता है। अहम् को लेकर ही संसार खड़ा है और चार गतियाँ भी अहम् से ही होती है। अहंकार ने ही भगवान से अलग किया है।

मनुष्य तो रूपवान होते हुए भी अहंकार से कुरूप दिखता है। रूपवान कब दिखाई देगा? तब कहे, प्रेमात्मा बन जाएगा, तब। रसौलीवाला मनुष्य कैसा कुरूप लगता है? वैसे ही, रूपवान होते हुए भी अहंकार की रसौली को लेकर कुरूप लगता है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार के प्रकार हैं क्या?

दादाश्री : रिलेटिव चीज़ को 'मैं हूँ' कहा वही अहंकार। गर्व, मद, मत्सर, अभिमान, मान, अपमान, ये सारे अलग-अलग शब्द अलग-अलग समय पर प्रयोग होते हैं। ये सारे स्थूल अर्थ समझने के लिए हैं, इसलिए ज्ञानियों ने अलग-अलग नाम दिए हैं।

कुछ लोग खुद को निर्मानी बताते हैं। लेकिन उस निर्मानी होने का जो कैफ चढ़ता है, वह तो स्थूल मानी की तुलना में अधिक भटका कर मार डाले, ऐसा है। निर्मानी होने का मानीपन खड़ा हुए बगैर रहता ही नहीं। बिना स्वरूपज्ञान के अहंकार पूर्णरूप से जाता ही नहीं। इसलिए एक ओर टूट पड़े और निर्मानीपन प्राप्त करने में जुट गए। लेकिन उससे उसका कैफ बढ़ गया उसका क्या? उसका जो भयंकर सूक्ष्म अहंकार खड़ा हुआ, उसका क्या?

स्वरूप ज्ञान प्राप्त होने के बाद में अंतःकरण जैसा है वैसा ही रहता है। जहाँ पर खुद नहीं है वहाँ पर 'मैं हूँ' का भ्रांति से जो आरोपण किया था, हम सिर्फ वह भ्रांति निकाल देते हैं और रियल 'मैं' को 'मैं' में स्थित कर देते हैं। फिर अंतःकरणवाला जो अहंकार बचता है, वह आपका व्यवहार चला लेगा। उसे कहीं दबाना नहीं है, सिर्फ नीरस बनाना है।

निकाल दो अहंकार की रुचि

मूल 'वस्तु' प्राप्त होने के बाद अब फिर अहंकार का रस (रुचि) खींच लेना है। कोई राह चलते कहे, 'अरे, तुम बेअक़्ल हो, सीधे चलो।' उस घड़ी जो अहंकार खड़ा होता है, वह अहंकार आसानी से टूट जाता है, निकल जाता है और गुस्सा आ जाता है। लेकिन उसमें अब गुस्सा क्या करना? हमें अब गुस्सा होने जैसा रहा ही नहीं। अहंकार का जो रस है, उसे निकाल देना है।

अपमान किसी को भी पसंद नहीं है, लेकिन हम कहते हैं कि वह तो बहुत हेल्पिंग है। मान-अपमान, वह तो अहंकार का कड़वा-मीठा रस है। जो अपमान करता है, वह तो आपमें से कड़वा रस खींचने आया है। 'तुम बेअक़्ल हो', ऐसा कहा मतलब सामनेवाले ने वह रस खींच लिया। जितना रस खींच लिया, उतना अहंकार टूट गया और वह भी बिना किसी मेहनत के दूसरे ने खींच लिया। अहंकार तो रसवाला है। जब अनजाने में कोई निकालता है तब बुरा लग जाता है। इसलिए जान-बूझकर सहज रूप से अहंकार को कटने देना चाहिए। सामनेवाला आसानी से रस खींच ले तो उससे बढ़कर और क्या हो सकता है? उसने कितनी बड़ी हेल्प की, ऐसा कहा जाएगा!

जैसे-तैसे करके सारा रस विलय कर दें, तो हल आ जाएगा। अहंकार तो काम का है। वर्ना संसार व्यवहार कैसे चल पाएगा? अहंकार को सिर्फ नीरस बना देना है। हमें जो धोना था, वह

दूसरों ने धो दिया, वही हमारा मुनाफ़ा। हम ज्ञानीपुरुष अबुध होते हैं और ज्ञानी के पास इतनी शक्ति होती है कि वे खुद ही अहंकार का रस खींच लें, जबकि आपके पास ऐसी शक्ति नहीं है। इसलिए अगर कोई अपमान करके सामने से अहंकार का रस खींचने आए, तो आपको खुश होना चाहिए। आपकी कितनी मेहनत बच जाएगी! और आपका काम हो जाएगा। अपने को तो यही देखना है कि फायदा कहाँ हुआ। इसे तो ग़ज़ब का मुनाफा कहा जाएगा।

यदि आपका कड़वा-मीठा रस नीरस हो गया हो, तो अहंकार का स्वभाव तो नाटकीय है। वह सारा का सारा काम कर देगा। अहंकार को खत्म नहीं करना है, उसे, नीरस बना देना है।

भोजन करते समय औरों को एन्करेज करने के लिए ऐसा भी कहना पड़ता है कि 'ओहोहो! कढ़ी तो बहुत मज़ेदार बनी है न!'

हँसते मुख से ज़हर पी लें

यदि सामनेवाले का अहंकार हम से टूट जाए, तो उसे कड़वा लगता है। लेकिन कुल मिलाकर मुनाफ़ा क्या है, इसकी हमें खबर रहती है, इसलिए हमारे कारण किसी को कड़वा लगे ऐसा नहीं हो, तो अच्छा है।

'हसते मुखे झेर पीए, नीलकंठी खानदान,
नि:स्पृह अयाचकने, खपे नही मान-तान।'
(हँसते मुख से ज़हर पीए नीलकंठी खानदान,
नि:स्पृह अयाचक को चाहिए न मान-तान।)

हम नीलकंठ हैं। बचपन से जो भी कोई ज़हर दे गया, वह हम हँसते-हँसते पी गए और ऊपर से आशीर्वाद भी दिया और इसीलिए हम नीलकंठ हुए।

ज़हर तो आपको पीना ही पड़ेगा। हिसाबी है, इसलिए प्याला

तो सामने आएगा ही। अब आप हँसते-हँसते पीओ या मुँह बिगाड़कर पीओ, पीना तो पड़ेगा ही। अरे, आप लाख पीना नहीं चाहो, तब भी लोग ज़बरदस्ती पिलाएँगे। उससे अच्छा तो हँसते-हँसते पीकर ऊपर से आशीर्वाद देकर ही क्यों नहीं पीएँ? इसके बिना नीलकंठ कैसे बन पाएँगे? जो प्याला दे जाते हैं, वे तो आपको ऊँचा पद देने आते हैं। वहाँ पर यदि आप मुँह बिगाड़ोगे, तो वह पद आपसे दूर चला जाएगा। हमें तो, सारे संसार में से जिस-जिसने ज़हर के प्याले दिए, उन्हें हँसते-हँसते, ऊपर से आशीर्वाद देकर पी गए और महादेव जी बन गए।

जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ,' ऐसा है, तब तक सब कड़वा लगता है। लेकिन हमारे लिए तो यह सब अमृत बन गया है! मान-अपमान, कड़वा-मीठा वे सारे द्वंद्व हैं। जो अब हम में नहीं रहे, हम द्वंद्वातीत हैं। इसलिए तो यह सत्संग करते हैं न? आखिरकार तो सभी को द्वंद्वातीत दशा ही प्राप्त करनी है न?

सामनेवाला यदि कड़वा पिलाए और आप हँसते हुए आशीर्वाद देकर पी जाओ, तो एक तरफ आपका अहंकार स्वच्छ होता है और आप उतने मुक्त हो जाते हो और दूसरी ओर कड़वा पिलानेवाले को भी रीएक्शन आता है और वह भी बदल जाता है। उसे भी अच्छा लगता है। वह भी समझ जाता है कि मैं कड़वा पिलाता हूँ, यह मेरी कमज़ोरी है और यह हँसते मुख से पी जाता है, वह बहुत शक्तिशाली है।

हमें यदि कड़वा पीने को कहा जाए, तो हम खुद थोड़े ही पीनेवाले हैं? फिर अगर कोई सामने से कड़वा पिलाए, तो वह तो कितना उपकारी है? परोसनेवाली तो माँ कहलाती है। (जो दिया था वह) वापस लिए बगैर कोई चारा नहीं है। नीलकंठ बनने के लिए ज़हर तो पीना ही पड़ेगा।

'हमें' तो 'चंदूभाई' को कह देना है कि तुझे सौ बार यह

कड़वा पीना पड़ेगा। बस, फिर उसकी आदत पड़ जाएगी। बच्चे को कड़वी दवाई ज़बरदस्ती पिलानी पड़ती है। लेकिन यदि वह समझ जाए कि यह हितकर है, तो फिर ज़बरदस्ती नहीं पिलानी पड़ती। अपने आप पी लेता है। एक बार तय किया कि कोई जो भी कड़वा पिलाएँ उसे पी लेना है, तो फिर पिया जाएगा। मीठा तो पी सकते हैं, लेकिन कड़वा पीना आना चाहिए। कभी न कभी तो पीना ही पड़ेगा न? फिर यह तो मुनाफ़ा है, इसलिए प्रैक्टिस कर लेनी चाहिए न?

यदि सब लोगों के बीच में मान भंग हो जाए, तो घाटा हुआ ऐसा लगता है, लेकिन उससे तो भारी मुनाफ़ा है, यह समझ में आ जाए, तो फिर घाटे जैसा नहीं लगेगा न?

'मैं शुद्धात्मा हूँ' बोलते तो हो, तो फिर उसी पद में रहना है न? उसके लिए तो अहंकार धुलवाना पड़ेगा। कठोर परिश्रम करने का निश्चय करें, तो धुलेगा ही।

एक भिखारी को राजा बना दिया हो और गद्दी पर बैठने के बाद यदि वह ऐसा कहे कि 'मैं भिखारी हूँ,' तो वह क्या कहलाएगा? 'शुद्धात्मा' का पद पाने के बाद हमें और कुछ भी नहीं रहना चाहिए।

कड़वे-मीठे अहंकार के पद में से आपको निकलना है न? फिर उसमें पैर क्यों रखते हो? नक्की करने के बाद दोनों ओर पैर रखने चाहिए क्या? नहीं रख सकते। रूठना कब होता है? जब किसी ने कड़वा परोस दिया हो तब। हम विधि करते समय बोलते हैं न कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' तो फिर शुद्धात्मा का रक्षण करना चाहिए या और किसी का? अहंकार को खुद नीरस करना बहुत कठिन कार्य है। इसलिए यदि कोई नीरस कर देता हो, तो बहुत अच्छा है। उससे अहंकार नाटकीय रहेगा और अंदर का बहुत सुचारू रूप से चलेगा। यदि यह इतना फायदेमंद है, तो

अहंकार को नीरस बनाने के लिए हँसते मुँह से ही क्यों नहीं पीएँ? अहंकार संपूर्ण नीरस हुआ, तो समझो आत्मा पूर्ण हो गया। इतना नक्की कीजिए कि मुझे अहंकार नीरस करना है, तो फिर वह नीरस होता ही रहेगा।

यह कड़वी दवाई यदि रास आ जाए, तो फिर और कोई झंझट रहेगा ही नहीं न? और फिर अब आपको मालूम हो गया है कि इसमें हमारा ही मुनाफ़ा है। जितना मीठा लगता है, उतना ही कड़वा भरा पड़ा है। इसलिए पहले कड़वा पचा लो, फिर मीठा सहज ही निकल जाएगा। उसे पचाना बहुत भारी नहीं पड़ेगा। कड़वी दवाई पच गई, तो बहुत हो गया। फूल लेते समय हर कोई हँसता है, लेकिन पत्थर पड़ें तब?

अदीठ तप क्या है?

अहंकार तो ज्ञेय स्वरूप है। आप खुद ज्ञाता हो। जहाँ ज्ञेय-ज्ञाता का संबंध है वहाँ ज्ञेय का रक्षण तो नहीं कर सकते न? एक अहंकार (ज्ञेय) का रक्षण किया, तो सभी ज्ञेयों का रक्षण करना पड़ेगा। क्योंकि अनेकों ज्ञेय हैं। अनंत ज्ञेय हैं। अब अदीठ तप करना है। अहंकार आदि में तन्मयाकार नहीं हो जाए, इसका ध्यान रखना है। जागृति रखना ही तप है, अदीठ तप। यह अदीठ तप करना होगा, क्योंकि तन्मयाकार होने की अनादि की आदत है। इससे वह कम होती जाएगी। अहंकार हलका होता जाएगा, इससे समाधान होता जाएगा। एक निश्चय किया, तो तप होता ही रहेगा।

जिस अहंकार में कोई बरकत नहीं आई। जहाँ-तहाँ ठोकरें खाई, स्वरूपवान होते हुए भी हर जगह बदसूरत दिखलाता हो, ऐसा अहंकार किस काम का? 'ज्ञेय' 'ज्ञाता' न हो जाए, वही जागृति है। वही अदीठ तप है। अहंकार का रस विलय करने के लिए जो जागृति रखनी पड़ती है, वही अदीठ तप है।

अंतराय बाहर से आते हैं, वैसे ही अंदर से भी आते हैं।

अहंकार अंतराय रूपी होता है। उसके सामने तो अच्छी तरह तैयार हो जाना पड़ेगा।

अगर कोई मान दे तो भी सहन हो सके, ऐसा नहीं है। जिसे अपमान सहन करना आ गया, वही मान सहन कर सकता है। किसी ने दादाजी से पूछा कि लोग आपको फूल चढ़ाते हैं, उन्हें आप क्यों स्वीकार करते हैं? तब दादाजी ने कहा, 'ले भाई तुझे भी चढ़ाएँ, लेकिन तुझसे सहन नहीं होगा।' लोग तो मालाओं का ढेर देखकर दंग हो जाएँगे। किसी के पैरों को छूने जाएँ, तो वह तुरंत खड़ा हो जाएगा।

मान-अपमान का बहीखाता

'जब अपमान का भय नहीं रहेगा, तब कोई अपमान नहीं करेगा', ऐसा नियम ही है। जब तक भय है, तब तक व्यापार। भय गया नहीं कि व्यापार बंद। अपने बहीखाते में मान और अपमान का खाता रखो। जो कोई मान-अपमान देकर जाए उसे बहीखाते में जमा करते जाओ, उधार मत करना। चाहे कोई कितना भी बड़ा या छोटा डोज़ क्यों न दे जाए, उसे बहीखाते में जमा कर लो। निश्चय करो कि महीनेभर में सौ अपमान जमा कर लेने हैं। जितने ज़्यादा आएँगे, उतना अधिक मुनाफ़ा। यदि सौ के बजाय सित्तर मिलें, तो तीस का घाटा। फिर दूसरे महीने में एक सौ तीस जमा करना। जिसके खाते में तीन सौ अपमान जमा हो गए, उसे फिर अपमान का भय नहीं रहेगा। वह फिर पार उतर जाएगा। पहली तारीख से बहीखाता चालू कर ही देना। इतना होगा या नहीं होगा?

ज्ञानीपुरुष को हाथ जोड़े, उसका अर्थ यह है कि व्यवहारिक अहंकार शुद्ध किया और उनके अँगूठे पर मस्तक लगाकर सच्चे दर्शन किए, उसका अर्थ है अहंकार अर्पण किया। जितना अहंकार अर्पण होता है, उतना काम बन जाता है।

ज्ञानीपुरुष में दया नामक गुण नहीं होता, उनमें अपार करुणा होती है। दया तो ज़बरदस्त अहंकारी गुण है। दया अहंकारी गुण कैसे? दया द्वंद्व गुण है। द्वंद्व अर्थात् दया हो, तो उसमें निर्दयता अवश्य भरी पड़ी होती है। वह तो जब निर्दयता बाहर निकलती है, तब पता चलता है। तब तो सारा बाग उजाड़ देता है। सभी सौदे कर डालता है। घर-बार, बीवी-बच्चे सबकुछ छोड़ देता है। सारा संसार द्वंद्व गुण में है। जब तक द्वंद्वातीत दशा प्राप्त नहीं हुई है, तब तक संसार के लिए दया का गुण प्रशंसनीय चीज़ है। क्योंकि वह उसकी नींव है। फिर भी दया रखनी ज़रूरी है। लेकिन खुद की सेफसाइड के लिए, भगवान की सेफसाइड के लिए नहीं। जो लोगों पर दया करने निकल पड़ते हैं, वे खुद ही दया के पात्र हैं। अरे, तू अपने आप पर ही दया कर न, औरों पर क्यों दया करता है? कई साधु संसारी पर तरस खाते हैं। अरे! इन संसारियों का क्या होगा? उनका जो होना होगा, सो होगा। उन पर तरस खानेवाला तू कौन? तेरा क्या होगा? अभी तेरा ही कोई ठिकाना नहीं है, तो लोगों के लिए ठिकाना ढूँढने क्यों निकला है? इसे तो भयंकर कैफ कहते हैं। संसारियों का कैफ तो, तेल और शक्कर के लिए लगी कतारों में आठ घंटे खड़े रहने से ही उतर जाएगा, लेकिन इन साधु महाराजों का कैफ कैसे उतरेगा? बल्कि बढ़ता ही जाएगा। निष्कैफी का मोक्ष होता है, ऐसा भगवान ने कहा है। कैफ तो भयंकर से भयंकर सूक्ष्म अहंकार है, जो बहुत मार खिलवाता है। स्थूल अहंकार को तो कोई न कोई दिखला देगा। कोई कहनेवाला निकल आएगा कि 'छाती तानकर क्या घूम रहा है? ज़रा मुंडी नीची रखा कर न?' तो वह संभल जाएगा। लेकिन यह सूक्ष्म अहंकार, 'मैं कुछ जानता हूँ, मैंने कुछ साधन पा लिया है, मैं कुछ जानता हूँ', ऐसा कैफ तो कभी नहीं जाएगा। अरे! 'जान लिया' किसे कहते हैं? ज्ञान प्रकाश हो तब। और क्या प्रकाश में ठोकर लगती है? यह तो कदम-कदम पर ठोकरें लगती हैं, वह 'जान लिया' कैसे

कहलाएगा? जो खुद ही अज्ञान दशा में ठोकरें खाता रहता हो, उसे दूसरों पर तरस खाने का क्या अधिकार है?

अहंकार का ज़हर

कुछ प्राप्ति का अहंकार आया नहीं कि गिर ही पड़ा समझो। यदि हमारे महात्माओं को ज्ञान का अहंकार हो जाए, तो 'दादाजी' हैं इसलिए गिर नहीं पड़ते, लेकिन ज्ञानावरण आ जाता है। दैवीशक्तिओं का आविर्भाव हुआ हो और अहंकार हो जाए, तो जितना ऊपर चढ़ा हो उतनी ही अधोगति में चला जाता है। दैवीशक्ति के आधार पर हुआ हो और मैंने किया, ऐसा अहंकार करे, तो अधोगति में जाएगा। अगर दैवीशक्ति का दुरुपयोग करता है, तो भी अधोगति होती है। जब दैवी अहंकार का रीएक्शन आता है, तब नर्कगति होती है।

छोटे बच्चों का अहंकार सुषुप्त दशा में होता हैं। अहंकार तो होता है, लेकिन वह कॉम्प्रेस होकर पड़ा होता है। वह तो ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है, त्यों-त्यों बाहर आता है। छोटे बच्चों के खोटे अहंकार को यदि पानी नहीं दिया जाए, तभी वे सयाने होते हैं। उनके खोटे अहंकार के पोषण के लिए आपकी ओर से खुराक नहीं मिले, तो बच्चे सुंदर और संस्कारी होते हैं।

ये संसार के लोगों के साथ उलझनें पैदा मत करना। वे लोग तो अपने अहंकार का पोषण खोजते हैं, इसलिए यदि उलझनें पैदा नहीं करनी हों, तो हमें उनका अहंकार पोषकर आगे निकल जाना चाहिए वर्ना आपका रास्ता रुक जाएगा। अहंकारी मनुष्य, अहंकार से उलझनें खड़ी करता रहता है। उसमें लोभ की गाँठ नहीं पड़ती।

उच्च विचारशक्ति, समझने की शक्ति हो, वह कल्चर्ड कहलाता है। कल्चर्ड में अहंकार का ज़हर बहुत होता है। ममता का ज़हर भी बहुत बाधक है। ममता छूट सकती है, लेकिन अहंकार छूट सके ऐसा नहीं है।

कई आत्महत्या कर लेते हैं, वह भयंकर अहंकार है। जब अहंकार भग्न हो जाए, और किसी जगह से उन्हें ज़रा सा भी पोषण नहीं मिले, ऐसी स्थिति में आखिर आत्महत्या करते हैं। इससे भयंकर अधोगति बाँधते हैं। जितना अहंकार कम होता है, उतनी गति ऊँची होती है और जितना अहंकार ज़्यादा होता है, गति उतनी ही नीची होती है।

कोई जीव मारने का अहंकार करता है, तो कोई जीव बचाने का अहंकार करता है। भगवान ने दोनों को अहंकारी बताया है, क्योंकि किसी में भी जीव को मारने की या बचाने की शक्ति ही नहीं है। यह उसकी सत्ता में ही नहीं है। खाली अहंकार ही करते हैं कि मैंने जीव को बचाया या मैंने जीव को मार डाला। दोनों ही अहंकारी हैं। बचानेवाले को अच्छी गति और मारनेवाले को अधोगति होती है। दोनों में बंधन तो है ही।

सिंह बड़ा अहंकारी होता है। सिंह तो तिर्यंचों का राजा है। सारे योनियों में भटक-भटककर आया है, लेकिन कहीं सुख नहीं मिला, इसलिए अब जंगल में अहंकार की गर्जनाएँ और विलाप करता है। छूटने की इच्छा है, लेकिन मार्ग नहीं मिल रहा। मार्ग मिलना अति-अति दुर्लभ है और उसमें भी 'मोक्षदाता' का संयोग आ मिलना तो अति अति दुर्लभ है। अनेकों संयोग मिले और बिखर गए, लेकिन ज्ञानी का संयोग मिले, तो हमेशा के लिए समाधान हो जाएगा।

अहंकार का समाधान

यह जो रूपक दिखाई देता है, वह संसार नहीं है। अहंकार ही संसार है। तो ऐसे संसार में कुछ न भी रहा, तो उसमें क्या आपत्ति है? एक आदमी ने हमारे साथ पाँच सौ रुपये का धोखा किया हो और वापस लौटाने के समय हमारे अहंकार का समाधान नहीं करता, तो उस समय रुपये वापस लेने के लिए हम उस

पर केस करके धमाचौकड़ी मचा देते हैं। लेकिन यदि फिर वह आकर हमारे पैर पकड़ ले और रोए, गिड़गिड़ाए, तो हमारा अहंकार संतुष्ट हो जाता है, तब हम उसे छोड़ देते हैं।

यह अहंकार तो ऐसा है कि किसी को भी, वह जहाँ बैठा हो, उस बैठक के लिए अभाव नहीं होने देता। एक मज़दूर तक अहंकार को लेकर अपने झोंपड़े से ही ममता रखता है, सुख लेता है। आखिरकार ऐसा अहंकार करके भी सुख मानता है कि हम कुत्तों, जानवरों से तो सुखी हैं न? अहंकार से हर कोई, उसे जो कुछ प्राप्त हुआ हो उसमें अभाव नहीं होने देता।

अहंकार से भेद पड़ते हैं, संप्रदाय बनते हैं। ज्ञानीपुरुष निर्‌अहंकारी होते हैं, उनसे तो सारे संप्रदाय एक हो जाते हैं। भेद डालकर, रामराज्य भुगतना वह तो अहंकारियों का ही काम है।

अटकण और सेन्सिटिवनेस

कई लोग बहुत सेन्सिटिव (संवेदनशील) होते हैं। सेन्सिटिवनेस (संवेदनशीलता) अहंकार का प्रत्यक्ष गुण है। व्यवहार की कोई बात हो रही हो और मैं पूछूँ कि बड़ौदा से लौटते हुए क्या झंझट हो गई थी? उस समय बीच में कोई बोल उठे, तो वह सेन्सिटिव माल कहलाता है। *अटकण* (जो बंधनरूप हो जाए, आगे नहीं बढ़ने दे) भी विशेष रूप से अहंकार को लेकर ही रहती है। *अटकण* यानी घोड़ा बहुत ताकतवर हो, लेकिन मस्जिद या कब्र जैसी जगह आए, तो वहीं अटक जाता है, आगे चलता ही नहीं। वही *अटकण* है। प्रत्येक मनुष्य में *अटकण* होती ही है। *अटकण* ने ही सभी को भटकाया है। *अटकण* से लटकन, लटकन से लटकना हो गया है। हम उसमें से छिटकना सिखलाते हैं। *अटकण* का अहंकार चलेगा, लेकिन सेन्सिटिव का अहंकार नहीं चलेगा। जब तक वह रहेगा, तब तक प्रगति होगी ही नहीं।

अटकण तो देखने से छूट जाता है, लेकिन सेन्सिटिव के गुण को तो ज़ोर देकर, बहुत जागृत रहकर, ब्रेक लगाकर तोड़ें तभी जाएगा। जैसा माल भरा है, वैसा ही निकलेगा लेकिन उसे देखते रहना है। ज्ञानी ने संपूर्ण प्रकाशघन आत्मा दिया है, फिर भी मुँह बेस्वाद हो जाता है उसका क्या कारण है? *अटकण* और सेन्सिटिवनेस होने की वजह से। सेन्सिटिव मनुष्य का आत्मा तो एकाकार हो जाता है, तन्मयाकार हो जाता है। शुद्धात्मा तन्मयाकार हो जाता है। शुद्धात्मा तन्मयाकार हो जाता है, इसलिए बेस्वाद लगता है। आप किस ओर जा रहे हो यह समझ लेना। यदि आप प्रकाशमार्ग पर चल रहे हो, ज्ञानमार्ग पर चल रहे हो, तो वहाँ अंधकार क्यों दिखाई देता है? *अटकण* और सेन्सिटिव होने की वजह से। उसे जानने मात्र से ही यह सेन्सिटिव गुण चला जाता है। आप जो माल भरकर लाए हो उसे देखने और जानने से ही चला जाएगा। ज्ञाता-दृष्टा रहा करो। *अटकण* का इससे ही नाश हो जाएगा, लेकिन सेन्सिटिवनेस जल्दी नहीं जाएगी। सेन्सिटिव होने से अंदर इलेक्ट्रिसिटी उत्पन्न होती है। फलतः अंदर (शरीर में) चिनगारियाँ उड़ती हैं और अनंत जीव मर जाते हैं। विशेष जागृति रहेगी, तो कुछ भी बाधक नहीं होनेवाला। भरे हुए माल का *निकाल* (निपटारा) हो जाएगा। बात में कुछ दम नहीं है और यह *अटकण* और सेन्सिटिववाले माल ने पकड़ लिया है।

अंतःकरण का संचालन

यह संसार किस वजह से खड़ा है? अंतःकरण में मन शोर मचाए, तो खुद फोन उठा लेता है और 'हैलो, हैलो' करता है। चित्त का फोन उठा लेता है, अहंकार बुद्धि का फोन उठा लेता है, इसलिए। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार क्या धर्म निभाते हैं, उसे देखिए और जानिए। 'हमें' किसी का भी फोन नहीं लेना है। आँख, कान, नाक आदि क्या-क्या धर्म निभाते हैं उसके हम 'ज्ञाता-दृष्टा' हैं। यदि मन का या चित्त का या किसी का भी फोन

उठा लिया, तो सब जगह टकराव हो जाएगा। वह तो जिसका फोन हो, उसे 'हैलो' करने देना है, 'खुद' मत करना।

अरे, आपने कभी खाने के बाद पता लगाया है कि अंदर आँतों में और आमाशय में क्या होता है? सभी अवयव अपने गुणधर्म में ही हैं। कान उनके सुनने के गुणधर्म में नहीं होंगे, तो सुनाई नहीं देगा। नाक उसके गुणधर्म में नहीं होगी, तो सुगंध और दुर्गंध नहीं आएगी। उसी प्रकार मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, सभी अपने गुणधर्म में ठीक से चल रहे हैं या नहीं, उसका ध्यान रखते रहना है। अगर 'खुद' 'शुद्धात्मा' में रहे, तो कोई भी परेशानी आए, ऐसा नहीं है। अंतःकरण उसके गुणधर्म में रहे, जैसे कि मन पैम्फलेट दिखाने का काम करे, चित्त फोटो दिखाए, बुद्धि डिसिज़न ले और अहंकार हस्ताक्षर कर दे, तो सब ठीक चलेगा। वे खुद के गुणधर्मों में रहें और शुद्धात्मा अपने गुणधर्मों में रहे, ज्ञाता-दृष्टा पद में रहे, तो कोई परेशानी आए, ऐसा नहीं है। प्रत्येक अपने-अपने गुणधर्म में ही हैं। अंतःकरण में कौन-कौन से गुणधर्म बिगड़े हुए हैं, उसकी जाँच करना और बिगड़े हुए हों तो कैसे सुधारें, सिर्फ इतना ही करना है। लेकिन यह तो कहता है कि 'मैंने सोचा, मैं ही बोल रहा हूँ, मैं ही कर रहा हूँ।' ये हाथ-पैर भी अपने धर्म में हैं, लेकिन कहता है कि 'मैं चला'। मात्र अहंकार ही करता है और अहंकार को ही खुद का आत्मा माना है, इसकी ही अड़चन है।

मन के गुणधर्म बिगड़े हुए हों, तो उसका पता चलता है या नहीं चलता? चलता है। घर में कोई बुढ़िया आई हो और सारा दिन किच-किच करती हो, लेकिन पाँच-पंद्रह दिन उसके साथ कोई झंझट नहीं करें, तो आदत पड़ जाएगी। उसी तरह मन में बारूद का गोला फूटता है और उसके आदी हो गए हैं, इसलिए पता नहीं चलता कि यह कौन सा बारूद फूट रहा है? कोई असर ही नहीं होता। उल्टा-सीधा बारूद इकट्ठा हो

गया है। हम समझते हैं कि यह फूलझड़ी है, और फूटती है रॉकेट की तरह। उसी तरह मन में भी जो उल्टा-सीधा भरा है, वही फूटता है। बुढ़िया की तरह मन के साथ झंझट नहीं करें, तो आदत पड़ जाएगी। बुढ़िया की किच-किच की तरह मन की किच-किच की भी आदत पड़ जाएगी। 'हमारा' तो इन मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार के साथ 'ज्ञाता-ज्ञेय' का नाता है। हम ज्ञाता और अंतःकरण ज्ञेय। ज्ञेय-ज्ञाता संबंध, शादी संबंध नहीं। इसलिए अलग ही रहता है, वह 'हम' से।

यह जो लोग हिप्नोटाइज़ करते हैं, वह अंतःकरण पर होता है। अंतःकरण के सभी भागों को पकड़ लेता है। पहले चित्त को पकड़ता है, फिर दूसरे पकड़ में आ जाते हैं। अंतःकरण पर असर होने से बाह्यकरण पर असर होता है। पहला असर अंतःकरण पर होता है। जब मन शून्य हो जाता है, तब बाह्यकरण उसके कहने के अनुसार बरतता है। हिप्नोटाइज़ होने के बाद खुद को पता नहीं चलता। खुद शून्य हो जाता है, फिर होश में आने पर क्या हुआ था, वह भी याद नहीं रहता। सारा अंतःकरण में शून्यता हो जाए, वहाँ भान रहेगा ही नहीं न? हर किसी पर हिप्नोटिज़म नहीं हो सकता। वह भी हिसाब हो तभी हो सकता है। यह तो रूपक है। हिप्नोटिज़्म का असर कुछ समय तक ही रहता है, ज़्यादा नहीं रह सकता।

देह के साथ अंतःकरण की भेंट रखकर, यदि एक ही घंटा ज्ञानीपुरुष के साथ बैठे, तो संसार का मालिक बन सकता है। हम उस एक घंटे में तो आपके सारे पापों को भस्मीभूत करके, आपके हाथों में दिव्यचक्षु दे देते हैं, शुद्धात्मा बना देते हैं। फिर आप जहाँ जाना चाहो, वहाँ जाओ न! यह ज्ञान तो ठेठ मोक्ष में पहुँचने तक साथ ही रहेगा। यहाँ हमारी हाज़िरी में अंतःकरण की शुद्धि होती रहती है। उसमें जो दुःख हो रहे हों, तो वे बंद हो जाते हैं, तदुपरांत शुद्धि होती है। उस शुद्धि से तो सच्चा आनंद उत्पन्न होता है! हमेशा के लिए शांति हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : ये भक्त माला फेरते हैं, तब अंतःकरण में क्या क्रियाएँ चल रही होती हैं? मन में जप करते हैं। बाहर हाथ से मोती फिराते हैं और चित्त फिर अन्य क्रियाओं में लगा रहता है। यह क्या है? उस समय कौन सा मन कार्य करता है?

दादाश्री : मन में एक बार नक्की करें कि माला फेरनी है, उसके बाद माला फेरना अपने आप शुरू हो जाता है। हाथ अपना कार्य करते हैं, उस समय अंतःकरण में मन और अहंकार कार्यरत होते हैं। चित्त का ठिकाना नहीं होता। चित्त बाहर भटकता रहता है। उस समय ऐसा अहंकार करते हैं कि यह माला मैंने फिराई, जिससे अगले जन्म के लिए बीज डलते हैं। आज जो करता है वह कम्पलीट डिस्चार्ज है। यह डिस्चार्ज हो रहा है तब वह उस पर अभिप्राय देता है। जैसा अभिप्राय बनता है, वैसा ही फल आता है। अच्छी भावना से अभिप्राय बाँधता है कि यह माला फेर रहा हूँ, लेकिन चित्त ठिकाने नहीं रहता, चित्त ठिकाने रहे, तो अच्छा, तब फिर अगले जन्म में वैसा मिल जाता है और कोई कहे कि यह माला फेरना जल्दी पूरा हो जाए, तो अच्छा। वह ऐसा अभिप्राय बनाता है, इसलिए उसे अगले जन्म में माला फेरना जल्दी पूरा हो जाए, ऐसा प्राप्त होता है।

जैसा अभिप्राय बरतता है वैसा अगले जन्म का बीज बोता है। वहीं पर चार्ज होता है।

ये बच्चे जब पढ़ते हैं, तब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, चारों हाज़िर रहें, तो एक ही बार पढ़ना पड़े। दोबारा पढ़ना ही नहीं पड़ेगा। लेकिन ये तो पढ़ते यहाँ है और चित्त क्रिकेट में होता है, इसलिए सारा पढ़ा पढ़ाया व्यर्थ जाता है। इस खटिया का एक पैर यदि टूटा हो, तो क्या हो? कैसा परिणाम आए? ऐसा इस अंतःकरण का भी है। कवि ने गाया है,

'भीड़मां एकांत एवी स्वप्नमय सृष्टिमां,
सूणनारो 'हुं' ज ने गानारो 'हुं' ज छुं।'
भीड़ में एकांत ऐसी स्वप्नमयी सृष्टि में,
सुननेवाला 'मैं' ही और गानेवाला 'मैं' ही हूँ।

मुंबई की लोकल ट्रेन में शाम के समय अच्छी भीड़ होती है, इधर-उधर से धक्के मिल रहे हों, तब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, सभी भीड़ में बुरी तरह फँसे होते हैं, सभी एन्गेज्ड होते हैं। उस समय 'स्वयं को' (शुद्धात्मा को) देखने और जानने का सही मज़ा आता है। तब वह अकेला पड़ जाता है और तभी उसे सही स्वतंत्रता मिलती है। जितनी भीड़ अधिक और ज्ञेय अधिक, उतनी 'ज्ञाता' की 'ज्ञानशक्ति' भी ग़ज़ब की खिलती है। असल में भीड़ में हो, तब दूसरी ओर 'ज्ञाता' भी सही मानों में खिलता है, संपूर्ण प्रकाश में आता है। जितना स्कोप बढ़ा उतनी शक्ति बढ़ी। कुछ लोग तो सब छोड़कर जंगल में चले जाते हैं। लेकिन सही मज़ा भीड़ में ही है। बाहर भीड़, भीतर भीड़, सब जगह भीड़ हो, तब शुद्धात्मा सही मानों में अकेला पड़ता है। तब वह कहीं पर ज़रा सा भी तन्मयाकार नहीं रहता। हालांकि ऐसा, स्वरूपज्ञान की प्राप्ति के बाद ही संभव है।

ऐच्छिक और अनिवार्य

संसार कैसे चल रहा है, यह समझ में आए, ऐसा नहीं है। इस संसार में सबकुछ अनिवार्य है और उसे ऐच्छिक मानकर चलते हैं, इसलिए फँसे हैं। जन्म हुआ-वह अनिवार्य, पढ़ाई की-वह अनिवार्य, शादी की-वह अनिवार्य और मरेंगे-वह भी अनिवार्य। एक अंश भी ऐच्छिक का, अरे! एक समय भी ऐच्छिक का किसी ने जाना हो, ऐसा इंसान वर्ल्ड में दुर्लभ है। खुद के पुरुष होने के बाद ही उसकी स्वतंत्र मरज़ी उत्पन्न होती है और तभी से उसे अनिवार्यतावाले संसार में ऐच्छिकता उत्पन्न होती है। पुरुष बनने के पश्चात् ही पुरुषार्थ हो सकता है। जन्म से लेकर अर्थी तक

सभी अनिवार्य ही हैं। अरे! अनंत जन्मों तक अनिवार्य में ही भटके हो और उसमें ही भटकना है, यदि छुटकारा करानेवाले ज्ञानीपुरुष नहीं मिलें तो!

बच्चों को बड़े करना, पढ़ाना, शादी करवाना, यह बाप का फ़र्ज़ है। अनिवार्य अर्थात् डयूटी बाउन्ड और ऐच्छिक अर्थात् विल बाउन्ड। लोग अनिवार्य को ऐच्छिक मानते हैं। अरे, तेरी विलिंगनेस (सहमति) जिस ओर है, उसी ओर संसार बंधन हो रहा है। अनिवार्य जो है, उसमें ऐच्छिक का चित्रण कर रहे हैं। जिसे परिवर्तित किया जा सके, वह विलपावर है। कई लड़के बाप से जबान लड़ाते हैं, तब बाप गुस्सा हो जाता है और सबकुछ कह सुनाता है, 'मैंने तुझे पढ़ाया-लिखाया, बड़ा किया।' अरे, उसमें तूने नया क्या किया? वह तो अनिवार्य था! जो तेरा ऐच्छिक हो, वह बता दे न?

देवगति में क्रेडिट भुगतने जाना पड़े, वह भी अनिवार्य है। उसी प्रकार डेबिट भुगतना भी अनिवार्य है। आप सर्विस करते हो, वह ऐच्छिक है? नहीं अनिवार्य है। आपने अपनी कोई इच्छित चीज़ की हो ऐसा लगता है क्या आपको? यह तो जो कुछ होता है, वह यदि इच्छा के अनुरूप हो रहा हो, तो मान लेते हैं कि ऐच्छिक है और इच्छा के प्रतिरूप हो, तो कहते हैं कि अनिवार्य है। अरे! दोनों ही अनिवार्य हैं। इच्छा भी अनिवार्य है।

ये सारी क्रियाएँ ऐसी नहीं हैं कि रोकी जा सकें। सभी अनिवार्य हैं और निरंतर बंधन रूप हैं। मरज़ी से किया, नामरज़ी से किया, वह तो कल्पना है। ऐच्छिक जो है, उसे समझता नहीं हैं। अनिवार्य में पूरा का पूरा कर्तापन उड़ जाता है। जबकि ऐच्छिक में खुद कर्ता बन बैठता है। ऐच्छिक मानना इगोइज़म ही है। कमाई हो, तो कहता है कि 'मैंने कमाया' और घाटा हो, तो कहता है 'भगवान ने किया।' यही दर्शाता है कि यह विरोधाभास

है, ईगोइज़म है। संसार को ऐच्छिक मानते हैं, इसलिए पाप-पुण्य बाँधते हैं। यदि अनिवार्य मानें, तो कुछ भी नहीं बंधेगा।

शादी रचाई, वह अनिवार्य है या ऐच्छिक?

प्रश्नकर्ता : पहले ऐच्छिक लगता था, अब अनिवार्य लगता है।

दादाश्री : यह आपका नाम है, वह अनिवार्य है या ऐच्छिक है? अनिवार्य ही है, क्योंकि बचपन से ही दिया गया है। उसी नाम से चलाना पड़ता है। पसंद हो या नापसंद हो, लेकिन उससे छुटकारा नहीं है। यह तो अनिवार्य है और अपने आप ही हो जाता है। 'संसार के समसरण मार्ग में तीसरे मील और चौथे फर्लांग पर ऐसा ही होगा।' इसका मतलब अनिवार्य रूप से ऐसा ही करना पड़ता है। अनिवार्य में पुलिसवाला डंडे मारकर करवाता है। बाहर जैसे पुलिसवाले हैं, वैसे ही भीतर भी हैं। अतः भीतरी पुलिसवाले हैं वे, सभी लट्टूओं को घुमाते हैं। एक दिन मैं चबूतरे पर बैठा था, तब दो-चार लोग एक बैल को खींचकर ले जा रहे थे, उस बैल की नाक खिंचने के कारण टूटी जा रही थी और ऊपर से, पीछे डंडे बरसा रहे थे। फिर भी भला खिसक ही नहीं रहा था। इस पर मैंने उन लोगों से पूछा, 'क्यों भैया ऐसा क्यों करते हो? बैल चल क्यों नहीं रहा है?' उन्होंने बताया, 'कल बैल को अस्पताल ले गए थे, इसलिए उसे उसका डर बैठ गया है। इसलिए आज नहीं जा रहा है।' कुछ भी करे, लेकिन गए बगैर और कोई चारा ही नहीं था। नाक खींचे, डंडे बरसे और आरी चुभोएँ और जाना पड़े उसके बजाय सीधे-सीधे जाने में क्या हर्ज था? डंडे खाकर भी आखिर करना तो पड़ता ही है, उसके बजाय खुशी-खुशी क्यों नहीं करें? संसार में सब अनिवार्य ही है, इसलिए चुपचाप सीधे-सीधे चल न। वर्ना बैल की तरह तुझे भी दुनिया डंडे मारेगी।

संसार के ज़हर, तू लाख नहीं पीना चाहे, लेकिन वे अनिवार्य

हैं इसलिए डंडे खाकर भी पीने तो पड़ेंगे ही। रोनी सूरत करके पीने के बजाय हँसते-हँसते पीकर नीलकंठ बन जा। इससे तेरा अहंकार रस, अच्छी तरह से विलय हो जाएगा और तू महादेव जी बन जाएगा। हम भी इसी तरह महादेव जी बने हैं।

भगवान महावीर को भी त्याग अनिवार्य था। उनका ऐच्छिक तो अलग ही था। वे खुद स्वतंत्र हो चुके थे, पुरुष बन चुके थे और ऐच्छिक उत्पन्न हुआ था। लेकिन बाहरी भाग में अनिवार्य था। इसलिए लक्ष्य नहीं चूके थे। पत्नी को छोड़ा, वह भी इसलिए छोड़ा कि भगवान के लिए अनिवार्य था। लोग उसे ऐच्छिक मानते हैं। हमारे महात्मा जो अनिवार्य रूप से करते हैं, वह वैभव और ऐच्छिक करते हैं, वही मोक्ष। वैभव के साथ मोक्ष, ऐसा यह दादा भगवान का 'अक्रम ज्ञान' है।

जगत् का अधिष्ठान

पूरा संसार, 'जगत् का अधिष्ठान' खोजता है, लेकिन उसका मिलना कठिन है। 'प्रतिष्ठित आत्मा' इस संसार का सबसे बड़ा अधिष्ठान है। आज हमारे माध्यम से जगत् का सही अधिष्ठान नैचुरली प्रकट हुआ है।

आप खुद 'शुद्धात्मा', तो अंदर दूसरा रहा कौन? अंदर की सूक्ष्म क्रियाएँ कौन करता है? वह सब प्रतिष्ठित आत्मा से होता है। प्रतिष्ठित आत्मा यानी पिछले जन्म में जो-जो कर्म किए थे, जो-जो प्रतिष्ठाएँ की थी, उनसे प्रतिष्ठित आत्मा का निर्माण हुआ। प्रतिष्ठा कैसे की गई? 'मैं चंदूभाई,' 'यह मेरी देह,' 'यह मेरा मन,' 'जो कुछ भी हुआ वह मैंने किया।' ये सारी प्रतिष्ठा हुई। उससे फिर प्रतिष्ठित आत्मा बनकर, इस जन्म में देह में आता हैं। दूसरे शब्दों में यह 'आरोपित आत्मा' है। अतः सब जगह आरोपण करता है। जब विसर्जन होता है, तब सूक्ष्म रूप से सर्जन करता है, वह कैसे समझ में आए? जो सर्जन होता है, वह नये प्रतिष्ठित आत्मा का होता है। अब इसका पता कैसे चले?

प्रतिष्ठित आत्मा कब कहलाता है? जब अहंकार (मैं) और ममता (मेरा) दोनों को साथ में मिलाएँ तब। 'यह मैं नहीं हूँ' और 'यह मेरा नहीं है,' वह निर्विकारी है। 'यह मैं हूँ' और 'यह मेरा है', वह विकारी संबंध है। विकारी संबंध प्रतिष्ठित आत्मा का है। शुद्धात्मा तो निर्विकारी है।

प्रतिष्ठित आत्मा ही ये सारे कार्य कर रहा है। 'शुद्धात्मा' कुछ भी नहीं करता है। चलना-फिरना, वे सभी अनात्मा के गुणधर्म हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा रात में भी नहीं सोता और दिन में भी नहीं सोता। अनात्म भाग सोता है। जो क्रिया करता है, वही सोता है। जो क्रिया करता है, उसे रेस्ट की ज़रूरत है। शुद्धात्मा तो क्रिया करता ही नहीं, उसे रेस्ट की क्या ज़रूरत? रेस्ट कौन ढूँढेगा? जो रेस्ट में इन्टरेस्टेड होता है। वह कौन है? प्रतिष्ठित आत्मा। ये सारी क्रियाएँ प्रतिष्ठित आत्मा की हैं। प्रतिष्ठित आत्मा को नींद ठीक से आई या ठीक से नहीं आई यह जाना किस ने? उसकी क्रियाएँ जानी किस ने? शुद्धात्मा ने। शुद्धात्मा, प्रतिष्ठित आत्मा की किसी भी क्रिया में दख़ल देता ही नहीं है। केवल देखता है और जानता है। सारी अड़चने तो प्रतिष्ठित आत्मा की है। प्रतिष्ठित आत्मा जो जानता है, वह ज्ञेय है और प्रतिष्ठित आत्मा को जो ज्ञेय के रूप में जानता है, वह शुद्धात्मा है। प्रतिष्ठित आत्मा को अड़चने किसलिए हैं? क्योंकि वह इन्टरेस्टेड है। शुद्धात्मा को इन्टरेस्ट नहीं है। वह तो ज्ञाता-दृष्टा और परमानंदी है। 'शुद्धात्मा' स्व-पर प्रकाशक है, जबकि प्रतिष्ठित आत्मा, पर-प्रकाशक है। 'शुद्धात्मा' प्रतिष्ठित आत्मा को भी देखता है और जानता है, इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा ज्ञेय है। शुद्धात्मा और प्रतिष्ठित आत्मा के बीच मात्र ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध है।

अज्ञानी पूछता है, 'तब दु:ख किसे होता है?' अरे, दु:ख तुझे ही होता है। तू आत्मा नहीं है क्या? आत्मा तो है, लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा। तेरा आरोपित आत्मा। असल, मूल आत्मा, शुद्धात्मा

को तो तू जानता ही नहीं है, पहचाना ही नहीं है। तो फिर तुझे, 'उसी रूप', कैसे कहा जाए? हाँ, तू शुद्धात्मा को जाने, उसे पहचाने और उसी में निरंतर रहे, तो तू शुद्धात्मा और यदि तू चंदूलाल है और यह देह तेरी है, तो तू प्रतिष्ठित आत्मा है। अहंकार और ममता की प्रतिष्ठा की इसलिए तू प्रतिष्ठित आत्मा है।

जापान के लोगों ने मोटर बनाई। चाबी ऐसी दी की पाँच किलोमीटर के फासले पर जाकर खड़ी रहे और उसमें चार जने सवार हुए। मोटर तो चाबी के आधार पर चल पड़ी। चाबी लगानेवाला जिसे मिलने जा रहा था, वह भाई डेढ़ किलोमीटर के फासले पर रास्ते में ही मिल गया और कहने लगा, 'जय सच्चिदानंद, अरे! खड़े रहो, खड़े रहो।' लेकिन वह अभागा खड़ा कैसे रह पाता? चाबी लगाने के बाद मोटर फिर खड़ी कैसे रहती, वह तो पाँच किलोमीटर के बाद ही रुकेगी न?

प्रश्नकर्ता : यु टर्न लेगा वह तो फिर।

दादाश्री : वह तो समझने की बात है। उसे कहें, 'खड़े रहो।' और शेष अंदर गोल गोल घूमकर पूरा करे और गरबा गाए!

ऐसा है यह संसार! खुद ने चाबी भरी इसलिए चलानेवाले को भी गरबा गाना पड़ता है, प्रतिष्ठा करता है खुद, लेकिन जब नैचुरली विसर्जन होता है, तब फँस जाता है।

जो सुनता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा। आँख से देखता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा। पाँच इन्द्रियों से अनुभव करता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा। प्रतिष्ठित आत्मा ने क्या जाना, क्या अनुभव किया, उसे जो देखता है और जानता है, वह 'शुद्धात्मा'। इन्द्रियगम्य ज्ञान, वह प्रतिष्ठित आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान, वह शुद्धात्मा। प्रतिष्ठित आत्मा इनडायरेक्ट, लिमिटेड ज्ञान है। शुद्धात्मा वह डायरेक्ट, अनलिमिटेड ज्ञान है। प्रतिष्ठित आत्मा द्वारा चार्ज की हुई शक्तियों का *गलन*

होता रहता है। अंत में प्रतिष्ठित आत्मा और शुद्धात्मा दोनों एक साथ अलग हों। निर्वाण होता है, तब शुद्धात्मा निराकारी होते हुए भी, अंतिम देह के दो तिहाई के साकारी प्रमाण में होता है। संसार में स्थूल या सूक्ष्म का जो आदान-प्रदान, लेना-देना हो रहा है, वह सब प्रतिष्ठित आत्मा का ही है। बाकी न तो कोई लूट सकता है, न ही कोई लूटता है। यह तो प्रतिष्ठित आत्मा द्वारा की हुई प्रतिष्ठा का आदान-प्रदान हो रहा है!

प्रतिष्ठित आत्मा को जला दें, तो पाप लगता है क्यों? क्योंकि उसका ही माना हुआ है, आरोपित है। इस तिपाई को जलाने पर पाप नहीं लगता, लेकिन यदि किसी का आरोपण हो, किसी ने प्रतिष्ठा की हो कि यह तिपाई मेरी है, तो भयंकर पाप लगता है। ममता भोक्तापद में गढ़ जाती है। भोक्तापद में यह मेरा पद का आरोपण करता है। भोक्तापद में जो ममता की गई है, उसी का यह सामान है। जैसी प्रतिष्ठा करे, वैसा फल मिलता है। सुख की करे, तो सुख मिलता है। पसंद-नापसंद, की गई प्रतिष्ठा के आधार पर होती है। 'शुद्धात्मा' कभी भी वेदक नहीं बना है, कर्ता नहीं बना है, भोक्ता भी नहीं बना है और बनेगा भी नहीं। वेदक यानी ममता। 'शुद्धात्मा' और वेदक (ममता) विरोधाभास है। वेदक, कर्ता या भोक्ता, जो दिखाई देता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। यह चक्षुगम्य या इन्द्रियगम्य कोई भी क्रिया शुद्धात्मा की नहीं है। वे सारी क्रियाएँ प्रतिष्ठित आत्मा की हैं। शुद्धात्मा की क्रिया ज्ञानगम्य है। अनंत ज्ञान क्रिया, अनंत दर्शन क्रिया आदि हैं। यह तो जब खुद शुद्धात्मा स्वरूप बन जाता है, तभी समझ में आता है। तभी खुद को यह समझ में आता है कि खुद 'शुद्धात्मा' अक्रिय है। जब तक खुद 'शुद्धात्मा स्वरूप' नहीं हुआ है, तब तक 'वह' प्रतिष्ठित आत्मस्वरूप है, इसलिए कर्ता-भोक्तापद में है। भोक्तापद में फिर कर्ता बन बैठता है और नयी प्रतिष्ठा करके नया प्रतिष्ठित आत्मा खड़ा करता है, नयी मूर्ति खड़ी करता है और चक्र चलता ही रहता है।

शुद्धात्मा ज्ञाता-दृष्टा ही है, लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा ने ही यह सारा गठन किया है। इसीलिए आईने में प्रत्येक को अपना चेहरा अच्छा लगता है, वर्ना अच्छा नहीं लगता। यह सारा चित्रण प्रतिष्ठित आत्मा का ही है। प्रतिष्ठित आत्मा जब तक ऐसा मानता है कि 'मैं कर रहा हूँ', तब तक प्रतिष्ठा करता है। प्रत्येक मनुष्य अपना अगला जन्म खुद ही गढ़ता है। आप जैसी प्रतिष्ठा करोगे, वैसे ही बनोगे। तेरी खुद की ही प्रतिष्ठा, वही प्रतिष्ठित आत्मा है और वही इन सभी का कर्ता है, व्यवहार आत्मा है।

'सत्य' की खोज में सारा संसार भटक रहा है। जो परमात्मा खुद में प्रकाशित हो रहे हैं, वह 'सत्' है। लेकिन वर्ल्ड में इस समय ऐसा कोई भी नहीं है कि जिसे आत्मा मिला हो, और जो मिला है, वह रिलेटिव आत्मा है, लेकिन वह भी, रिलेटिव आत्मा पूर्णरूप से नहीं मिला है। रिलेटिव आत्मा ही प्रतिष्ठित आत्मा है।

'प्रतिष्ठित आत्मा के हाथों में भावना करने के सिवा और कोई शक्ति नहीं है।'

अव्यवहार राशि में जितने आत्मा हैं, वे प्रतिष्ठित आत्मा के साथ-साथ ही होते हैं। अव्यवहार राशि के जीव अर्थात् ऐसे जीव जिनका नाम तक नहीं पड़ा है, वे जीव। जब व्यवहार राशि में आ जाते हैं, तब उनका नाम पड़ता है (जैसे शैवाल, चींटी आदि), वहाँ से फिर उसका व्यवस्थित शुरू होता है।

अंत:करण का मालिक प्रतिष्ठित आत्मा है, लेकिन वह उन से अलग है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, उन सभी से अलग है। मन कहे कि एक कार्य करना है, लेकिन प्रतिष्ठित आत्मा कहे कि यह नहीं करना हैं, तो वह नहीं हो पाएगा। इसमें जो भाव है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है। शुद्धात्मा ज्ञाता-दृष्टा है। अंदर इच्छा होती है, वहाँ प्रतिष्ठित आत्मा कार्य करता है। मन के साथ प्रतिष्ठित आत्मा एक हो जाए, तो उसे भी शुद्धात्मा जानता है

और अलग रहता है, उसे भी शुद्धात्मा जानता है। अज्ञानी मनुष्य भी प्रतिष्ठित आत्मा को मन से अलग करके, योगबल द्वारा कुछ शक्तियाँ प्राप्त करता है।

'शुद्धात्मा पद' की प्राप्ति के बाद अब हम प्रतिष्ठा नहीं करते हैं। पहले की, की गई प्रतिष्ठा है, इसलिए व्यवहार चल रहा है। हमारे शब्दों में निरंहकार है। नया चित्रण होना बंद हो जाता है, वह अद्‌भुत चीज़ है। एक जन्म यदि प्रतिष्ठा नहीं हो, तो काम ही बन जाए न? ज्ञानी का प्रतिष्ठित आत्मा और मिथ्यात्वी का प्रतिष्ठित आत्मा, उनमें कितना अंतर है? ज्ञानी का 'मैं' शुद्धात्मा को ही पहुँचता है, उसके लिए ही है। जबकि मिथ्यात्वी का 'मैं' प्रतिष्ठित आत्मा के लिए ही है। ज्ञानी में, जो ऐसा समझता है कि यह सब पराया है, वह शुद्धात्मा है। 'ज्ञानी' प्रतिष्ठित आत्मा को भी पराया समझते है, जबकि मिथ्यात्वी में 'यह सब पराया है' ऐसा जो जानता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा है।

प्रश्नकर्ता : संसार व्यवहार में जिस चेतन का उपयोग होता है, वह क्या 'शुद्धात्मा' का है?

दादाश्री : इस तरह उपयोग में आनेवाला चेतन, प्रतिष्ठित आत्मा का है। 'शुद्धात्मा' का तो ज़रा सा कुछ भी जानेवाला नहीं है, ना ही खर्च होनेवाला है। जो बेटरी चार्जिंग स्टेशन होता है, वह बेटरी चार्ज कर देता है, उसमें उसकी शक्तियाँ कम नहीं होतीं। ये सभी चाहे जैसे भी कर्म करेंगे, चाहे जिस योनि में जन्मे लें, सोना वही का वही रहता है, मात्र गढ़ाई का नुकसान है। भैंसा गढ़ा, तो भैंसे की गढ़ाई गई। अनंत जन्म नर्क में फिरा है, लेकिन सोना निन्यानवे प्रतिशत भी नहीं हुआ, शत-प्रतिशत शुद्ध ही रहा है। यह जो वृद्धि-हानि होती है, वह तो प्रतिष्ठित आत्मा की होती है। चार्ज-डिस्चार्ज जो होता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा का, मिश्र चेतन का होता है, शुद्धात्मा का नहीं।

पत्थर की मूर्ति में जो प्रतिष्ठा की जाती है, वह लंबे अरसे

तक फल दिया करती है न? प्रतिष्ठा की कितनी बड़ी शक्ति है? अरे! लोहे को भी उड़ा दे। इस संसार में साइन्स की जितनी भी खोजें हैं, वे सभी प्रतिष्ठित आत्मा की हैं। जब प्रतिष्ठित आत्मा की इतनी सारी शक्तियाँ हैं, तो फिर शुद्धात्मा की अनंत शक्तियों की तो बात ही क्या करनी? आत्मा में इतनी सारी शक्ति है कि इस दीवार में प्रतिष्ठा करे, तो दीवार भी बोल उठे ऐसा है।

प्रतिष्ठित आत्मा भी इतना शुद्ध है कि वह विचार नहीं कर सकता। विचार तो मन का स्वरूप है। ग्रंथि फूटने पर विचारदशा प्राप्त होती है। धर्म के विचार या चोरी करने के विचार आते हैं, वे मन की गाँठें हैं। प्रतिष्ठित आत्मा यदि विचार कर सकता, तो बुद्धि रहती ही नहीं। तो फिर कम्प्यूटर जैसा हो जाता। प्रतिष्ठित आत्मा जो अंतःक्रिया करे वह अंतःकरण, फिर बाह्यकरण में ऐसा ही होता है। जिसे अंतःकरण देखना आया, उसे बाह्यकरण का पता चल जाता है। लेकिन मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार को देखना आना चाहिए। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार प्रतिष्ठित आत्मा के हिस्से हैं अथवा अंतःकरण प्रतिष्ठित आत्मा से है। अंतःकरण जैसा दिखाता है, वैसा बाह्यकरण में-बाहर रूपक में आता है। अंतःकरण के साथ दिमाग़ भी है, लेकिन वह स्थूल है, जबकि अंतःकरण सूक्ष्म है। अंतर में जो जो क्रियाएँ होती हैं, वे प्रतिष्ठित आत्मा के आधार पर होती हैं।

मूर्ति में प्रतिष्ठा करने पर 'मूर्त भगवान' मिलते हैं, अमूर्त में प्रतिष्ठा करने पर 'अमूर्त भगवान' मिलते हैं।

निश्चेतन चेतन

सारी दुनिया जिसे चेतन कहती है, उसे हम निश्चेतन चेतन कहते हैं। क्योंकि दिखता तो है चेतन, लक्षण चेतन के हैं, लेकिन चेतन का एक भी गुण नहीं है, तो फिर उसे चेतन कैसे कहा जाएगा?

उदाहरण के तौर पर पीतल को बफिंग करें, तो सोने जैसा ही दिखता है, सोने के सारे लक्षण दिखते हैं, लेकिन वह तो सुनार के पास ले जाने पर पता चलता है। सुनार पहले जाँच करता है कि उसमें सोने के गुणधर्म हैं या नहीं? यदि नहीं हैं, तो वह सोना नहीं हो सकता। लक्षण सोने जैसे होने के बावजूद गुणधर्म सोने के नहीं होने के कारण वह सोना नहीं कहा जाएगा। उसी प्रकार चेतन के लक्षण दिखाई दें, लेकिन चेतन का एक भी गुणधर्म नहीं हो, तो उसे चेतन कैसे कहा जाएगा? हम उसे निश्चेतन चेतन बताते हैं। पीतल सोना जैसा ही दिखाई देता है, लेकिन जब जंग लगता है, तब बोल उठता है, वैसे ही सोना भी बोल उठता है।

यह देह जो है, वह निश्चेतन चेतन है। 'हम' शुद्ध चेतन हैं। पहले प्रतिष्ठा की थी, इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा कहलाता है, वही प्रतिष्ठित चेतन है।

या तो चेतन अच्छा, या फिर अचेतन अच्छा, लेकिन अर्धचेतन अच्छा नहीं है, क्योंकि उसमें सारे लक्षण चेतन के ही हैं। भगवान ने कहा था कि बावड़ी में जाकर स्पंदन करना, लेकिन मिश्रचेतन के सामने स्पंदन मत करना। मिश्रचेतन के साथ स्वाभाविक व्यवहार हो, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन वहाँ पर स्लिप नहीं होना चाहिए। कोई फिसलने लगे तब हम उसे सावधान करते हैं। मिश्रचेतन के साथ व्यवहार हो रहा हो, वहाँ हम उसे टोकते हैं। अचेतन हो, वहाँ हर्ज नहीं है। यह बीड़ी जो है, वह अचेतन है, वहाँ हम आपत्ति नहीं उठाते। बहीखाते में चित्रित है, वह तो हिसाब है। हिसाब चुकता नहीं करेंगे, तो अंदर के परमाणु शोर मचाएँगे, दिमाग़ बिगड़ जाएगा। यह मिश्रचेतन बीच में आ जाए, तो हम उसे सावधान करते हैं। अरे, अहंकार करके भी बच निकल, लेकिन गाफिल रहे तो वह नहीं चलेगा। सावधान नहीं रहेगा, तो दूसरा जन्म बिगड़ेगा।

यह सिनेमा क्या हम पर दावा करता है कि हमारे साथ भोग क्यों भोग रहे हो? नहीं। वह दावा नहीं करता, क्योंकि वह अचेतन है। जबकि मिश्रचेतन तो दावा करता है, क्योंकि उसके भीतर ठंडक नहीं है। उसके भीतर भारी जलन है, इसलिए वह दावा करता है। भीतर यदि ठंडक हो, तो हर्ज नहीं। मिश्रचेतन के लिए ज़रा सा भी उल्टा विचार आया कि तुरंत उसे मिटा देना चाहिए। प्रतिक्रमण करके निकाल बाहर करना पड़ता है। लेकिन अचेतन के लिए प्रतिक्रमण नहीं करें, तो चलेगा। मिश्रचेतन मोक्ष तो नहीं पाने देता, लेकिन अंदर जो सुख आता हो, उसमें भी अवरोध करता है।

सिनेमा या जीभ की फाइल रोग पैदा नहीं करती, लेकिन मिश्रचेतन से ही रोग पैदा होता है। पकौड़े नहीं रूठते, लेकिन मिश्रचेतन रूठे बगैर रहेगा क्या? मिश्रचेतन से सारा संसार खड़ा है। मिश्रचेतन ब्लेक होल जैसा है। यदि वह व्यवहार ही बंद हो जाए, तो फिर क्या दुःख?

मुक्त मन से बैठ सकें, ऐसी सेफसाइड कर लेनी चाहिए। मन यदि आवाज़ दे कि पकौड़े खाने हैं और खिला दिए, तो फिर मुक्त मन से बैठने देगा। जबकि मिश्रचेतन बैठने नहीं देता। सत्संग में भी काँटे की तरह चुभता रहता है।

आप जो बरतते हैं, वह दो हिस्सों में है, एक तो निश्चेतन चेतन और दूसरा चेतन, लेकिन आप खुद निश्चेतन चेतन को चेतन मानते हो। लेकिन दोनों भाग मिक्स्चर के रूप में हैं, कंपाउन्ड के रूप में नहीं हैं, वर्ना दोनों के गुणधर्म नष्ट हो जाते।

निश्चेतन चेतन मिकेनिकल चेतन हैं। बाहर का सभी भाग मिकेनिकल है। स्थूल मशीनरी को हैंडल मारना पड़ता है, जबकि सूक्ष्म मशीनरी को तू हैंडल मारकर ही लाया है। अभी ईंधन भरता रहता है, लेकिन हैंडल नहीं मारना है। सूक्ष्म मशीनरी, वह

मिकेनिकल चेतन है, लेकिन वहाँ 'मैंने किया' ऐसा गर्व करता है, इसलिए चार्ज होता है और अगले जन्म के बीज पड़ते हैं।

पूरा संसार अचेतन को चेतन मानता है और क्रिया में आत्मा मानता है। क्रिया में आत्मा नहीं होता और आत्मा में क्रिया नहीं होती। लेकिन यह बात कब समझ पाएगा? संसार को तो अचेतन चेतन चलाता है। चेतन अलग है, अचेतन भी अलग है और संसार को जो चलाता है, वह भी अलग है। वह विभाविक गुण है। जो चलाता है, वह भी अलग है। वह विभाविक गुण है, जो अचेतन चेतन है। विभाविक गुण यानी आत्मा की भ्रांति से उत्पन्न होता है वह, चलायमान किया हुआ मिश्रचेतन।

मनुष्य देह मोक्ष का अधिकारी

डार्विन ने 'इवॉल्युशन थ्योरी' लिखी लेकिन वह पूर्ण नहीं है। कुछ अंशों तक सही है। मनुष्य गति के बाद वक्र गति हो सकती है, यह उसने नहीं जाना, इसलिए पूर्ण थ्योरी नहीं दे पाया। मनुष्य देह के अलावा और कोई देह ऐसा नहीं है, जो मोक्ष की अधिकारी हो। मनुष्य देह मिले और मोक्ष प्राप्ति के साधन, संयोग पूर्ण रूप से मिल जाएँ, तो काम हो जाए, लेकिन आज के मनुष्य तो निश्चेतन चेतन हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ, तो लट्टू रूपी हैं।

लोग जिसे भावमन, द्रव्य मन मानते हैं, वह तो निश्चेतन चेतन है। शुद्ध चेतन तो वही है जो ज्ञानीपुरुष देते हैं। बाकी तो सब मशीनरी है, मिकेनिकल है। यह तो मशीनरी चल रही है। उसे कहता है मैं चला रहा हूँ! यह तो खाली इगोइज़म करता है कि 'मैंने यह किया।' मन गाँठों का बना है। गाँठों में फल आना यानी रूपक में आना। फल यदि मिश्रचेतन के साथ का रहा, तो अड़चन है। मिश्रचेतन के साथ अर्थात् हम छोड़ भी दें, तब भी सामनेवाला नहीं छोड़ता। जबकि अचेतन को आपने

छोड़ दिया, तो बस कोई झंझट नहीं। माइन्ड (मन) डॉक्टर को दिखाई दे ऐसा नहीं है, लेकिन ज्ञानी को दिखाई दे ऐसा है। माइन्ड इज़ कम्पलीटली फिज़िकल। जबकि सबकॉन्शियस माइन्ड है, वह निश्चेतन चेतन है।

निश्चेतन चेतन पद को द्वैत कहा जाता हैं, उसे जीव कह सकते हैं, लेकिन चेतन नहीं कह सकते। हमारे महात्माओं को शुद्ध चेतन मिला है। हमारी देह तो निश्चेतन चेतन है और हम 'खुद' चेतन हैं।

जब तक शुद्ध चेतन नहीं बन जाता, तब तक तू निश्चेतन चेतन है। सभी निश्चेतन चेतन ही हैं, फिर चाहे साधु हों या संन्यासी। मनुष्य, तिर्यंच, नारकीय जीव, देवता ये सारे ही निश्चेतन चेतन यानी लट्टू ही हैं। जब तक आत्मा का भान नहीं हुआ है, तब तक निश्चेतन चेतन। जब तक निज (स्व) का भान करानेवाले ज्ञानी नहीं मिल जाते, तब तक तू निश्चेतन चेतन है।

हम बगैर मालिकी ब्रह्मांड के स्वामी हैं, क्योंकि हम शुद्ध चेतन हैं, प्रकट स्वरूप में।

जो-जो अवस्थाएँ आती हैं, वे निश्चेतन चेतन हैं, हम शुद्ध चेतन हैं। अवस्थाओं को देखना और जानना है। उसका झट से समभाव से *निकाल* कर देना है। झट से *निकाल* करना आना चाहिए। यदि अवस्था में एकाकार हुए, तो दु:खी होगे, अत: आनंद नहीं आएगा। निश्चेतन चेतन परसत्ता में है। निश्चेतन चेतन में कुढ़न-संताप, आधि-व्याधि-*उपाधि* होते हैं और रियल चेतन में आनंद-परमानंद और समाधि होती है। चिंता, अकुलाहट होती है, वह निश्चेतन चेतन को होती है। जिन-जिन को चिंता, अकुलाहट या त्रिविध ताप होते हैं, वे सभी के सभी निश्चेतन चेतन हैं। ज्ञान भाषा में (रियल लेंग्वेज में) बाहर कोई जी ही नहीं रहा है, चेतन स्वरूप से सभी निश्चेतन चेतन हैं। फिर चाहे वह कोई भी हो। निश्चेतन चेतन में विशेषण 'निश्चेतन' का है।

'मैं चंदूलाल हूँ' भ्रांति से ऐसा आरोप करता हैं। 'मैं', वह आत्मा है, और जहाँ वह खुद नहीं है, वहाँ खुद को प्रतिष्ठित करता है। इसलिए निश्चेतन चेतन खड़ा होता रहता है। जब तक भ्रांति नहीं टूटती, तब तक प्रतिष्ठित के रूप में ही रहना पड़ेगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' यदि ऐसा लक्ष्य रहे, तो फिर वापस निश्चेतन चेतन में नहीं जाता। 'शुद्धात्मा' प्राप्त होने पर ही शुद्ध चेतन समझ में आता है। और तभी गुनहगार के पद से संपूर्ण छुटकारा होता है।

निश्चेतन चेतनवाले एक गुनहगारी में से मुक्त होते हैं और दूसरी गुनहगारी उत्पन्न करते हैं।

इच्छा

इच्छा वह प्रकट अग्नि है। जब तक पूरी नहीं होती तब तक सुलगती ही रहती है। भगवान क्या कहते हैं? इच्छा ही अंतराय कर्म है। इच्छा एक तो मोक्ष के लिए और दूसरी ज्ञानीपुरुष की ही करने योग्य है। उससे अंतराय नहीं आता। अन्य सभी इच्छाएँ सुलगाती ही रहेंगी। वह साक्षात् अग्नि है। उसे बुझाने के लिए लोग पानी खोजते हैं, लेकिन पेट्रोल हाथ में आता है और उस पर छिड़कता है। एक इच्छा पूरी हुई नहीं कि दूसरी आ धमकती है। एक के बाद एक आती ही रहती है। नियम क्या कहता है कि तुझे जो-जो इच्छाएँ होती हैं, वे अवश्य पूरी होंगी ही, लेकिन उसके लिए सोचने से कुछ नहीं होनेवाला। उल्टा अड़चने बढ़ जाती हैं। बार-बार जो इच्छा होती है, वह पन्चिंग (चुभन) करती ही रहती है। इच्छा तो हर चीज़ की नहीं होती है। यह संसार रस है। जो रस उसे प्यारा हो, उसकी इच्छा होती रहती है। इच्छाएँ किस चीज़ की होती हैं? बुद्धि के आशय में तू जो लाया है, उसी की होती रहती हैं। बुद्धि के आशय में तू जो सुख भर लाया है, वह सुख पुण्य खर्च करके तुझे मिलता रहता है।

संसार की जो यह ब्लेड है, उसे दोनों ओर से इस्तेमाल करना है, लेकिन 'शुद्धात्मा' की एक ही ओर से इस्तेमाल करनी है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' इसके बजाय 'मैं अशुद्धात्मा हूँ' ऐसे इस्तेमाल करने पर क्या होगा? सब कट ही जाएगा। शुद्धात्मा की विल (इच्छा) नहीं होती, लेकिन अंतरात्मा की होती है। अंतरात्मा, शुद्धात्मा का पूर्ण पद प्राप्त करने के लिए विल इस्तेमाल करता है। जब पूर्ण दशा हो जाएगी, तब विल नाम मात्र को भी नहीं रहेगी और वीतरागता आने पर पूर्णदशा प्राप्त होगी। संपूर्ण वीतराग को विल नहीं होती। हमारी विल निकाली है और आप सभी महात्माओं की विल ग्रहणीय है। ग्रहणीय अर्थात् पूर्ण पद प्राप्ति के लिए और दादाजी की निकाली विल यानी संपूर्ण पद प्राप्त हो गया है, इसलिए।

प्रश्नकर्ता : इच्छा और चिंतन में क्या भेद है?

दादाश्री : चिंतन यानी आगे के हिसाब का चित्रण करता है और इच्छा यह दिखा देती है कि पिछला हिसाब क्या-क्या है। इच्छा और अनिच्छा दोनों पेटी में भरा हुआ माल है, उसे दिखाती है। जब पुण्य का क्रम आता है, तब इच्छा पूरी होती है और जब अक्रम आता है, तब अनिच्छा ही आगे आया करती है। उदाहरण के रूप में अंधेरे में नंबर डाले हों और अंधेरे में ही उठाए हों तब एक के बाद दो, दो के बाद तीन, ऐसे क्रमानुसार नंबर हाथ में आएँगे जबकि अक्रम में सात के बाद सत्तावन आकर खड़ा रहता है। लिंक मिलती ही नहीं।

रत्नागिरि में एक आदमी मेरे पास आकर मुझसे कहने लगा, 'दादाजी, मैं जहाँ हाथ डालता हूँ, वहाँ सोना ही हाथ में आता है!' मैंने उससे कहा,' भैया इस समय तेरा लिंक (क्रम) चल रहा है इसलिए। लेकिन थोड़े दिनों के बाद जब तेरी लिंक टूटेगी, तब मुझे याद करना।' हुआ भी वैसा ही। उसका धंधा ऐसा चौपट हुआ कि पति-पत्नी दोनों ने ज़हर पी लिया। वह तो संयोगवश

दोनों बच गए, तब उसे मेरी बात याद आई। यह तो क्रम और अक्रम, आते-जाते हैं, वही संसार है। इच्छा तो पिछला हिसाब है, जबकि चिंतन में योजना बनाते हैं। तन्मयाकार होकर कॉज़ डालते हैं। इच्छा इफेक्ट है, जबकि चिंतन कॉज़ है, चार्जिंग पोइन्ट है। शास्त्रकारों का कहना है कि इच्छा अपने आप ही होती है, करने की ज़रूरत नहीं है।

सूर्य अस्त हो रहा हो, तब भी लोगों को तो ऐसा लगता है कि उदय हो रहा है, लेकिन उसकी चिंता मत करना, वे अस्त हो रही इच्छाएँ हैं! मैंने अपने महात्माओं को बताया है कि आपकी जो इच्छाएँ रही हैं, वे बाँझ हैं उनसे बीज नहीं डलता, आपमें अस्त होती इच्छाएँ रही हुई हैं। लोगों में उदय होती और अस्त होती दोनों प्रकार की इच्छाएँ होती हैं।

इस कलियुग में तो चटनी की इच्छावाले ही होते हैं, सबकुछ भुगतने की इच्छवाले नहीं होते। एक ज़रा सी चटनी के लिए सारी ज़िंदगी निकाल देते हैं।

अरे! मैंने ऐसे सेठ लोगों को देखा है कि जो भगवान महावीर की सभा में रात-दिन पड़े रहते थे। सेठानी से कहते थे, 'तू पूरी भाजी यहाँ सभा में लेकर आना, मैं यहीं खा लूँगा।' भगवान की वाणी उनके कानों को इतनी मधुर लगती थी कि वहाँ से खिसकते ही नहीं थे, लेकिन चटनी खाने की इच्छा रह गई थी, इसलिए आज तक भटक रहे हैं।

जो होनेवाला हो, उसकी पहले इच्छा होती है। मैट्रिक पास होनेवाला हो तो, मैट्रिक होने की इच्छा पहले होती है। जब अंतराय टूटते हैं, तब अपनी इच्छा के अनुसार मिल जाता है। सत्संग में पैसे खर्च करने हैं, ऐसी इच्छा तो बहुत होती हैं, लेकिन क्या करे? पहले के अंतराय डले हुए होने के कारण संयोग मिलने पर भी पीछे रह जाता है।। जब अंतराय टूटते हैं, तब सहज ही सब इच्छानुसार हो जाता है।

इच्छा, वह भाव नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इच्छा और भाव में क्या अंतर है?

दादाश्री : यह रुई पड़ी है, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन यदि दियासलाई लेकर जलाएँ, तो वह इच्छा कहलाती है। इच्छा प्रकट अग्नि है। वह जब तक पूरी नहीं होती, तब तक सुलगती रहती है। चीज़ को जलाना, वह इच्छा है और वह तेरे अंदर सुलगती रहती है। हमारा कैसा है कि हमारे पास सुलगाने के लिए दियासलाई ही नहीं होती।

उदय होती इच्छा और अस्त होती इच्छा यानी चार्ज इच्छा और डिस्चार्ज इच्छा। खाना-पीना वह सब अस्त होती इच्छाएँ हैं, उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन उदय होती इच्छा बंधनकारी है और वह दुःख खड़े करती है।

भाव यानी क्या?

'शुद्धात्मा' में किसी भी प्रकार का भाव है ही नहीं। प्रतिष्ठित आत्मा के भाव को भाव कहते हैं। प्रतिष्ठित आत्मा ज्ञानी है और अज्ञानी भी है। अज्ञानी के भाव, मन के दृढ़ परिणाम में होते हैं। मुझे प्रतिक्रमण करना ही है, ऐसा भाव दृढ़ करें, तो वैसा द्रव्य उत्पन्न होता है और उस द्रव्य में से फिर भाव उत्पन्न होता है।

प्रश्नकर्ता : भावमन और द्रव्यमन क्या है?

दादाश्री : प्रतिष्ठित आत्मा भाव करता है, तब भावमन की शुरूआत होती है और उससे द्रव्यमन उत्पन्न होता है। भावमन के भी दो प्रकार हैं: चार्ज और डिस्चार्ज।

वास्तव में भावमन यानी प्रतिष्ठित आत्मा का डायरेक्ट चार्ज होनेवाला मन। यह द्रव्यमन जो दिखाता है, वह तो डिस्चार्ज है। चार्ज तो दिखता ही नहीं। पता ही नहीं चलता। यदि चार्ज समझ

में आए ऐसा होता, तो कोई चार्ज ही होने नहीं देता न? सभी का मोक्ष हो ही जाता। भाव का पता चले ऐसा नहीं है। पता चल जाए तब तो सील कर दें। बहुत ही कम लोग भाव को समझ पाते हैं, लेकिन फिर वे उसे मूढ़ात्मा का समझते हैं, इसलिए गड़बड़ हो जाती है। 'ज्ञान' के बिना भाव पकड़ में आए ऐसा नहीं है। अत्यंत गहन, गहन है। लाख बार गहन-गहन बोलें, तब भी उसकी गहनता का अंत आए, ऐसा नहीं है।

शुद्धात्मा में भाव होता ही नहीं है। भाव यानी अस्तित्वपना, बाकी यह भाव तो प्रतिष्ठित आत्मा का ही है। लोग तो जो भाता है उसी पर भाव करते हैं। भावाभाव करते हैं। ये सभी प्रतिष्ठित आत्मा के ही हैं, उनसे कर्म बंधते हैं। नाशवंत चीज़ों का भाव करते हैं, इसलिए नाशवंत हो जाते हैं। शीशे को 'मैं हूँ' समझें, तो बात कैसे बने?

सज्जनता-दुर्जनता

संसार में सज्जन और दुर्जन, दोनों साथ ही रहनेवाले हैं। दुर्जन हैं, तो सज्जन की क़ीमत है। यदि सभी सज्जन हो जाएँ तो?

सज्जन पुरुष : जो निरंतर उपकार ही करता रहे, वह।

दुर्जन पुरुष : निरंतर अपकार ही करता रहे, वह।

कृतज्ञ : सामनेवाले द्वारा किए गए उपकार को कभी न भूले और सामनेवाले का अपकार कभी भी लक्ष्य में न लाए, वह।

कृतघ्न : सामनेवाले का उपकार भूल जाता है, और जान-बूझकर अपकार करता है। खुद को कोई भी ज़रूरत नहीं हो, कोई लाभ नहीं हो, फिर भी अपकार करता है, वह।

सागर की गहराई का अंत है, लेकिन संसार की गहराई का कोई अंत ही नहीं।

जो अधिकार का दुरुपयोग करता है उसकी सत्ता चली ही जाती है। जो सत्ता मिली हो, उसे शोभा नहीं दे, ऐसा कार्य करे, तो सत्ता चली जाती है। भले ही आपका नौकर आपको गाली दे, लेकिन आप गाली देंगे, तो आपकी सत्ता चली जाएगी।

झूठ सिर चढ़कर बोलता है, और सत्य भी सिर चढ़कर बोलेगा। झूठ तुरंत ही बोलेगा। सत्य को देर लगेगी। असत्य तो दूसरे दिन ही बोल उठेगा।

हल्दीघाटी का युद्ध छेड़ने में मज़ा नहीं है, निपटाने में मज़ा है। समझा-बुझाकर काम निकाल लेना, लेकिन लड़ना नहीं। न्याय किसे कहते हैं? कोर्ट में जाना नहीं पड़े वही न्याय कहलाता है। कोर्ट जाना पड़े, वह अन्याय है।

मन-वचन-काया और आत्मा का उपयोग लोगों के लिए कर। तेरे खुद के लिए करेगा, तो खिरनी (खिरनी का पेड़) का जन्म मिलेगा। फिर पाँच सौ साल तक भुगतते ही रहो। लोग तेरे फल खाएँगे, लकड़ियाँ जलाएँगे, कैदी की तरह तेरा उपयोग होगा। इसलिए भगवान कहते हैं कि तेरे मन-वचन-काया और आत्मा का उपयोग औरों के लिए कर। फिर तुझे कोई भी दुःख आए, तो मुझ से कहना।

जिसकी अविरोधाभास खोजने की मति उत्पन्न हुई है, वही 'सुमति' है।

जो जो संसार का उच्छेद करने गए हैं, उनका अपना ही उच्छेदन हो गया है। मनुष्यपना तो सबसे बड़ा भयस्थान है, टेस्ट एक्ज़ामिनेशन (कसौटी) है। उसमें लोग मज़ा ले रहे हैं। उसमें तो निरे भयस्थान ही हैं। हर क्षण मृत्यु का भय, एक क्षण भी व्यर्थ कैसे गवाएँ। ऐसा कुछ कर कि जिससे तेरा अगला जन्म सुधरे। यह मनुष्य गति टर्निंग पोइन्ट है। यहाँ से वक्र गति होती है। नर्क, तिर्यंच, मनुष्य और देव चारों गतियों में यहाँ से जा

सकते हैं, और मोक्ष भी मनुष्य गति में ही मिलता है। यदि ज्ञानीपुरुष मिल गए, तो समझो बेड़ा पार ही हो गया।

देह के तीन प्रकार

तीन प्रकार के देह है : तेजस देह, कारण देह और कार्य देह।

आत्मा के साथ निरंतर रहनेवाली, वह तेजस देह है। वह सूक्ष्म शरीर है, इलेक्ट्रिकल बॉडी है। शरीर का जो नूर है, जो तेज होता है, वह तेजस शरीर के कारण होता है। शरीर का नूर चार चीज़ों से प्राप्त होता है।

(१) कोई बहुत लक्ष्मीवान हो और सुख-चैन से रहता हो, तो उसका तेज आता है, वह लक्ष्मी का नूर।

(२) जो बहुत धर्म करता हो, तो उसके आत्मा का प्रभाव पड़ता है, वह धर्म का नूर।

(३) कोई बहुत विद्याभ्यास करे, रिलेटिव विद्या प्राप्त करे, तो उसका तेज आता है, वह पांडित्य का नूर।

(४) ब्रह्मचर्य का नूर।

ये चारों नूर सूक्ष्म शरीर, तेजस शरीर से आते हैं।

जब माता का रज और पिता का वीर्य इकट्ठा होते हैं, तब नया इफेक्ट बॉडी (कार्य शरीर) उत्पन्न होता है। जीव क्या है? जो जीता है और मरता है, वह जीव है। ये सभी जीव मरते हैं, तब सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर साथ ले जाते हैं। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार यहीं स्वतंत्र हो जाते हैं, और जो कॉज़ल बॉडी (कारण शरीर) साथ ले जाते हैं, उससे नया इफेक्ट बॉडी (कार्य शरीर) बनता है। माता के रज और पिता के वीर्य से उत्पन्न हुआ कार्य शरीर, उन्हीं को खा जाता है और उसकी

गाँठ बनती है। जीव घंटेभर के लिए भी बिना खुराक के नहीं रह सकता। अन्न नहीं, तो हवा-पानी कुछ न कुछ तो लेता ही रहता है।

जो तेजस शरीर है, वही सूक्ष्म शरीर या इलेक्ट्रिकल बॉडी है। यह इलेक्ट्रिकल बॉडी खाना पचाती है, शरीर में गरमी पैदा करती है। सर्क्युलेशन चलाती है। उसके तार-डोरियाँ सब जगह पहुँचते हैं, इसीलिए सारी मशीनरी काम करती है। यदि किसी कर्म की कमी हो, तो बचपन से ही जठर खाना नहीं पचा सकता। देह के अंदर की इलेक्ट्रिकल बॉडी ही असल में कार्य करती है, लेकिन स्थूल शरीर उसे ग्रहण नहीं कर सकता, इसीलिए देह कमज़ोर होती जाती है। सूक्ष्म शरीर तो सभी का एक जैसा ही होता है। यह जो आपकी देह का आकार है, उसका आर्किटेक्चर तो पहले से ही तय हो गया होता है। वह कॉज़ल बॉडी कहलाता है और यह जो स्थूल देह प्राप्त हुई, वह इफेक्ट बॉडी है। शरीर में जो भाग एबोव नॉर्मल या बिलो नॉर्मल हो जाता है, उसी भाग का दोष होता है और वही भाग भुगतता है। इस पर से अनुमान (कैलक्यूलेशन) लगाया जा सकता है कि दर्द कहाँ से आया और क्यों आया?

कारण देह समझ में आए ऐसा है। जन्म से ही उत्पन्न होता है, अंदर से ही होता है। हवा खाए, तभी से शुरू होती है, तभी से राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं। बचपन से ही पसंद-नापसंद होती है। राग-द्वेष से परमाणु खिंचते हैं, वीतरागता से नहीं खिंचते। परमाणु खिंचने से, *पूरण* होने से 'कारण देह' बनती है। आज जो देह दिखाई देता है, वह पूर्वभव की कारण देह है। ज्ञानीपुरुष को कारण देह दिखाई देता है और उनमें इतना सामर्थ्य होता है कि कारण देह का गठन बंद कर दें, सील कर दें। फिर नयी कारण देह गठित नहीं होती।

जब आत्मा जब देह से अलग होता है, तब उसके साथ

कारण देह जाएगा, पुण्य-पाप जाएँगे। पुण्य के आधार पर रूप, सिमेट्रिकल बॉडी (समरूप शरीर) सुख इत्यादि मिलते हैं। पाप के आधार पर कुरूपता मिलती है। पाप के आधार पर देह असिमेट्रिकल (बैडौल) मिलती है। जब इस देह में से आत्मा खिसक जाता है, तब कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर साथ ही रहते हैं। जब सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के परमाणुओं के सांयोगिक प्रमाण इकट्ठे होते हैं, तब स्थूल शरीर खड़ा होता है। आत्मा जब मृत्यु समय, स्थूल देह से अलग होता है, तब वह एक जगह से निकलकर दूसरी जगह पर, एक समय में, उसके व्यवस्थित द्वारा निश्चित किए हुए स्थान पर पहुँच जाता है। और वहाँ जाकर पिता का वीर्य और माता का रज मिलता है तब देह धारण करता है। आत्मा उस समय एकदम संकुचित (कॅम्प्रेस) हो जाता है। जब तक नया स्थान नहीं मिलता, तब तक सामान्यत: पुराना स्थान नहीं छोड़ता है। उसके स्थिति-स्थापक गुण के कारण लंबा होकर एक सिरा पुराने देह में और दूसरा सिरा नयी कार्य-देह में ले जाता है, तब ही पुराना देह छोड़ता है। कुछ प्रेतयोनि के लायक जीव होते हैं, उन्हें दूसरा देह तुरंत ही नहीं मिलता है। ऐसा जीव प्रेतयोनि में जाकर भटकता है, और जब नया देह मिल जाए तब उसे छुटकारा मिलता है।

मनुष्य देह में आने के बाद ज़्यादा से ज़्यादा आठ जन्म अन्य गतियों में जैसे कि देव, तिर्यंच या नर्कगति में जाकर आने के बाद, फिर वापस मनुष्य देह मिलता है। मनुष्य देह में वक्रगति उत्पन्न होती है, और भटकन का अंत भी मनुष्य देह में से ही मिलता है। इस मनुष्य देह को यदि सार्थक करना आ जाए, तो मोक्ष प्राप्ति हो सके ऐसा है और न आया, तो भटकने के साधनों में वृद्धि करे, ऐसा भी है। अन्य गतियों में केवल छूटता है। लेकिन इसमें दोनों ही हैं, छूटने के साथ-साथ बंधन भी होता है। इसलिए दुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त हुई है, तो उससे अपना काम निकाल लो। 'अनंत जन्म आत्मा ने देह के लिए गुज़ारे हैं, एक

जन्म यदि देह आत्मा के लिए गुज़ार दें, तो काम ही बन जाएगा।'

मनुष्य देह में ही यदि ज्ञानीपुरुष मिलें, तो मोक्ष का उपाय होता है। देवता भी मनुष्य देह के लिए तरसते हैं। ज्ञानीपुरुष से भेंट होने पर, तार जुड़ने पर, अनंत जन्मों तक शत्रु समान बनी देह परम मित्र बन जाती है। अतः इस देह में ज्ञानीपुरुष मिले हैं, तो पूर्णरूप से अपना काम निकाल लीजिए। पूर्ण संधान करके तैरकर पार उतर जाओ।

हमें इस देह पर कितनी प्रीति है? इस देह से मोक्ष तो मिल गया, खुद का कल्याण तो हो गया, अब लोगों के कल्याण हेतु यह देह खर्च हो, उसके लिए ही इसका जतन और उसके लिए ही इससे प्रीति है। बाकी, हम तो उसे एक पड़ोसी की तरह ही निभा रहे हैं।

इस देह पर अधिकार हमारा अपना है ही नहीं। जिस-जिसका होगा वे ले जाएँगे। हमें तो इस देह को मित्र समान मानकर अपना काम निकाल लेना है। बाकी, इस देह में कब क्या हो जाए वह कुछ कह नहीं सकते। बाकी, हमारे स्वयं के प्रदेश (शुद्धात्मा) को कुछ भी नहीं हो सकता। जिस शरीर से मोक्ष में जाना है, वह शरीर बहुत मज़बूत होता है, निर्वाण पानेवाला शरीर 'चरम शरीर' कहलाता है।

भगवान इस देह में कब तक रहते हैं? जब तक प्रतिष्ठित आत्मा का मुकाम रहे, तभी तक रहते हैं। मूल आधार तो शुद्धात्मा का ही है। प्राण के आधार पर जीता है, वह प्राणी। नाक आठ मिनट तक दबाए रखें, तो प्राण निकल जाएँ, ऐसा है यह सब, यह तो मशीनरी है।

देह भान, वह मूर्च्छावस्था है। देहाध्यास ही अज्ञान है। स्वभान से मुक्ति है।

स्थूल देह वीतरागी है। जितनी यह तिपाई वीतरागी है, उतना

ही यह स्थूल देह भी वीतरागी है। उतना ही आत्मा भी वीतरागी है। सूक्ष्म शरीर सबका ज़िम्मेदारीवाला है। सूक्ष्म शरीर कुछ खास परमाणुओं का बना हुआ है। स्थूल देह की किसी भी चेष्टा से आत्मा का कोई लेना-देना नहीं है। सारा दु:ख भी सूक्ष्म शरीर ही भुगतता है। सूक्ष्म शरीर आत्मा का आविर्भाव है। सूक्ष्म शरीर से ही 'मैं'पन की प्रतिष्ठा करता है, इसलिए सूक्ष्म शरीर प्रतिष्ठित आत्मा जैसा है।

कर्म अधिक हों, तो शरीर छोटा होता है। कर्म कम हों, तो शरीर बड़ा रहता है जैसे कि चींटी और हाथी। चींटी को तो मैंने रात के चार बजे भी शक्कर को खींचकर ले जाते देखा है, और हाथी? वह बादशाही ठाठ से मस्ती में रहता है।

देहाध्यास कब टूटे?

सारा संसार देहाध्यास में लिप्त रहता है। कहते भी हैं कि यह शरीर मेरा नहीं, मन मेरा नहीं, लेकिन यदि कहा जाए कि चंदूलाल, आप में अक्ल नहीं है, तो सारी रात नींद नहीं आती उसका इफेक्ट रहता है। आत्मज्ञान नहीं हो, तब तक देहाध्यास टूटे ऐसा नहीं है। मैं चंदूलाल, मैं इसका मामा, इसका चाचा, इसका पति, इसका पिता वही देहाध्यास। जब तक देहाध्यास टूटता नहीं, तब तक स्थूल और सूक्ष्म वर्गणा (संबंध) रहती है, शुभ और अशुभ रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब देहाध्यास टूटता है, फिर इकलौता लड़का मर जाए, तो भी द्वंद्व नहीं होता, पन्चिंग नहीं होता। अच्छा या बुरा ऐसा नहीं रहता।

जैसा देहाध्यास रहता है, वैसा आत्माध्यास होना चाहिए। नींद में, गहरी नींद में भी आत्मा का भान रहना चाहिए। हम देते हैं, उस ज्ञान से सभी अवस्थाओं में आत्माध्यास ही रहता है। यह तो ग़ज़ब का ज्ञान है! जैसे दही को मथने के बाद मक्खन

और छाछ दोनों अलग ही रहते हैं, वैसा ही यह ज्ञान है। देह और आत्मा अलग के अलग ही रहते हैं।

पहले के ज्ञानी कोल्हू में पिस-पिसकर बने थे, वह इसलिए कि तू आत्मा है, तो देह को कोल्हू में पिसना हो, तो पिसने दे। देह का तेल निकलना हो, तो तेल निकलने दे। आत्मा पिसनेवाला नहीं है, ऐसी कसौटी में से खरे उतरकर गए थे।

देह की तीन अवस्थाएँ

देह की तीन अवस्थाएँ - बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था।

बाल्यावस्था में परमानंद - सहजानंद होता है। बालक को कोई भी चिंता नहीं होती। जन्म से पहले ही दूध की कुँडियाँ भरकर छलक गई होती हैं। छोटे़ बच्चे को है कोई चिंता? दूध कहाँ से आएगा? कब आएगा? और फिर भी उसे सबकुछ समय पर आ ही मिलता है न? ज्ञानीपुरुष बालक जैसे होते हैं, लेकिन बालक को सब नासमझी में होता है, जबकि ज्ञानीपुरुष संपूर्ण समझदारी के शिखर पर होने के बावजूद बालक जैसे होते हैं। बालक का मन डेवेलप नहीं हुआ होता है, बुद्धि डेवेलप्ड नहीं हुई होती है। अकेली चित्तवृत्ति ही कार्य करती रहती है। उसकी चित्तवृत्ति उसकी पहुँच के विषय में ही होती है। जैसे, खिलौना नज़र में आया, तो उसकी चित्तवृत्ति उसी में रहती है, लेकिन कितनी देर? थोड़ी ही देर। फिर दूसरे विषय में चली जाती है। एक ही विषय में चित्तवृत्ति ठहरती नहीं है, जबकि बड़ी उम्रवालों के तो दो-चार विषयों में ही चित्तवृत्ति रहा करती है और उन्हीं में घूमती रहती है। इसीलिए तो सारा बवाल खड़ा होता है न? बालक थोड़ी देर बाद भूल जाता है, क्योंकि उसकी चित्तवृत्ति उसमें स्थिर नहीं होती, तुरंत ही उसमें से निकल जाती है। छोटे बच्चे में जब तक बुद्धि जागृत नहीं हुई है, तब तक उसका सहजानंद

व्यवस्थित है। फिर जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे संताप भी बढ़ता जाता है।

युवावस्था प्रकट अग्नि समान है। उसमें बाह्याचार बिगड़ने के संयोग खड़े होते हैं, इसलिए उसमें विशेष रूप से सावधान होकर चलना अच्छा। देवों को जन्म, जरा (बुढ़ापा) या मृत्यु नहीं होते। उन्हें निरंतर यौवन ही होता है।

वृद्धावस्था अर्थात् बुढ़ापा। बुढ़ापा बिताना बड़ा कठिन है। सारी मशीनरियों का दिवाला निकल चुका होता हैं। दाँत कहे टूटता हूँ, कान कहे दु:खता हूँ, बुढ़ापे को बहुत सँभालना पड़ता है। बहुत चिकने कर्म न हों, तो बैठे-बैठे ही चल बसता है। सारी मशीनरियों का दिवाला निकल गया हो और पूछें कि अब जाना है न चाचाजी?' तब भी चाचा जी कहेंगे, 'अभी तो थोड़ा और जी सकता हूँ!' ये तो सारे चाय-पानी के लालच हैं!

बाँधे हुए कर्म तो आतिशबाज़ी जैसे होते हैं। वे भी बुढ़ापे में ही फूटते हैं। इस ओर बम फूटें, इस ओर रॉकेट उड़ें और भारी उथल-पुथल कर देते हैं। इस देह से जो-जो *शाता* (सुख-परिणाम) भोगी हों, वे आखिर में *अशाता* देकर जाती हैं। और *अशाता* (दु:ख-परिणाम) भोगी हो, तो आखिर में *शाता* देकर जाती हैं। ऐसा नियम है। *अशाता* के प्रमाण अनुसार *शाता* देकर जाती है। कोई ही ऐसा पुण्यवान होता है, जो आखिर में *शाता* पाकर जाता है। ऐसा शीलवान शायद ही कोई होता है। संसार के लोगों को भोग-विलास करते समय भान नहीं रहता कि इसका पेमेन्ट करना पड़ेगा। यह तो बिना हक़ का भोग-विलास, इसलिए फिर आखिरी घड़ी में भी पेमेन्ट करना पड़ता है। जबकि सरल लोगों को बहुत अच्छा रहता है। मरते समय यदि ऐसा कहकर जाएँ कि हम जा रहे हैं, तो फिर भी अच्छा, उसकी ऊँची गति होती है। ऊँचे ओहदे पर जाते हैं। लेकिन बेहोशी में मरें, तो बेहोश में जाते हैं, गाय-भैंसों में जाते हैं। जिसका हार्ट फेल होता है,

उसका तो कोई ठिकाना ही नहीं। वर्तमानकाल में तो रौद्रध्यान और आर्तध्यान ही छाए हुए हैं, इसलिए जीना भी मुश्किल हो गया है और मरना भी मुश्किल हो गया है। जवान लोग जो मरते हैं। वे रौद्र और आर्तध्यान में मरते हैं। बूढ़े लोग मरते हैं, तो कल्पांत में, वे भयंकर जोखिमदारी ले लेते हैं। भोजन आज का अप्रमाणिकतावाला, कपड़े-वपड़े सब अप्रमाणिकतावाले और वह भी आर्त और रौद्रध्यान करके इकट्ठा किया हुआ। अतः जब वे मरते हैं, तब भी बहुत दुःख भुगतते हुए मरते हैं। शरीर का एक-एक परमाणु दुःख देकर, काटकर जाता है, और बहुत दुःख होता है तब हार्ट फेल होकर मर जाता है। और फिर वापस अगले जन्म में कर्म भुगतने पड़ते हैं। यह तो परमाणु का साइन्स है। वीतरागों का साइन्स है। इस में किसी की एक नहीं चलती!

खुद के हिसाब की फटी साड़ी अच्छी, खुद की प्रामाणिकता की खिचड़ी अच्छी, ऐसा भगवान ने कहा है। अप्रमाणिकता से प्राप्त करे, वह तो गलत ही है न?

बुढ़ापा आए और जाने का समय हो जाए, तब पटाखे एक साथ फूट जाते हैं, लेकिन ज्ञान नहीं हो, तो बुढ़ापा काटना भारी पड़ जाता है, लेकिन ज्ञान मज़बूत हो गया हो, तो जो जो पटाखे फूटते हैं, उनके प्रति ज्ञाता-दृष्टा रहकर स्वयं (शुद्धात्मा) की गुफ़ा में रह सकते हैं। हमारे ज्ञानी अंतिम साँस लेते-लेते भी क्या कहते हैं, मालूम है? 'इस गठरी की अंतिम साँस को आप भी देख रहे हो और मैं भी देख रहा हूँ!' अंतिम साँस के भी ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं! सभी को एक न एक दिन दुकान तो बंद करनी ही पड़ेगी न? सभी जाने के लिए ही तो आते हैं ने? अरे! जन्म होते ही 'वे टु श्मशान' शुरू हो जाता है। अरे! तू कहाँ चला? श्मशान की ओर। अरे! तू श्मशान जा रहा है और रास्ते में पकोड़े-वकोड़े खाने क्यों बैठ गया? कुछ तो सोच? प्रतिक्षण तू श्मशान की ओर आगे बढ़ रहा है! कभी न कभी अंतिम

स्टेशन पर तो तुझे पहुँचना ही है न? जल्दी या देर से नहीं, लेकिन शांतिपूर्वक जा सके इतनी आशा रख सकते हैं।

जब बुढ़ापा आता है, तब सभी दर्दों का एक ही दर्द हो जाता है, उसकी दवाई जान लें, तो दर्द शुरू होने पर ले सकते हैं। यह अंतिम दर्द तो हमें ले जाने के लिए आता है।

जो देह मुरझा जाए, सड़ जाए, गंध मारने लगे, उससे प्रीति क्यों? यह तो चमड़ी से ढँका माँस का पिंड है। इस देह को प्रतिदिन नहलाते-धुलाते, खिलाते-पिलाते, कितना जतन करते हैं, लेकिन वह भी आखिर में दग़ा दे देती है। यह देह ही यदि सगी नहीं होती, तो औरों का तो कहना ही क्या? इस देह को बार-बार सहलाते रहते हैं, लेकिन यदि उसमें से पीप निकले, तो अच्छी लगेगी क्या? देखना भी अच्छा नहीं लगेगा, वैराग्य आ जाएगा। यह तो पीप, रुधिर और माँस के पिंड ही हैं। हमें, ज्ञानीपुरुष को सबकुछ साफ दिखाई देता है। जैसा है वैसा ही दिखाई देता है, इसलिए वीतराग ही रहते हैं। देह पर अनंत जन्मों राग किया, उसका फल जन्म-मरण आया। एक बार आत्मा का रागी बन जा, यानी वीतरागी हो जा, तो अनंत जन्मों का हल निकल जाएगा।

शरीर तो कैसा होना चाहिए? जो शरीर मोक्ष का साधन बन जाए वैसा होना चाहिए। 'चरम शरीर' प्राप्त होना चाहिए।

यह शरीर तो परमाणुओं का बना हुआ है, और कुछ है ही नहीं। जिस प्रकार के परमाणुओं का संग, वैसा ही देह में अनुभव होता है।

पशु-पक्षी, वनस्पति, सभी जीव मनुष्यों के लिए जीते हैं और मनुष्य खुद अपने लिए जीता है। फिर भी भगवान कहते हैं कि मनुष्य देह देवताओं के लिए भी दर्शन करने योग्य है। समझे, तो काम ही निकाल ले।

मनुष्य देह का प्रयोजन

पूरे जगत् में किसे पता है कि यह देह किसलिए प्राप्त हुई है? जो देह प्राप्त हुई है वह किसलिए है, उसी का भान नहीं है। मौज-मज़े करेंगे, भगवान की भक्ति करेंगे, योग करेंगे, तप करेंगे या त्याग करेंगे, ऐसा भान रहता है। लेकिन यह देह तो, गुनहगारी खत्म करने के लिए प्राप्त हुई है। हर एक प्राप्त संयोग का समभाव से *निकाल* करके भगवान को निहारने के लिए यह देह प्राप्त हुई है। इसीलिए तो कवि लिखते हैं कि

'देह जे प्राप्त थयो, गनेगारी टाळवा
कर्म आवरण खप्ये, भगवान न्याळवा'

देह जो प्राप्त हुई, गुनहगारी टालने,
कर्म आवरण खपाने, भगवान निहारने।

आचार, विचार और उच्चार

आचार, विचार और उच्चार, तीनों चंचल चीज़ें हैं। 'अपने को' तो केवल जानना चाहिए कि विचार ऐसा आया। विचार आते हैं, उसके लिए हम ज़िम्मेदार नहीं हैं, क्योंकि वे तो पहले की गाँठें फूट रही हैं। वह तो पहले हस्ताक्षर हो गए थे, इसलिए आते हैं। आज उसके ज़िम्मेदार नहीं हैं। लेकिन यदि फिर से हस्ताक्षर कर दें, तो भयंकर जोखिम है।

'आत्मा' स्वयं अचल है तथा आचार, विचार और उच्चार चंचल भाग में हैं। जो जो कार्यान्वित होता है, वह 'चार' में आता है, 'आचार', 'विचार' और 'उच्चार'। प्रत्यक्ष रूपक में आता है वह 'आचार', अंदर फूटे वह 'विचार' और जो बोला जाए वह 'उच्चार'। यदि नोर्मेलिटी में रहे, सम रहे, तो संसार कहलाएगा। इसीलिए बाहरी भाग को-बाह्याचार में, नोर्मेलिटी में रहने को कहा है।

सत्युग में सिर्फ मन का विचार ही बिगड़ता था। वाणी

और देह का आचार नहीं बिगड़ता था। आज तो सभी आचार बिगड़े हुए देखने को मिलते हैं। यदि मन का आचार बिगड़ा होता, तो चला लें, लेकिन वाणी का और देह का नहीं चलाया जा सकता। सभी आचार बिगड़ें हुए हों, तो भयंकर प्रत्याघाती वाणी निकलती है। वह सारा बिगड़ा हुआ ही निकलता है। ज्ञान के प्रताप से, जो बाह्याचार बिगड़े हुए थे, वे बंद हो जाते हैं। देह का आचार शुद्ध चाहिए। मन और वाणी के आचार बदलते रहते हैं। यदि देह का आचार खराब हो जाए, तो वह तो बहुत बड़ा जोखिम है। देवगण भी दुःख देंगे, बाह्याचार शुद्ध हो, तो देवगण भी खुश रहते हैं। शासन देवता भी खुश रहते हैं।

बाह्याचार बिगड़ने का कारण क्या है? बाहर सुख नहीं मिलता है, इसलिए। अंदर का अपार सुख मिलने के बाद, बाहर के आचार सुधरते जाते हैं।

ज्ञानी के लिए तो अंदर के सभी आचार ज्ञेय रूपी बन जाते हैं और खुद ज्ञाता-दृष्टा पद में रहते हैं। हमारे पास ज्ञान है, इसलिए चाहे कैसे भी दुःख के संयोग आएँ, तो बिना डिगे ही उनमें से बाहर निकल सकते हैं। संकट समय की जो ज़ंजीर है, वह खींचें, तो *निकाल* हो जाता है।

यह ज्ञान नहीं हो, तो लट्टू की तरह फिरता रहता है, लेकिन ज्ञान है, तो बाह्याचार सुंदर होना चाहिए, वर्ना बहुत बड़ा जोखिम आ पड़ता है। लोकनिंद्य आचार तो नहीं होना चाहिए। जो-जो आचार लोकनिंद्य होता है, वैसा अपने में नहीं होना चाहिए। वाणी खराब हो, मन खराब हो, तो चला सकते हैं, लेकिन देह का आचार खराब हो, तो नहीं चला सकते, वहाँ तो देवी-देवता भी खड़े नहीं रहते।

मन और वाणी के हम ज्ञाता-दृष्टा हैं, और वे तो ज्ञेय फिल्म कहलाते हैं, लेकिन बाह्याचार तो नहीं चला सकते। लोकनिंद्य आचार में पड़ने के बजाय शादी कर लेना उत्तम है। बाकी, ऐसी भूल

तो दिखे तभी से निकाल बाहर करनी चाहिए। उसमें ज्ञाता-ज्ञेय संबंध रखने गए, तो वह भूल कहाँ फेंक देगी यह कहा नहीं जा सकता। किसी दिन ज्ञान को एक ओर हटाकर चढ़ बैठेगी। ज़हर की परख नहीं करते। अहंकार करके भी तोड़ डालना। चाहे जैसे उसका समाधान लाना चाहिए। बाहर तो चलेगा ही नहीं। हम एक बार निश्चय कर लें कि बाह्याचार शुद्ध होना ही चाहिए। निश्चय नहीं करेंगे, तो दुकानें चलती रहेगी। यह तो भयंकर जोखिम है। इसके समान दुनिया में और कोई जोखिम नहीं है। संसार जोखिमवाले स्वभाव का नहीं है, लेकिन बिगड़ा हुआ बाह्याचार जोखिमवाला है। सुंदर बाह्याचार से तो देवकृपा बनी रहती है, और वे मोक्ष तक हैल्प करते हैं।

बाह्याचार के बारें में हमें ज्ञात होना चाहिए कि यह तो अत्यंत जोखिमवाली चीज़ है, इसलिए हमें उसे ज्ञानीपुरुष को अर्पण कर देना चाहिए। बाह्याचार क्यों बिगड़े हैं? क्योंकि सुख नहीं है, इसलिए। जलन अभी खड़ी हुई है, गई नहीं लेकिन हमारे भीतर अनंत सुख है, फिर ऐसा नहीं होना चाहिए। हम शुद्धात्मा हुए, इसलिए अहंकार करके भी उससे दूर रहना चाहिए।

बिगड़ा हुआ बाह्याचार किसे कहते हैं?

अभी तू किसी की जेब से कुछ निकाल ले तो भीतर फड़फड़ाहट होती रहती है न? वह लोकनिंद्य कहलाता है। किसी को गाली देना, थप्पड़ लगाना, शराब, सट्टा सब बिगड़े हुए बाह्याचार में जाता है, जो जोखिमी कहलाता है। यह जोखिम चला तो लें, लेकिन उससे फ़ायदा क्या है? लेकिन मुख्य रूप से ब्रह्मचर्य के संबंध में बाह्याचार का बिगड़ना नहीं चला सकते और दूसरे चोरी के संबंध में। दुनिया का सबसे बड़ा बाह्याचार बह्मचर्य है। उससे तो देवता भी खुश हो जाते हैं। संसार बाधक नहीं है। तू एक के बजाय चार शादियाँ कर, लेकिन बाह्याचार नहीं बिगड़ना चाहिए। इसे (शादी से बाहर के संबंध को) तो भगवान ने अनाचार

कहा है। मोक्ष में जाना हो, तो नुकसानदेह चीज़ों को एक ओर रख ही देना चाहिए न?

उद्वेग

उद्वेग अर्थात् आत्मा (प्रतिष्ठित आत्मा) का वेग ऊपर, दिमाग़ में चढ़ना।

वेग के विचार आएँ, तो शांति ही रहती है और उद्वेग के विचार आएँ, तो अशांति ही लाते हैं। उद्वेग के विचार आएँ, तो समझ लेना कि कुछ खराब होनेवाला है।

यह ट्रेन मोशन में चलती है या इमोशनल होकर चलती है?

प्रश्नकर्ता : मोशन में ही होती है।

दादाश्री : यदि ट्रेन इमोशनल हो जाए तो?

प्रश्नकर्ता : एक्सिडन्ट हो जाएगा और हज़ारों लोग मर जाएँगे।

दादाश्री : उसी प्रकार यह मनुष्य देह जब तक मोशन यानी वेग में चलती है, तब तक कोई एक्सिडेन्ट नहीं होता है और न कोई हिंसा होती है। लेकिन जब मनुष्य इमोशनल हो जाता है, तो देह के अंदर जो अनंत सूक्ष्म जीव होते हैं, वे मर जाते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ इमोशनल करवाते हैं। इसलिए जो-जो जीव मर जाते हैं, उनकी हिंसा होती है और बाद में उसका फल भुगतना पड़ता है। इसलिए ही ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि भैया तू मोशन में ही रहना, इमोशनल मत होना।

उद्वेग भी इमोशनल अवस्था है। उद्वेग की अवस्था में गाँठें फूटती हैं। एक साथ फूटने से चित्त उसी अवस्था में तन्मयाकार हो जाता है। असंख्य परमाणु उड़ने से भारी आवरण आ जाता

है। जैसे बादल सूरज के प्रकाश को ढँक देते हैं, वैसे उद्वेग की अवस्था में ज्ञानप्रकाश ज़बरदस्त रूप से आवृत हो जाता है। इसलिए खुद की ग़ज़ब की शक्ति भी आवृत हो जाती है। उद्वेग में देह या मन की स्थिरता नहीं रहती। भाला चुभे वैसा लगता है। उद्वेग सबसे बड़ा आवरण है। उसे अगर जीत लिया जाए, तो फिर क्लियर भूमिका आती है। यदि बड़े उद्वेग में से पार हो गए, तो फिर छोटों की तो बिसात ही क्या? लेकिन जहाँ स्वरूप का भान है, वहीं उद्वेग जीता जा सकता है। यदि ज्ञान नहीं हो, तो उद्वेग लाखों जन्मों तक न आए तो अच्छा है, क्योंकि उसमें भयंकर परमाणु खिंचते हैं और वे फिर फल तो देनेवाले ही हैं न?

उद्वेग में अधोगति में जाने के बीज बोये होने के कारण उसकी गाँठें पड़ी होती हैं वे वेग से फूटती हैं। जो आग्रही होते हैं उनके गाँठें भारी पड़ी हुई होती हैं। इसलिए, 'व्यवस्थित' के नियमों के आधार पर फूटती हैं, तब उसे ऐसा होता है कि ऐसा कर डालूँ और वैसा कर डालूँ। उठाकर चाय के कप-प्लेट तक फोड़ डालता है। कोई भी तूफान मच जाता है। जबकि निराग्रही, जिसे बहुत आग्रह नहीं होता, उसमें भारी गाँठें नहीं पड़ी होती हैं।

उद्वेग में मनुष्य पागल हो जाता है। यदि उद्वेग के विचार आने लगें, तो वह कार्य स्थगित कर देना। जो काम उद्वेग से हो, तो वह बिगड़ता ही है। वेग में आने पर ही कार्य अच्छा होता है।

उद्वेग अर्थात् ऊँचे चढ़ाना। यदि उद्वेग सीधा होकर चले, तो ज्ञान में एक मील ऊपर चढ़ा देता है, लेकिन उल्टा चले, तो कितने ही मील पीछे धकेल देता है। उद्वेग ज्ञान जागृति के लिए अच्छा है, लेकिन शर्त इतनी ही है कि सीधा रहे तो।

महात्मा हों, तो आपका मन शांत कर दे। आवेग में से वेग में ले आए। वेग में हो, तो सीधा कर दे। मनुष्य का मन

गति में लाना चाहिए। जो मन को आवेग में से वेग में ले आए, वही महात्मा।

यह देह यदि अविनाशी बनाना हो, तो इस देह पर रखी हुई प्रीति काम की है। लेकिन इसमें तो पीप भर जाता है, इस पर प्रीति कैसी? प्रीति कितनी होनी चाहिए कि इस देह में ज्ञानीपुरुष मिले हैं, तो काम निकाल लें, बस उतनी। इस देह के लिए प्रीति से तो उद्वेग होता है। प्रीति करोगे, तो भी वह तो नष्ट ही होनेवाली है न? भगवान ने भी देह को दगा कहा है। आखिर तो देह राख ही हो जानेवाली है न? यह देह ही राग और द्वेष करवाती है। भगवान क्या कहते हैं कि अनंत जन्म देह के लिए निकाले, अब एक जन्म आत्मा के लिए निकाल।

यह जो उद्वेग होता है, वह यों ही नहीं हो जाता। वह तो हिसाब से होता है और उसका पता चल ही जाता है कि वह क्यों आया है? पहचानवाला हो तभी आता है। यों ही तो कुछ भी नहीं हो जाता।

उद्वेग वह एक्सिडेन्ट है, इन्सिडेन्ट नहीं है। एन इन्सिडेन्ट हेज़ सो मेनी कॉज़ेज़ एन्ड एन एक्सिडेन्ट हेज़ टू मेनी कॉज़ेज़ (किसी घटना के घटने के अनेक कारण होते हैं और किसी दुर्घटना के घटने के अनेकानेक कारण होते हैं)।

इस दुनिया में आफ़रीन होने जैसी एक ही चीज़ है, और वह है ज्ञानी! दूसरी सभी जगहें दु:खदायी चीज़ हैं। निरंतर सुख रहे वहीं पर ही आफ़रीन होने जैसा है।

उद्वेग कहाँ होता है? जहाँ आफ़रीन के स्टेशन होते हैं, वहाँ होता है। उद्वेग का कारण ही वह है। चाय-नाश्ता करने में हर्ज नहीं है, लेकिन गाड़ी आने पर उसे छोड़कर गाड़ी में बैठ जाना। लेकिन यह तो जिस स्टेशन पर आफ़रीन हुआ, वहीं पर बैठा रहता है और गाड़ी निकल जाती है। उद्वेग सब छोड़कर भगाता

है और फिर सीढ़ियाँ चूक गए, तो क्या हो? ऐसा यदि हमारे सत्संग के लिए सब छोड़कर भागे न, तो काम ही हो जाए! एक ओर सत्संग है, जो परम हितकारी है और दूसरी ओर आकर्षणवाले हैं, जो परेशान करते हैं।

निद्रा

नींद जीवमात्र की नेसेसिटी है, लेकिन नींद की मात्रा का कहीं भी ध्यान ही नहीं रखा है। इस काल के मनुष्य भी कैसे हो गए हैं? यह तो चित्र-विचित्र वंशावली पैदा हुई है, वर्ना ऐसी नींद होती होगी कहीं? ये पशु-पक्षियों को मनुष्यों जैसी नींद आती होगी क्या? नींद की मात्रा तो ऐसी होनी चाहिए कि दिन में नींद नहीं आनी चाहिए। ये तो मरे, रात में दस घंटे सोते हैं और ठेठ सूरज उगे तब तक पड़े रहते हैं। अरे! यह संसार ऐसे सोने के लिए है? दूसरी ओर कुछ अभागों को नींद ही नहीं आती है। अमरीका में अस्सी प्रतिशत लोग नींद की गोलियाँ लेकर सोते हैं। मुए, मर जाएँगे। वह तो पोइज़न है। यह तो भयंकर दर्द कहलाता है। चंद्रमा तक पहुँच गए, लेकिन तुम्हारे देश में नींद की गोलियाँ खाना कम नहीं कर सके? खरी आवश्यकता इसकी है। नींद के बिना तुम्हारे देश के लोग परेशान हैं, उनका कुछ करो न? नींद तो एक कुदरती भेंट है, नैचुरल गिफ्ट, उसे भी तुमने खो दिया? तब इन दूसरे वैभवों का क्या करना है? नैचुरल नींद नहीं आती उसका कारण यह है कि जितना उनका आहार है, उतनी मेहनत नहीं है। थकें और नींद आए उतना आहार होना चाहिए। लेबर के अनुसार आहार का प्रमाण हो, तो नॉर्मल नींद आती है। नींद की तो मारामारी ही हो गई है न? सब जगह हो गई है न? फॉरेन में तो नींद ढूँढने पर भी नहीं मिलती है, इसलिए तो मैं उसकी नैचुरल दवाई की व्यवस्था में हूँ। हम सभी को नॉर्मल जीवन जीना सिखाएँगे। नॉर्मल खाना-पीना, नॉर्मल सोना और नॉर्मल मौज मनाना।

नींद कितनी होनी चाहिए? भगवान ने सोने के लिए तीन घंटे की छूट दे रखी है। यह संसार सोने के लिए नहीं है। ज्ञान मिलने के बाद बहुत नींद नहीं आए, तो अच्छा है, इससे ज्ञाता-दृष्टा पद विशेष रहता है। हम पिछले बीस बरसों से डेढ़ घंटे से ज़्यादा सोए नहीं हैं। ज्ञान जागृति में ही रातें गई हैं। नींद कितनी चाहिए? इस देह को उसके कार्य के बाद थकान उतारने जितनी ही और उतना समय पर्याप्त होता है।

गौतम स्वामी ने महावीर भगवान से पूछा कि सोता हुआ अच्छा या जागता अच्छा?' भगवान ने कहा कि 'एक हज़ार में से नौ सौ निन्यानवे मनुष्य इस संसार में सोते हुए ही अच्छे, लेकिन एकाध परोपकारी जीव जागता हुआ भी अच्छा।'

स्वप्न

स्वप्न विज्ञान गहन है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक उसकी खोज में लगे हैं। इसमें कौन सी देह कार्य करती है, अंतःकरण उस समय क्या कार्य करता है आदि खोज रहे हैं। लेकिन स्वप्न की साइन्स यों समझ में आ जाए ऐसा नहीं है।

स्वप्न में स्थूल देह के सारे ही दरवाज़े बंद होते हैं। सूक्ष्म देह-मन, बुद्धि, और चित्त कार्य करते हैं। अहंकार कुछ नहीं कर सकता। यदि अहंकार भी उसमें कार्य कर रहा होता, तो मनुष्य सपने में भी उठकर मारामारी करने लगता, उठकर चलने लगता। स्वप्न में हो रही सारी क्रियाएँ करने लगता, लेकिन अहंकार की वहाँ एक नहीं चलती। जबकि जागृत अवस्था में उसे ऐसा भान होता है कि, 'मैं कर सकता हूँ।' वास्तव में किसी भी अवस्था में वह कुछ कर ही नहीं सकता है। लेकिन जागृत अवस्था में सारी की सारी खिड़कियाँ खुली होती हैं, इसलिए भ्रांति से कर्ताभाव आ जाता है।

सपने गलत नहीं होते। सच्चे हैं, यथार्थ हैं, इफेक्टिव हैं,

और यह साइन्टिफिक रूप से प्रमाणित हो सके, ऐसा है। स्वप्न में होनेवाले सूक्ष्म देह का असर स्थूल देह पर भी होता हैं। इसलिए वह इफेक्टिव है। ऐसा कैसे हैं, यह मैं आपको समझाता हूँ। स्वप्न में भिखारी को महाराजा होने का स्वप्न आए, तो पाव सेर खून बढ़ जाता है और स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए, तो उसका पाव सेर खून कम हो जाता है। जगते हुए उसे जितना दु:ख हो सकता है, उतना ही दु:ख उसे स्वप्न में भी होता है। मरा, रोता भी है। जागे, तब आँखों में पानी होता है। अरे! कईबार तो जागने के बाद भी उसका असर नहीं गया होता है, जिससे देर तक रोता रहता है। छोटे बच्चे भी स्वप्न के असर से डरकर जाग जाते हैं, और कितनी ही देर तक रोते रहते हैं। भय के स्वप्न में देह पर असर होता है, उसके श्वासोच्छ्वास बढ़ जाते हैं, दिल की धड़कन भी बढ़ जाती है। ब्लड सर्क्युलेशन वगैरह सभी बढ़ जाता है। ये सभी असर साइन्टिफिकली प्रमाणित किए जा सकें ऐसा है। यदि स्वप्न इतना इफेक्टिव है, तो उसे गलत कैसे कह सकते हैं?

एक व्यक्ति मुझे मिला ही नहीं था, फिर भी उसने स्वप्न में मेरे एक्ज़ेक्ट दर्शन किए थे। इसका हिसाब कैसे लगाएँ? कैसा कॉम्प्लेक्स है यह?

कोई भी चीज़ जो देखी न हो वह स्वप्न में आ ही नहीं सकती। किसी न किसी जन्म में देखा हो वही दिखता है। स्वप्न तो अनेक जन्मों की संकलना है। वह कोई नया नहीं है। कुछ कहते हैं कि दिन में जो विचार आते हैं, वे स्वप्न में आते हैं। अरे! दिन में तो तरह-तरह के असंख्य विचार आते हैं, तो क्या वे सभी स्वप्न में आते होंगे? और क्या ऐसा नहीं होता कि कभी विचार तक आया न हो तब भी वह स्वप्न में आ गया हो?

स्वप्न में कारण देह और सूक्ष्म देह - दो ही देह कार्य करती हैं। स्थूल देह का उसमें कार्य नहीं होता है।

एक व्यक्ति को स्वप्न आया कि वह बीमार पड़ गया, डॉक्टर आए हैं, उन्होंने कहा कि नाड़ी चल नहीं रही है, मर गया है। मतलब खुद मर गया, वैसा दिखाई देता है। शव को जलता हुआ भी देखता है और घबराकर जाग जाता है (शव को जला दिया और मैं बच गया यह समझकर)।

स्वप्न में तो कुँवारे का विवाह होता है, अपने बच्चों को भी देखता है और फिर उनकी भी शादी करवाता है।

प्रश्नकर्ता : स्वप्न आने का कारण क्या है?

दादाश्री : संसार, जो दिखाई देता है, वह जागते कर्मों का फल है। सपने दिखाई देते हैं, वे भी पुण्य-पाप के उदय के अनुसार होते हैं, लेकिन सपने में उनका असर हलका होता है।

प्रश्नकर्ता : क्या स्वप्न ग्रंथि है?

दादाश्री : स्वप्न जो हैं, वे सब ग्रंथियाँ ही हैं। स्वप्न दो देह का कर्म है। तीन देह से बंधा हुआ कर्म नहीं है वह। इसलिए दो देह से ही उसका वेदन किया जाता है।

प्रश्नकर्ता : स्वप्न में कर्म बंधते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, स्वप्न केवल कम्प्लीट इफेक्ट है। उसमें अहंकार नहीं होता, इसलिए कर्म नहीं बंधते हैं।

स्वप्न में कारण-देह और सूक्ष्म-देह का कार्य होता है। उसे देखनेवाला प्रतिष्ठित आत्मा होता है, और प्रतिष्ठित आत्मा को दरअसल देखनेवाला और जाननेवाला खुद 'शुद्धात्मा' है। जिसे जितना आवरण होता है, उसे उतना कम दिखाई देता है। आवरण जितना पतला होता है, उतना अधिक स्पष्ट दिखता है। कई कहते हैं कि हमें स्वप्न आते ही नहीं हैं। उन्हें भी स्वप्न आते हैं, लेकिन आवरण गाढ़ होने से याद नहीं रहते हैं।

एक आदमी मुझसे कहता है कि दादाजी, सपने में, मैं दो घंटे रोया। आप आए, और दर्शन करने पर सब शांत हो गया! हलका फूल जैसा हो गया! मैंने कहा, 'क्या कपड़े भीग गए थे?' आमने-सामने मिलने के बजाय ऐसे सपने में दादाजी आएँ, और उनसे माँगे, तो अपार मिलता है। सपने में आकर भी यह दादा सबकुछ कर सकें ऐसे हैं, लेकिन माँगना आना चाहिए। हमारे कुछ महात्माओं को तो दादाजी रोज़ सपने में आते हैं। शास्त्र क्या कहते हैं?

'जेनुं स्वप्ने पण दर्शन थाय रे,
तेनुं मन न ज बीजे भामे रे।'
जिनके सपने में भी दर्शन हो जाएँ रे,
उसका मन कहीं और नहीं जाए रे।

यदि ज्ञानीपुरुष के स्वप्न में भी एकबार दर्शन हो जाएँ, तो तेरे मन की दूसरी भ्रमणाएँ छूट जाएँगी।

ज्ञानी क्या कहते हैं कि क्या दो देह का स्वप्न तुम्हें सच लगता है? नहीं। वैसे ही तीन देह का स्वप्न भी ज्ञानियों को सच नहीं लगता। वह तो भ्रांतिजन्य ज्ञान से लोग इस तीन देह के स्वप्न (संसार) को सच मान बैठे हैं।

इन्द्रिय-प्रत्यक्ष यानी इन्द्रियों से देखा-जाना जा सके, वह। जो सपने नींद में दिखाई देते हैं, वे दो देह के हैं। जबकि ज्ञानीपुरुष को तो जागते हुए भी संसार तीन देह का स्वप्न ही लगता है।

स्वप्न में भिखारी राजा बन जाए, तो उसे कितनी मस्ती रहेगी? लेकिन जागते ही, जैसे था वैसा का वैसा। उसी प्रकार, यह संसार भी एक सपना ही है। संसार स्वप्नवत् है। यहाँ से गए कि फिर जो था, वही का वही। सब यहाँ का यहाँ और वहाँ का वहाँ।

यह संसार खुली आँख का स्वप्न है और वह बंद आँख

का स्वप्न है। दोनों ही इफेक्टिव हैं। जागते में इगोइज़म है, उतना ही अंतर है।

रात में कितने भी सपने आएँ, लेकिन जागने पर मनुष्य को कोई असर नहीं रहता। क्योंकि वहाँ स्वप्न में दृष्टा के रूप में रहता है। इगोइज़म कार्य नहीं करता। जबकि ज्ञानीपुरुष जागते हुए भी, समय-समय पर आती हुई अवस्थाओं के ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं। उन्हें नाम मात्र के लिए भी इगोइज़्म नहीं होता। इसलिए जागते हुए भी उन्हें सपना ही लगता है। ज्ञानीपुरुष तो पूर्णतया ज्ञाता-दृष्टा ही होते हैं।

भय

सारे ब्रह्मांड का प्रत्येक जीव भय से त्रस्त होता है। भय प्रत्येक जीव मात्र को होता है, लेकिन उन्हें वह नोर्मेलिटी में होता है। उन्हें तो जब भय के संयोग आ मिलते हैं, तभी भय लगता है। जबकि मनुष्यों में तो विपरीत भय घर कर गया है। विपरीत भय यानी एक ही भय आनेवाला हो, लेकिन उसे सौ तरह के दिखते हैं, और जो भय नहीं आनेवाला, वह दिखता है। उसे भी विपरीत भय कहते हैं। एक ही आदमी भोजन पर आनेवाला हो, और ऐसा लगता रहे कि सौ आनेवाले हैं, वह विपरीत भय।

भय कब लगता है? द्वेषपूर्वक त्याग में, तिरस्कार में निरंतर भय रहता है। पुलिसवालों का भय क्यों लगता है? वह पसंद नहीं इसलिए, उसका तिरस्कार है इसलिए। कोर्ट का भय क्यों लगता है? क्या कोर्ट किसी को खा गया? नहीं। वह तो उसके प्रति द्वेष है इसलिए। भय वह छिपा तिरस्कार माना जाता है। साँप के भीतर भगवान विराजमान हैं, यह दिखाई नहीं देता, इसीलिए भय लगा न? साँप सरकमस्टेन्शियल एविडन्स से आता है। यदि सहज ही सामने मिले और मनुष्य में भय पैदा नहीं हो, तब

साँप एक ओर होकर चला जाता है। हिसाब न हो, तो कुछ भी नहीं करता।

समसरण मार्ग-संसार मार्ग पूरा भ्रांतिवाला है, भयावह जैसा है। भयावह यानी क्या? रात सोने से पहले भूत का भय बैठ गया हो या साँप का भय बैठ गया हो, तो सारी रात उसका भय रहता है, सो भी नहीं पाता। और सवेरे, यानी प्रकाश में जब वह भय नष्ट होता है, तो उसका डर जाता है। वैसा ही इस संसार में भी है।

भूत की भड़क में फर्क इतना ही रहता है कि उसे केवल भड़क रहा करती है कि मेरा क्या होगा? भय नहीं लगता, जबकि संसार में भय और भड़क दोनों रहते हैं। भय रहता है, इसलिए अज्ञानता से उसके प्रति राग-द्वेष किया करता है, और उससे भड़क रहती है। भयवाले संयोगों को मारने के, प्रतिकार करने के प्रयत्नों में रहता है।

आत्मा की अज्ञानता से भय रहता है और संगी चेतना से भड़क रहती है। भड़क-फड़फड़ाहट वह संगी चेतना का गुण है। संगी चेतना का अर्थ आरोपित चेतना। विधि कर रहा हो या ध्यान कर रहा हो, और कोई बड़ा धमाका हो, तब शरीर ऑटोमेटिक हिल उठता है, वह संगी चेतना कहलाती है।

जहाँ आपकी सत्ता नहीं है, वहाँ आप हाथ डालेंगे तो क्या होगा? कलेक्टर की सत्ता में क्लर्क हस्ताक्षर कर दे, तो? सारा दिन भय रहता है, क्योंकि परसत्ता में है इसलिए। संसार के मनुष्य भी निरंतर परसत्ता में ही रहते हैं। 'मैं चंदूलाल हूँ' वह परसत्ता। खुद की सत्ता तो देखी नहीं है, जानी नहीं है और परसत्ता में ही मुकाम किया है, इसलिए निरंतर भय, भय और भय ही लगा रहता है।

सबकुछ सहज में मिले ऐसा है, लेकिन भरोसा होना चाहिए।

लोगों को ऐसा होता रहता है कि यह नहीं मिलेगा, तो? ऐसा नहीं होगा, तो? बस, यही विपरीत भय है।

बुद्धि किसलिए है? तब कहे, सभी को ठंडक पहुँचाने के लिए, न कि डराने के लिए। जो बुद्धि भय दिखलाए, वह विपरीत बुद्धि। उसे तो उठते ही दबा देनी चाहिए।

अरे! तुझे यदि भय ही रखना है, तो मरने का भय रख न! प्रतिक्षण यह संसार मरण के भयवाला है। उसका भय तुझे क्यों नहीं लगता? उसका भय लगे, तो मोक्ष का उपाय खोजने की सोचेगा। लेकिन वहाँ तो जड़ के समान हो गए हैं।

हिताहित का भान

हिताहित का तो प्रत्येक को अपना स्वतंत्र भान होना ही चाहिए कि क्या करने से मैं सुखी और क्या करने से मैं दुःखी हो सकता हूँ। हिताहित का स्वतंत्र भान नहीं है, इसलिए नकल करने जाता है, लेकिन नकल किसकी करनी चाहिए? अक्लवालों की। अक्लवाला तो एक भी दिखाई नहीं देता, फिर किसकी नकल करेगा? जब तक 'मैं चंदूलाल हूँ' इस नकली भान में तू है, तब तक तू नकली है, असली नहीं हैं। असल की नकल की जा सकती है। नकली की नकल करने से क्या होनेवाला हैं? 'वास्तविक' समझ में आए, तब बात बने।

ज्ञान ही एक असली होता हैं, बाकी सभी नकली हैं। ज़िंदगी में कभी किसी की नकल करनी ही नहीं चाहिए। लेकिन आज तो सोते हैं, उसमें भी नकल, चलने में भी नकल, अरे! बैठने तक की भी नकल ही करते हैं न?

सत्युग में, लोगों को व्यवहार के हिताहित का भान था। उस समय अनाचार नहीं थे। लोग सदाचारी थे। आज तो लगभग सभी जगह अनाचार है। इसलिए हिताहित का भान कैसे उत्पन्न

हो? यह तो देख-देखकर विपरीत सीखते हैं। 'अपना' तो निकालकर कभी खर्च ही नहीं किया है।

जिसका 'खुद' के हिताहित का भान बढ़ता जाएगा, उसकी वाणी अंश वीतरागी कहलाती है। वादी-प्रतिवादी दोनों कबूल करते हैं।

प्रतिक्षण 'स्वयं' के हिताहित का भान रहना चाहिए। 'स्वयं' कौन है उसका और व्यवहार के हिताहित, दोनों का ही भान रखना है। 'स्वयं' अर्थात् आत्मा तो कभी भी दगा देनेवाला है ही नहीं। व्यवहार अकेला ही दग़ाबाज है, और दग़ा है, इसलिए वहाँ पर बहुत सावधान रहिए और हिताहित का भान अवश्य रखिए। कोई खटमल मारने की दवाई नहीं पीता, ऐसी दवाई पीने का शौक तो होता होगा क्या?

लाइफ-एडजस्टमेन्ट्स

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ सिद्धांत तो होने ही चाहिए। फिर भी, ऐसा होते हुए भी संयोगानुसार बरतना चाहिए। संयोगों के साथ जो एडजस्ट होता है, उसी का नाम मनुष्य। 'एडजस्टमेन्ट' यदि प्रत्येक संयोगों में करना आया तो ठेठ मोक्ष तक पहुँच सकते हैं, ऐसा ग़ज़ब का हथियार है। एडजस्टमेन्ट का मतलब यह कि आपके साथ जो जो डिस्एडजस्ट होने आए, उसके साथ आप एडजस्ट हो जाइए। दैनिक जीवन में यदि सास और बहू के बीच या देवरानी और जेठानी के बीच डिस्एडजस्टमेन्ट होता हो, तो जिसे इस संसार के चक्कर से छूटना है उसे एडजस्ट हो ही जाना चाहिए। पति-पत्नी में भी यदि एक तोड़-तोड़ करता हो, तो दूसरे को जोड़ लेना चाहिए, तभी संबंध निभेगा और शांति रहेगी। जिसे एडजस्ट करना नहीं आता, उसे लोग मेन्टल कहते हैं। रिलेटिव सत्य में आग्रह या जिद् की ज़रा भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य तो किसे कहते हैं? एवरीव्हेर एडजस्टेबल। चोर के साथ भी एडजस्ट हो जाना चाहिए। आज के मनुष्यों की दशा

कोल्हू के बैल जैसी हो गई है, लेकिन जाएँ कहाँ? आ फँसे हैं, इसलिए कहाँ जाएँ?

एक बार हम नहाने गए, वहाँ मग्गा रखना ही रह गया था। हाथ डाला तो पानी बहुत गरम था, नल खोला तो टंकी खाली थी, अब क्या करते? यदि एडजस्ट नहीं कर पाए, तो हम ज्ञानी काहे के? हमने तो आहिस्ता-आहिस्ता हाथ से पानी लगा-लगाकर ठंडा करते हुए, नहा लिया। सब महात्मा कहने लगे, 'आज दादाजी ने नहाने में बड़ी देर लगाई?' हमने कहा, 'क्या करते? पानी ठंडा हो जाए तब नहाते न? हम किसी से 'यह लाइए और वह लाइए,' नहीं कहते, एडजस्ट हो जाते हैं।' एडजस्ट होना ही धर्म है। इस दुनिया में तो प्लस-माइनस करके एडजस्टमेन्ट लेना होता है। माइनस हो वहाँ प्लस, और प्लस हो वहाँ माइनस कर लेना है। यदि हमारे सयानेपन को भी कोई पागलपन कहे, तो हम कहेंगे, 'हाँ ठीक है।' इस प्रकार तुरंत ही माइनस कर देते हैं।

अक्लमंद कौन कहलाता है? किसी को जो दुःख नहीं पहुँचाए वह, और यदि कोई उसे दुःख पहुँचाए, तो उसे जमा कर ले। सभी को सारा दिन ऑब्लाइज करता रहे। सुबह उठते ही उसका लक्ष्य यही होता है कि मैं कैसे लोगों को हेल्पफुल हो सकूँ, ऐसा जिसे लगातार रहा करे, वही मानव कहलाता है। उसे फिर आगे चलकर मोक्ष की राह भी मिल जाती है।

टकराव

'किसी से टकराव में मत आना और टकराव टालना'। हमारे इस वाक्य का आराधन करेंगे, तो ठेठ मोक्ष में पहुँचेंगे। आपकी भक्ति और हमारा वचनबल सारा काम कर देगा। आपकी तैयारी चाहिए।

हमारे एक ही वाक्य का यदि कोई आराधन करेगा, तो ठेठ मोक्ष पाएगा। अरे, हमारा एक शब्द जैसा है वैसा, निगल

जाए, तो भी मोक्ष हाथ में आ जाए ऐसा है, लेकिन उसे जैसा है वैसा ही निगल लेना। उसे चबाने या मसलने मत लग जाना। तेरी बुद्धि काम नहीं लगेगी, और वह उल्टा घोटाला कर डालेगी।

हमारे एक शब्द का, एक दिन पालन करे, तो ग़ज़ब की शक्ति उत्पन्न होगी! प्रभाव उत्पन्न होता ही जाएगा। अंदर इतनी सारी शक्तियाँ हैं कि चाहे जैसा टकराव हो जाए, तो भी उसे टाला जा सकता है। जो जान–बूझकर खड्डे में पड़ना चाहता है, उसके साथ हम उलझें, तो वह हमें भी खाई में गिराएगा। हमें तो मोक्ष में जाना है या ऐसों के साथ झगड़ने यहीं बैठे रहना है? वे तो कभी मोक्ष में नहीं जाएँगे, लेकिन तुझे भी अपने साथ बिठाकर रखेंगे। अरे! ऐसा कैसे पुसाएगा? यदि तुझे मोक्ष में ही जाना है, तो ऐसों के साथ बहुत अक्लमंदी दिखाने की ज़रूरत नहीं है कि भैया आपको लग गया क्या? हर ओर से, चारों ओर से संभालना, वर्ना आप इस जंजाल से लाख छूटना चाहें, लेकिन संसार छूटने नहीं देगा। टकराव तो निरंतर होता ही रहेगा। उसमें से हमें ज़रा सा भी घर्षण उत्पन्न किए बगैर स्मूथली बाहर निकल जाना है। अरे, हम तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि तेरी धोती झाड़ी में फँस जाए और तेरी मोक्ष की गाड़ी चलने को हो, तो भाई, धोती छुड़वाने के लिए बैठा मत रहना, धोती–वोती छोड़कर दौड़ जाना।'एक क्षण के लिए भी, किसी भी अवस्था से बंधकर रहने जैसा नहीं है। तो फिर बाकी सब की तो बात ही क्या करनी? जहाँ तू बंधा, उतना तू स्वरूप को भूला।

तू यदि भूले से भी किसी के टकराव में आ गया, तो उसका *निकाल* कर देना। सहज रूप से उस टकराव में से घर्षण की चिंगारी उड़ाए बगैर निकल जाना।

इकॉनोमी

इकॉनोमी (मितव्ययता) किसे कहते हैं? टाइट (हाथ तंग

होना) हो तब टाइट और मंदी हो तब मंद। कभी भी उधार लेकर कार्य मत करना। उधार लेकर व्यापार कर सकते हैं, लेकिन मौज-मज़े नहीं कर सकते। कर्ज़ लेकर कब खाना चाहिए? जब मरने की नौबत आए, तब। लेकिन उधार लेकर घी नहीं पी सकते।

प्रश्नकर्ता : लोभी और कंजूस में क्या अंतर है?

दादाश्री : कंजूस केवल लक्ष्मी का ही होता है। लोभी तो हर तरफ से लोभ में होता है। मान का भी लोभ करता है और लक्ष्मी का भी लोभ करता है। यह लोभी को तो सारी दिशाओं का लोभ होता है, इसलिए सबकुछ खींचकर ले जाता है। चींटियाँ तो यदि किसी कीट-पतँगे का पँख हो, तो भी मिलकर खींच ले जाती हैं। लोभी का ध्येय क्या? जमा करना। पंद्रह साल चले, उतना चींटी जमा करती हैं। वह जमा करने में ही तन्मय रहती है। उसमें कोई बीच में आए, तो उसे काटकर खुद मर जाती है। चींटी सारी ज़िंदगी बिल में जमा करती है और चूहेभाई, मुफ्त का खानेवाला, एक ही मिनट में सब खा जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, कंजूसी और किफ़ायत में कोई अंतर है क्या?

दादाश्री : हाँ, बड़ा अंतर है। महीने के हज़ार रुपये कमाता हो, तो आठ सौ रुपये का खर्चा रखना और पाँच सौ आते हों, तो चार सौ का खर्च रखना, उसे कहते हैं किफ़ायती। जबकि कंजूस चार सौ के चार सौ ही खर्च करता है, फिर चाहे हज़ार आएँ या दो हज़ार आएँ। वह टैक्सी में नहीं जाता। मितव्ययता तो इकोनोमिक्स (अर्थशास्त्र) है। वह तो भविष्य की मुश्किलों को ध्यान में रखता है। कंजूस मनुष्य को देखकर दूसरों को चिढ़ होती है कि कंजूस है। मितव्ययी मनुष्य को देखकर चिढ़ नहीं होती। यद्यपि मितव्ययी और कंजूस दोनों रिलेटिव है। उड़ाऊ मनुष्य को मितव्ययी अच्छा नहीं लगता। यह सारा बवाल, संसार में भ्रांति की भाषा में है कि फ़िज़ूल खर्च नहीं होना चाहिए। लेकिन मितव्ययी

मनुष्य को चाहे जितना समझाएँ, फिर भी वह उसे छोड़ता नहीं है। और फ़िजूलखर्ची मनुष्य किफायत करने जाए, तो भी फ़िजूलखर्ची ही रहता है। फ़िजूलखर्ची या कंजूसी, यह सब सहज स्वभाव से है। चाहे जो करें, लेकिन उसमें बदलाव नहीं आता। सारे प्राकृत गुण सब सहज भाव से है। अंत में तो सभी में नोर्मेलिटी चाहिए।

हमारी जेब में ये भाई पैसे रखते हैं, वे तो टैक्सी या गाड़ी में ही खर्च होते हैं। खर्च नहीं करना, ऐसा भी नहीं है और खर्च करना है, ऐसा भी नहीं है। ऐसा कुछ भी तय नहीं है। धन उड़ाने के लिए नहीं होता। जैसे संयोग आते हैं, उस अनुसार खर्च होता है।

ये दादाजी कंजूस हैं, मितव्ययी हैं और फ़िजूलखर्च भी हैं। पक्के फ़िजूलखर्च, फिर भी कम्प्लीट एडजस्टेबल हैं। दूसरों के लिए फ़िजूलखर्च और खुद के लिए मितव्ययी और उपदेश देने में कंजूस। इसलिए सामनेवाले को हमारा निपुण संचालन दिखाई देता है। हमारी इकॉनोमी एडजस्टेबल होती है, टॉपमोस्ट होती है। वैसे तो पानी का उपयोग करते हैं, वह भी, किफ़ायत से, एडजस्टमेन्ट लेकर उपयोग करते हैं। हमारे प्राकृत गुण सहज भाव से रहे हुए होते हैं।

विषय

विषय को लेकर संसार में भारी नासमझी चल रही है। शास्त्र कहते हैं कि विषय वह विष है। कितने ही लोगों का भी कहना है कि विषय विष है, और वह मोक्ष में नहीं जाने देता। हम अकेले ही कहते हैं कि 'विषय विष नहीं है, लेकिन विषय में निडरता विष है। इसलिए विषय से डरो।' इन सारे विषयों में निडरता रखना ही विष है। निडर कब रहना चाहिए कि दो-तीन साँप आ रहे हों, उस समय आपके पैर नीचे हों,

और यदि आपको डर नहीं लगता हो, तो पैर नीचे रखना और यदि डर लगता हो, तो पैर ऊपर कर लेना। लेकिन यदि आपको डर नहीं लगता हो और पैर ऊपर ही नहीं लेते हो, तो वह पूर्णज्ञानी, केवलज्ञानी की निशानी है। लेकिन जब तक पूर्ण नहीं हुए, तब तक आप खुद ही मारे डर के पैर ऊपर कर लेते हैं। इसलिए हम आपको विषयों में निडर रहने के लिए एक थर्मामीटर देते हैं। 'यदि साँप के सामने तू निडर रह सकता हो, तो विषय में निडर रहना और वहाँ यदि डर लगता हो, पैर ऊपर कर लेता हो, तो विषयों से भी डरते रहना।' विषयों में निडर हो ही नहीं सकते। भगवान महावीर भी विषयों से डरा करते थे और हम भी डरते हैं। विषयों में निडरता अर्थात् असावधानी।

संसार कहता है कि विषय मोक्ष में जाने नहीं देते। अरे! ऐसा नहीं है, 'विषय' तो अंग्रेजी में 'सब्जेक्ट' कहलाता है। इस संसार में अनंत सब्जेक्ट्स हैं। यदि विषय ही मोक्ष में जाने में बाधक होते, तो कोई मोक्ष में जा ही नहीं सका होता। लेकिन भगवान महावीर मोक्ष में गए, और उन्हें विषय बाधक नहीं हुए, तो आपको ही क्यों बाधक होते हैं? विषय बाधा नहीं करते, आपका आड़ापन ही आपको मोक्ष में जाने में बाधा करता है। अनंत विषयों में भगवान निर्विषयी रहकर मोक्ष में गए!

वास्तव में आत्मा खुद निर्विषयी है। मन-वचन-काया विषयी हैं। वे जो अलग हो जाएँ, तो मन-वचन-काया के अनंत विषयों में खुद 'शुद्धात्मा' निर्विषयी रहकर मोक्ष में जा सकता है।

आत्मा खुद निर्विषयी, तो वह विषयों को कैसे भोगेगा? यदि वह विषयों को भोगे, तो कभी भी मोक्ष में नहीं जा सकेगा। क्योंकि तब वह उसका अन्वय (हमेशा साथ रहनेवाला) गुण हो गया कहलाएगा। कम्पाउन्ड स्वरूप हो गया कहलाएगा। वह तो सिद्धांत के विरुद्ध कहलाएगा, विरोधाभास कहलाएगा। आत्मा कभी भी कोई विषय भोग नहीं सकता। मात्र भोगने की भ्रांति से अहंकार

करता है कि मैंने भोगा, बस, इसी से ही अटका हुआ है। यदि यह भ्रांति टूटे, तो खुद अनंत विषयों में भी निर्विषयी पद में रह सकता है।

विषय किसे कहते हैं? जिस-जिस बारे में मन प्रफुल्लित होता है वह विषय कहलाता है। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार जिस-जिस में तन्मयाकार होते हैं, वे विषय हैं। जहाँ एकाकार होते हैं, वे विषय हैं। विषयों के विचार आना स्वाभाविक है। ऐसा होना परमाणु का *गलन* है। पहले किए गए *पूरण* का ही *गलन* है। लेकिन उसमें तू तन्मयाकार हुआ, उसमें तुझे अच्छा लगा, वह विषय है, जो नुकसानदेह है। विषय किसे कहते हैं? बिगिनिंग में (शुरू में) भी अच्छा लगे और एन्ड में भी अच्छा लगे, उसका नाम विषय। विषय कोई चीज़ नहीं है, लेकिन वह तो परमाणु का फोर्स है। जिन-जिन परमाणुओं को तूने अत्यंत भाव से खींचे हैं, उनका *गलन* होते समय तू फिर से उतना ही तन्मयाकार होता है, वही विषय है। फिर चाहे कोई भी सब्जेक्ट हो, कोई इतिहास का विषय लेकर, उसका विषयी बनता है, कोई भूगोल का विषयी होता है, उसमें ही लीन रहता है। वे सभी विषय हैं। वैसे ही जिसने तप का विषय लिया, त्याग का विषय लिया और उसमें ही तन्मयाकार रहे, वह भी विषय है। अरे! विषयों को लेकर विषयी बनकर मोक्ष कैसे होगा? निर्विषयी बन, तब मोक्ष होगा।

जो बार-बार याद आता रहे, वह विषय है। पकौड़े या दहीबड़े खाने में हर्ज नहीं है, लेकिन यदि आपने उसे बार-बार याद किया कि किसी दिन ऐसे फिर बनाना, ऐसा कहा तो वह विषय है। सिनेमा देखा और उसमें से कुछ भी याद नहीं आया, तो वह विषय नहीं कहलाता। फिर से याद नहीं आए मतलब उसका *निकाल* हो गया और फिर से याद आया, उसका मतलब तन्मय हो गया, इसलिए वह विषय है। विषय के कितने प्रकार? अनंत प्रकार। गुलाब का फूल पसंद हो, तब बगीचे में देखा कि दौड़भाग करता

है, वह विषय। जिसे जो याद आए वह विषय। हीरे याद आते रहें, तो वह विषय और लाने के बाद याद आने बंद हो जाएँ, तो समभाव से *निकाल* हो जाए। लेकिन यदि फिर से कभी भी याद आए, तो *निकाल* नहीं हुआ, इसलिए विषय ही कहलाएगा।

इच्छा होना स्वभाविक है, लेकिन इच्छा करते रहना अवरोधक है, नुकसानदायक है।

स्त्रियाँ साड़ी देखती हैं और उसे बार-बार याद करती रहती हैं, वह उनका विषय कहलाता है। जहाँ विषय संबंध, वहाँ तकरार होती है।

मोक्ष में जाने का हो तब सामने से ढेरों विषय आकर पड़ते हैं। यह 'दादा भगवान' का मोक्षमार्ग अनंत विषयों में निर्विषयी पद सहित का मोक्षमार्ग है।

विषयों की आराधना करने जैसा नहीं है, और उनसे डरने जैसा भी नहीं है, उनसे चिढ़ने जैसा भी नहीं है। हाँ, साँप के सामने तू कैसे सावधान होकर चलता है, वैसे विषयों से सावधान रहना, निडर मत होना।

जब तक आत्मज्ञान प्रकट नहीं होता, तब तक विषय किसी को भी छोड़ते नहीं हैं, क्योंकि तब तक कर्ताभाव, अहंकार जाता ही नहीं।

वीतरागता जिसका सब्जेक्ट होता है, वह वीतराग को समझ सकता है, लेकिन कषाय जिसका सब्जेक्ट है, वह वीतराग को कैसे समझ सकता है? ज्ञान नहीं हो और यदि एक जन्म के लिए विषय का व्हीलकॉक बंद कर दे, फिर भी दूसरे जन्म में खुल जाता है। बिना ज्ञान के विषय छूटता ही नहीं है।

विषय की आराधना का फल विषय ही मिलता है। ग्रहण की आराधना का फल त्याग मिलता है और त्याग की आराधना

का फल ग्रहण मिलता है। त्याग का प्रतिपक्षी ग्रहण है। जहाँ प्रतिपक्षी हैं, वे सभी विषय हैं।

भगवान कहते हैं कि जो कंट्रोल में नहीं हैं वे विषय हैं। 'मैं विषय भोगता हूँ' ऐसा अहंकार करता है। यदि तू विषय भोग रहा होता, तो तुझे संतोष होना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। 'विषय' को भोगता नहीं है। वह तो परमाणु का हिसाब है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय में निपुण है, लेकिन दूसरे विषय में निपुण नहीं है। नाक को जलेबी चखाएँ, तो मीठी लगेगी क्या? परमाणुओं का जो हिसाब हो, वह चुकता हो रहा हो, वह विषय नहीं है, लेकिन उसमें तन्मयता, वही विषय है। उसमें इन्द्रियों का भी कोई रोल (भूमिका) ही नहीं है। वे तो मात्र कन्वे (सूचित) करती हैं। इसीलिए हम कहते हैं कि इन्द्रियों के विषय जीतनेवाला जितेन्द्रिय (जिन) नहीं है लेकिन जिसकी दृष्टि दृष्टा में पड़ गई, जिसका ज्ञान ज्ञाता में आ गया, वह जितेन्द्रिय (जिन) है। भगवान महावीर का भी यही कहना था।

विषय की शुरूआत क्या है? मोहभाव से स्त्री को देखना, मूर्छित भाव से देखना, वह। लेकिन क्या प्रत्येक स्त्री को मूर्छितभाव से देखा जाता है? एक को देखकर विचार आते हैं, लेकिन दूसरी को देखें, तो विचार नहीं आते, मतलब देअर इज़ समथिंग रोंग (कहीं कुछ गलत है)। यदि स्त्री को देखते ही ज़हर चढ़ता होता तो प्रत्येक स्त्री को देखते ही ज़हर चढ़ना चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है। वह तो कुछ ही परमाणुओं से परमाणु का आकर्षण होता है। जब तक विषय का एक भी परमाणु शेष होगा, तब तक स्याद्वाद वाणी नहीं निकलेगी।

जानवरों को जिन विषयों की इच्छा ही नहीं है उसकी इच्छा मनुष्य निरंतर करते हैं। विषय यदि विषय ही होते, तो एक जगह दो स्त्रियाँ बैठी हैं, एक माँ है और एक पत्नी है, वहाँ माँ पर विषय भाव क्यों नहीं होता? क्योंकि विषय, विषय है ही नहीं।

भ्रांति ही विषय है। इन विषयों को अगर बंद करना चाहो, तो उसका उपाय बतलाऊँ। ये विषय एक ऑटोमेटिक कैमरा है, उसमें फिल्म उतरने मत देना। 'शुद्धात्मा' की ही फोटो उतार लेना। बाकी विषय तो चीज़ ही नहीं है। इसमें तो अच्छे-अच्छे ब्रह्मचारियों का भी दिमाग़ चकरा जाता है कि यह है क्या? जो जिसमें ओतप्रोत रहे, वही विषय। मतलब, आगे से भी अंधा और पीछे से भी अंधा, और कुछ दिखाई ही नहीं देता, वह मोहांध कहलाता है।

विषय की याचना करना जिसे मरने जैसा लगे, वह इस संसार को जीत सकता है। ऐसा जीवन सबसे उत्तम, सम्मानपूर्ण है।

रोगी देह अधिक विषयी होता है। निरोगी को स्थिरता अधिक होती है।

विषयों से रोग नहीं होते, लेकिन विषयों में लोभ होता है, तब ही रोग प्रवेश करते हैं। लोग विषयों को चकमा देते हैं। अरे! विषयों को क्यों चकमा देते हो? विषय में जो लोभ है, उसे चकमा दो न? विषय बाधक नहीं है, लेकिन विषयों में लोभ बाधक होता है। रसोई में कहेगा कि मुझे मिर्च के बिना नहीं चलेगा, इस चीज़ के बिना नहीं चलेगा, इतना तो चाहिए ही, यही लोभ है। इसीलिए विषय है और इसी कारण से रोग हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ ही रोग करनेवाले हैं।

दुःख के कारण ही लोग विषय भोगते हैं, लेकिन यदि विचार करें, तो विषय निकल सके, ऐसा है। यदि इस देह पर से चमड़ी निकाल दी जाए, तो राग होगा क्या? चमड़ी की यह चद्दर ही ढँकी हुई है न! और पेट तो मलपेटी है, चीरने पर मल ही निकलेगा। हाथ पर से चमड़ी निकल गई हो और पीप निकल रहा हो, तो छूना अच्छा लगेगा क्या? नहीं छूएगा। यह सब अविचार के कारण ही है। मोह तो पागलपन है। अविचार दशा के कारण मोह है। मोह तो निरी जलन ही है।

आप मीठा खाकर ऊपर चाय पीएँ, तो फीकी लगेगी न? चाय पर अन्याय नहीं करते? चाय तो मीठी है, लेकिन फीकी क्यों लगती है? क्योंकि उसके पहले मीठा चखा है। वैसे ही हम भी अनुपम मिठासवाला ज्ञान देते हैं। उसके बाद आप को संसार के सारे विषयी सुख मीठे होने पर भी फीके लगेंगे। लोगों का अनुभव है कि सर्दी का बुखार, मलेरिया वगैरह हो, तो खीर कड़वी लगती है। क्यों? क्योंकि उसका मुँह कड़वा है, इसलिए कड़वा लगता है। उसमें खीर का क्या दोष? वैसे ही हमारे द्वारा दिए हुए 'अक्रम ज्ञान' से ज्यों-ज्यों बुखार कम होगा, तब सारे संसार के विषय नीरस होते अनुभव में आएँगे। विषयों का नीरस होते जाना थर्मामीटर है। खुद के बुखार का तो पता चलता है न?

'क्रमिक मार्ग' में भी विषय नीरस लगते जाते हैं, लेकिन वे अहंकार के कारण लेकर नीरस लगते हैं, लेकिन वे फिर सामने आएँगे। लेकिन हमारे 'अक्रम मार्ग' में ऐसा झमेला ही नहीं न? हम तो विषयों के सागर में निर्विषयी हैं। निर्विषयी अर्थात् जलकमलवत्। हमने तो इस देह का स्वामित्व छोड़ दिया है, इसलिए हमें तो न कुछ छूता है न ही कुछ बाधक होता है। हममें तो स्वामित्वपने का अभाव है। हमारे महात्माओं का मालिकीपन भी हमने ले लिया है, और इसलिए वे जलकमलवत् रह पाते हैं। कल्पना से चित्रित करता है पुद्‌गल, लेकिन उसमें आप 'खुद' तन्मयाकार हुए, तो आप हस्ताक्षर कर देते हैं। यदि तन्मयाकार नहीं हो और मात्र देखे और जाने, तो वह मुक्त ही हैं।

मुझे किसी ने पूछा कि 'यह ऐसा कोट क्यों पहना है?' मैंने कहा, 'यह हमारा निर्विषयी विषय है।'

विषय के दो प्रकार हैं, एक विषयी विषय और दूसरा निर्विषयी विषय। जिस विषय में ध्यान नहीं होता, बिल्कुल लक्ष्य ही नहीं होता, वह निर्विषयी विषय है।

जिसका जिस विषय में ध्यान होता है, वह उसमें बहुत

ही चौकन्ना रहता है। उसमें तो वह विशेष होता ही है। लोग अपने-अपने विषय में ही मस्त रहते हैं, और वहीं पर वे बुद्धू जैसे दिखाई देते हैं, क्योंकि उसी में ही तन्मयाकार हुए हैं। आत्मा निर्विषयी है। सारा जगत् विषयों से भरा हुआ है, उनमें से जिसे जो विषय पसंद आया उसी की आराधना करने लगे हैं। जैसे कि तपस्वियों ने तप का विषय पसंद किया। त्यागी त्याग के विषय, व्याख्यानकार व्याख्यान के और संसारी, सभी संसार के विषयों की आराधना करने में लगे हैं, और फिर कहते हैं कि हम पुरुषार्थ करते हैं। ज्ञानी से पूछ तो सही कि पुरुषार्थ है या क्या है? लोग अनिवार्य को ऐच्छिक मान बैठे हैं। आराधना विषयों की करते हैं और खोजते हैं निर्विषयी (आत्मा) को। अरे! इसका कभी भी अंत नहीं आएगा। अतः जो कुछ किया और उसमें अहंकार किया, तन्मय हुआ, अबव नॉर्मल हुआ, वे सभी विषय हैं। ऐसा सच्चा ज्ञान किसी की समझ में नहीं आता है इसलिए उल्टी राह पर चल पड़े हैं। उसमें उनका भी दोष नहीं है। यह तो जैसा है वैसा कहना पड़ता है, और वह भी अत्यंत करुणावश यह वाणी निकलती है। वर्ना हमें, ज्ञानीपुरुष को ऐसे कड़वे शब्दों का उपयोग थोड़े ही करना होता है? लेकिन क्या हो? इस विचित्र काल के कारण सच्चा मार्ग मिलता नहीं है। वह दिखलाने के लिए ऐसी कड़क वाणी निकलती है। बाकी, ज्ञानीपुरुष तो करुणा के सागर होते हैं।

विषय का आह्वान करने जैसा नहीं है। पुलिसवाला पकड़कर ले जाए और दो दिन भूखा रखकर, डंडे मारकर, ज़बरदस्ती माँस खिला दे, वैसा विषय के लिए रहना चाहिए और तभी गुनहगारी सहेतुक नहीं है। बरबस होने पर ही विषय होने चाहिए। विषय-अविषय दोनों परसत्ता हैं। जान-बूझकर पुलिसवाले के साथ जाने की इच्छा होती है? नहीं होती। ज़बरदस्ती के विषय, असल में विषय नहीं है। यह तो भगवान का न्याय है। शरीर ने विषय भोगा, तो वह मुक्त हुआ और मन विषय भोगे, तो बीज पड़ता

है। जो अवस्थित हुआ, वह व्यवस्थित होगा ही। विषयों की अपार जलन जगत् में चल रही है। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनकर, दूसरों के लिए (विषय) बीज डालने के निमित्त बनोगे, तो भी पेमेन्ट करना पड़ेगा। विषय का पृथक्करण बुद्धि से करके सोचें, तो भी गंदगी लगेगी। जहाँ फिसले, वही विषय।

अचेतन के साथ का विषय अच्छा, लेकिन मिश्रचेतन के साथ का गलत है। आप छूटना चाहें, तब भी, सामनेवाला मिश्रचेतन रागी-द्वेषी होने के कारण आपको झट से छूटने नहीं देगा। जबकि अचेतन तो वीतराग ही है। आपने छोड़ा कि छूट गया। आप छोड़ो, बस उतनी ही देर।

आयुष्य की पूँजी श्वासोच्छवास के काउन्ट (गिनती) पर आधारित है। जहाँ ज़्यादा श्वासोच्छवास चलें, वहाँ आयुष्य की पूँजी खर्च होती जाती है। क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-कपट में श्वासोच्छवास अधिक खर्च हो जाते हैं और दैहिक विषयों में पड़ें, तब तो भयंकर रूप से खर्च हो जाते हैं। इसलिए ही संसारी मनुष्यों को कहता हूँ कि और कुछ नहीं बन पाए, तो मत करना लेकिन लक्ष्मी और वीर्य की इकॉनोमी अवश्य करना। ये दोनों चीज़ें संसार व्यवहार के मुख्य स्तंभ हैं। शराब को खराब कहा है, क्योंकि वह विषय की ओर ले जाती है।

करोड़ों जन्मों में भी पार नहीं आए, उतने अनंत विषय हैं। उनमें पड़कर उन सभी विषयों को भोगते हुए भी हमने हमारे महात्माओं को निर्विषयी बनाया हैं!

लोग विषय के लिए नहीं जीते हैं, लेकिन विषय के अहंकार के पोषण के लिए जीते हैं।

जिन-जिन विषयों का अहंकार लाए हैं, उनके परमाणु देह में हैं। हमने हमारे महात्माओं के विषय के अहंकार को निकाल दिया है, फिर भी पहले के परमाणु भरे हुए हैं, जो फल देकर

चले जाएँगे। जिन विषयों का अहंकार भरा हुआ है, वे विषय सामने आएँगे। जिन-जिन विषयों का अहंकार निर्मूल हुआ है, वे विषय नहीं आएँगे। जब बाह्य अहंकार पूर्णतया निर्मूल होगा, और परमाणु फल देकर विदा होंगे, तब देह चला जाएगा। प्रत्येक परमाणु का समभाव से *निकाल* होगा, तब इस देह का भी मोक्ष होगा। संसार के रिलेटिव धर्म अबंध को बंध मानते हैं, और जिससे उन्हें बंध होता है उसका उन्हें भान ही नहीं है। यह सूक्ष्म वाक्य है, इसे समझना मुश्किल है। सारा संसार विषयों के ज्ञान को जानता है। जिस विषय की पढ़ाई की उसी के ज्ञान को जानता है। अरे! जिस विषय की पढ़ाई की उसी का विषयी हुआ। रिलेटिव धर्म में तो पाँच ही विषय बताए हैं, लेकिन विषय तो अनंत हैं। एब्नॉर्मल यानी कि अबव नॉर्मल या बिलो नॉर्मल हुआ इसलिए विषयी हुआ। विषयी हुआ, अतः 'जगत्ज्ञान' में पड़ा, ऐसा कहलाता है। वहाँ 'आत्मज्ञान' नहीं होता।

प्रेम और आसक्ति

'घड़ी चढ़े घड़ी उतरे वह तो प्रेम ना होय,
अघट प्रेम हृदे बसे, प्रेम कहिए सोय।'

सच्चा प्रेम किसे कहते हैं? जो कभी बढ़ता भी नहीं है और घटता भी नहीं है। निरंतर एक समान, एक सा ही रहे, वही सच्चा प्रेम। 'शुद्ध प्रेम, वही प्रकट परमेश्वर प्रेम है।'

बाकी जो प्रेम घटता-बढ़ता रहे, वह प्रेम नहीं कहलाता, आसक्ति कहलाता है।

ज्ञानी का प्रेम शुद्ध प्रेम है। ऐसा प्रेम कहीं देखने को नहीं मिलेगा। दुनिया में आप जहाँ कहीं देखते हैं, वह सारा प्रेम अवसरवादी प्रेम है। औरत-मर्द का, माँ-बाप का, बाप-बेटे का, माँ-बेटे का, सेठ-नौकर का। हर एक का प्रेम अवसरवादी होता है। अवसरवादी है, ऐसा कब समझ में आता है कि जब प्रेम

फ्रेक्चर होता है। जब तक मिठास लगती है, तब तक कुछ नहीं लगता, लेकिन कड़वाहट पैदा हो तब पता चलता है। अरे, सारी ज़िंदगी बाप के कहने में रहा हो और एक ही बार गुस्से में संयोगवश यदि बाप को बेटे ने 'आप कमअक़ल हैं' कह दिया, तो सारी ज़िंदगी के लिए संबंध टूट जाएगा। बाप कहेगा, 'तू मेरा बेटा नहीं और मैं तेरा बाप नहीं।' यदि सच्चा प्रेम हो, तो वह हमेशा के लिए वैसा का वैसा ही रहेगा, फिर चाहे गालियाँ दे या झगड़ा करे। इसके सिवाय तो जो प्रेम रहा वह सच्चा प्रेम कैसे कहलाएगा? अवसरवादी प्रेम ही आसक्ति कहलाता है। वह तो व्यापारी और ग्राहक जैसा प्रेम है, सौदेबाज़ी है। संसारी प्रेम तो आसिक्त कहलाता है। प्रेम तो वह कि साथ ही साथ रहना अच्छा लगे। उसकी सारी बातें अच्छी लगें। उसमें एक्शन और रिएक्शन नहीं होते। शुद्ध प्रेम ही परमात्मा है। प्रेम प्रवाह तो एक सा ही बहता है। वह घटता-बढ़ता नहीं है, *पूरण-गलन* नहीं होता। आसक्ति *पूरण-गलन* स्वभाव की होती है।

जहाँ सो गया वहीं का आग्रह हो जाता है। चटाई पर सोता हो, तो उसका आग्रह हो जाता है, और डनलप के गद्दे पर सोता हो, तो उसका आग्रह हो जाता है। चटाई पर सोने के आग्रही को यदि गद्दे पर सुलाएँ, तो उसे नींद नहीं आती। आग्रह ही विष है, और निराग्रह ही अमृत है। जब तक निराग्रहता उत्पन्न नहीं होती, तब तक संसार का प्रेम संपादन नहीं होता। शुद्ध प्रेम निराग्रहता से प्रकट होता है, और शुद्ध प्रेम ही परमेश्वर है।

बिना पहचाने किया गया प्रेम नाशवंत है, और आज जितनी पहचान है वह सब प्राकृत हैं। प्राकृत गुणों को लेकर जो प्रेम होता है, ऐसे प्रेम को क्या करना है?

शुद्ध प्रेम से सारे दरवाज़े खुलते हैं। गुरु के साथ के प्रेम से क्या नहीं मिलता?

मनुष्य तो सुंदर हों, तब भी अहंकार से बदसूरत दिखाई

देते हैं। सुंदर कब दिखेंगे? तब कहे, प्रेमात्मा हो तब। तब तो बदसूरत भी खूबसूरत दिखाई देते हैं। जब शुद्ध प्रेम प्रकट होता है, तभी खूबसूरत दिखने लगते हैं। संसार के लोगों को क्या चाहिए? मुक्त प्रेम, जिसमें स्वार्थ की गंध या किसी प्रकार की अवसरवादिता नहीं हो।

संसार में इन झगड़ों के कारण ही आसक्ति होती है। इस संसार में झगड़ा तो आसक्ति का विटामिन है। झगड़ा नहीं हो, तो वीतराग हो सकते हैं।

भगवान कहते हैं कि द्वेष परिषह उपकारी है। प्रेम परिषह कभी छूटता ही नहीं। सारा संसार प्रेम परिषह में फँसा है। इसलिए हर किसी को दूर से ही 'जय श्री कृष्ण' कहकर उनसे छूट जाना। किसी के लिए प्रेम मत रखना और किसी के प्रेम में फँसना नहीं। प्रेम को दुतकारकर भी मोक्ष में नहीं जा सकते, इसलिए सावधान रहना। मोक्ष में जाना हो, तो विरोधियों का तो उपकार मानना। प्रेम करते हैं, वे ही बंधन में डालते हैं, जबकि विरोधी उपकारी, हैल्पिंग हो जाते हैं। जिसने हम पर प्रेम उंडेला है, उसे दुःख न लगे, ऐसा करके छूट जाना, क्योंकि प्रेम को दुतकारने से ही संसार खड़ा है।

आसक्ति तो देह का गुण है, परमाणुओं का गुण है। वह कैसा है? चुंबक और लोहे जैसा संबंध है। देह को अनुकूल हो ऐसे परमाणु में देह खिंचता है, वह आसक्ति है।

आसक्ति तो अबव नॉर्मल और बीलो नॉर्मल भी हो सकती है। प्रेम नोर्मालिटी में होता है, एक समान ही रहता हैं, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन होता ही नहीं है। आसक्ति तो जड़ की आसक्ति है। चेतन की तो नाम मात्र की भी नहीं है।

व्यवहार में अभेदता रहे, उसका भी कारण होता है। वह तो परमाणु और आसक्ति के गुण हैं, लेकिन उसमें किस क्षण

क्या हो जाए, कहा नहीं जा सकता। जब तक परमाणु मेल खाते हों तब तक आकर्षण रहता है, इसलिए अभेदता रहती है। जब परमाणु मेल नहीं खाते, तब विकर्षण होता है, और बैर होता है। अतः जहाँ आसक्ति होगी, वहाँ बैर होगा ही। आसक्ति में हिताहित का भान नहीं होता। प्रेम में संपूर्ण हिताहित का भान होता है।

यह तो परमाणुओं का साइन्स है। उसमें आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन लोग तो भ्रांति से परमाणु के खिंचाव को मानते हैं कि 'मैं खिंच गया।' आत्मा खिंचता ही नहीं। आत्मा जिस-जिस में तन्मयाकार नहीं होता है, उसका उसे त्याग बरतता है, ऐसा कहते हैं।

कर्तृत्व का अभिमान ही आसक्ति है।

हमें तो देह की आसक्ति और आत्मा की अनासक्ति होती है।

नैचुरल लॉ - भुगते उसी की भूल

इस संसार के न्यायाधीश तो जगह-जगह होते हैं, लेकिन कर्म जगत् के कुदरती न्यायाधीश तो एक ही हैं, 'भुगते उसी की भूल'। यह एक ही न्याय है, उसी से सारा संसार चल रहा है और भ्रांति के न्याय से संसार पूरा खड़ा है।

एक आदमी की जेब कटी। इस पर भ्रांति का न्याय क्या करता है कि जिसकी जेब कटी हो उसे आश्वासन देने निकल पड़ता है। अरे...रे, बेचारे पर दुःख आ पड़ा। ऐसा करके खुद भी दुःखी होता है और चोर पर सैंकड़ों गालियाँ बरसाता है। जबकि कुदरती न्याय, असल न्याय क्या कहता है? 'अरे, पकड़ो, पकड़ो इसे, जिसकी जेब कटी है उसे पकड़ो!' चोर और साहूकार, उन दोनों में से इस समय भुगता किसने? 'जिसने भुगता, उसकी भूल।' जेब काटनेवाला तो जब पकड़ा जाएगा तब चोर कहलाएगा।

अभी तो वह मज़े से होटल में चाय-नाश्ता कर रहा है न? उसकी भूल तो, वह जब पकड़ा जाएगा तब भुगतेगा। लेकिन अभी कौन भुगत रहा है? जिसकी जेब कटी है वह। इसलिए कुदरती न्याय कहता है कि भूल इसकी। पहले इसने भूल की थी, उसका फल आज आया और इसीलिए वह लूट गया और इसीलिए वह आज भुगत रहा है।

नैचुरल कोर्ट में जो लॉ चल रहा है - नैचुरल लॉ, वही हम आज यहाँ खुल्लम्-खुल्ला बता रहे हैं कि 'भुगते उसी की भूल।'

खुद की भूल की ही मार खा रहे हैं। जिसने पत्थर फेंका उसकी भूल नहीं, जो भुगते, जिसे लगा, उसकी भूल। आप के आस-पास के बाल-बच्चों की चाहे जितनी भूलें या अपकृत्य हों, लेकिन यदि आपको उसका असर नहीं होता, तो आपकी भूल नहीं है, और यदि आप पर असर होता है, तो वह आपकी ही भूल है, ऐसा निश्चित रूप से समझ लेना।

जिसका दोष अधिक है, वही इस संसार में मार खाता है। मार कौन खा रहा है? यह देख लेना। जो मार खाता है वही दोषित है।

जो कड़वाहट भुगते वही कर्ता। कर्ता ही विकल्प है।

कोई मशीनरी खुद की ही बनाई हुई हो, जिसमें गियर व्हील हों, उसमें अगर खुद की उँगली फँस जाए, तो उस मशीन से आप लाख कहो कि 'भैया, मेरी उँगली है, मैंने खुद तुझे बनाया है न?' तो क्या गियर व्हील उँगली छोड़ देगा? नहीं छोड़ेगा। वह तो आपको समझा जाता है कि 'भैया इसमें मेरा क्या दोष? तूने भुगता, इसलिए तेरी भूल।' बाहर सब जगह ऐसी ही मशीनरी मात्र चलती है। ये सभी मात्र गियर-व्हील हैं। यदि गियर नहीं होते, तो सारे मुंबई शहर में कोई स्त्री अपने पति को दुःख नहीं

देती और कोई पति अपनी पत्नि को दुःख नहीं देता। खुद का घर तो सभी सुख में ही रखते, लेकिन ऐसा नहीं है। ये बच्चे-वच्चे, पति-पत्नी, सभी मशीनरी मात्र ही हैं, गियर मात्र हैं।

कुदरती न्याय तो जो गुनहगार होता है, उसी को दंड देता है। घर में सात लोग सोए हुए हों, लेकिन साँप तो गुनहगार को ही काटेगा। ऐसा है यह सब, 'व्यवस्थित'।

'भुगते उसी की भूल' के न्याय में तो बाहर के न्यायाधीश का काम ही नहीं है। उसे किसलिए बुलवाना होता है? बाहरवाले न्यायाधीश तो बिचौलिया कहलाते हैं और बिचौलिया क्या करता है? पहले तो आकर कहेगा, 'चाय-नाश्ता लाइए'। फिर धीरे से पति, पत्नी से कहेगा 'अक्ल नहीं है कि ऐसी भूल करते हो?' बिचौलिया अपनी आबरू-अक्ल ढँककर रखता है और दूसरों की खुली करता है।

इस कुदरती न्याय में तो कोई न्यायाधीश है ही नहीं। हम ही न्यायाधीश, हम ही वकील और हम ही मुवक्किल। अतः फिर वह खुद के पक्ष में ही न्याय करेगा न? इसलिए निरंतर भूल ही करता है मनुष्य। लेकिन न्याय तो किस से करवाना चाहिए? ज्ञानीपुरुष से कि जिन्हें अपनी देह के लिए भी पक्षपात नहीं होता है। यह तो खुद ही न्यायाधीश और खुद ही गुनहगार और खुद ही वकील, फिर ऐसा न्याय किसकी तरफ़दारी करेगा? अपनी खुद की ही। यह तो ऐसा करते-करते ही जीव बंधन में आता जाता है। अंदर का न्यायाधीश बोलता है कि तुम्हारी भूल हुई है, तब फिर अंदर का वकील ही वकालत करता है कि इसमें मेरा क्या दोष? ऐसा करके खुद ही बंधन में आता है। खुद के आत्मा के हित के लिए जान लेना चाहिए कि किसके दोष से बंधन है? 'भुगते उसी की भूल'। उसी का दोष। देखा जाए, तो सामान्य भाषा में अन्याय है, लेकिन भगवान का न्याय तो ऐसा ही कहता है कि 'भुगते उसी की

भूल।' यह 'दादा' ने ज्ञान में जैसा है, वैसा ही देखा है कि 'भुगते उसी की भूल' है।

'भुगते उसी की भूल' इतना यदि पूर्णरूप से समझ में आ जाए, तो भी मोक्ष मिल जाए। यह जो लोगों की भूल देखते हैं, वह तो बिल्कुल गलत है। खुद की भूल के कारण निमित्त मिलते हैं। यदि जीवित निमित्त मिला, तो उसे काटने दौड़ते हैं, और काँटा चुभे तब क्या करता है? चौराहे पर काँटा पड़ा हो और हज़ारों लोग आएँ-जाएँ, लेकिन किसी को भी नहीं लगता, लेकिन चंदूभाई जाएँ तब काँटा टेढ़ा पड़ा होता है, फिर भी उनके पैर में घुस जाता है। 'व्यवस्थित' तो कैसा है? जिसे काँटा लगनेवाला हो उसी को लगता है। सारे संयोग इकट्ठे कर देता है, लेकिन उसमें निमित्त का क्या दोष?

यदि कोई व्यक्ति दवाई छिड़ककर खाँसी खिलवाए, तो उसके लिए लड़ाई-झगड़ा हो जाता है। जबकि मिर्च का छौंक उड़ने पर खाँसी आए, तो कोई झगड़ा करता है क्या कभी? यह तो जो पकड़ा जाए, उनसे लड़ते हैं। निमित्त को काटने दौड़ते हैं। यदि हक़ीक़त समझ में आ जाए कि करनेवाला कौन है और किसलिए होता है, तो फिर रहेगा कोई झंझट?

चिकनी मिट्टी में बूट पहनकर घूमें, और फिसलें, तो उसमें दोष किस का? तेरा ही! समझ में नहीं आता कि नंगे पैर चलें, तो उँगलियों की पकड़ रहती है और गिरते नहीं। इसमें दोष किस का? मिट्टी का, बूट का या तेरा?

सामनेवाले का मुँह यदि आपको फूला हुआ दिखाई दे, तो वह आपकी भूल है। उस समय उसके 'शुद्धात्मा' को याद करके उसके नाम से माफ़ी माँगते रहें, तो ऋणानुबंध से छूट सकते हैं।

जो दुःख भुगते, उसकी भूल और सुख भोगे, तो वह उसका इनाम। भ्रांति का कानून निमित्त को पकड़ता है। भगवान का कानून,

रियल कानून एग्ज़ैक्ट है, वह तो जिसकी भूल हो उसी को पकड़ता है। यह कानून एग्ज़ैक्ट है। और उसे कोई बदल सके वैसा है ही नहीं। संसार में ऐसा कोई कानून नहीं है कि जो किसी को दु:ख दे सके। सरकारी कानून भी ऐसा नहीं कर सकता। यह तो भुगते उसी की भूल।

भुगतते हैं उस पर से हिसाब निकल जाता है कि कितनी भूल थी।

घर में दस लोग हों तो, उनमें से दो को घर कैसे चलता होगा उसका विचार मात्र भी नहीं आता, दो को, घर में हैल्प करें, ऐसा विचार आता है और दो जने, हैल्प करते हैं, लेकिन एक तो सारा दिन घर किस प्रकार चलाना है, उसी की चिंता में रहता है, और दो जने आराम से सोते हैं, तो भूल किस की? अरे! भुगतता है उसकी ही। चिंता करे, उसकी ही। जो आराम से सोता है, उसे कुछ भी नहीं।

सास बहू को डाँटे, तो भी बहू सुख में हो और सास भुगते, तो भूल सास की ही समझना। जेठानी को तंग करे, और भुगतना पड़े, वह हमारी भूल और छेड़ें नहीं फिर भी वह दु:ख दे, तो वो पिछले जन्म का कुछ हिसाब बाकी होगा, वह चुक गया। तब आप फिर से भूल मत करना, वर्ना फिर से भुगतना पड़ेगा। इसलिए छूटना चाहो, तो वह जो कुछ कड़वा-मीठा दें (अच्छा-बुरा कहें), उसे जमा कर लेना। हिसाब चुक जाएगा। इस जगत् में बिना हिसाब के तो आँखें तक नहीं मिलतीं। तो और क्या बिना हिसाब के कुछ होता होगा? आपने जितना-जितना जिस-जिस को दिया होगा, उतना-उतना वह आपको वापस करेगा। तब आप उसे जमा कर लेना। खुश होकर कि ओह! अब हिसाब पूरा होगा। वर्ना यदि भूल करोगे, तो फिर से भुगतना ही पड़ेगा।

यह पूरा संसार 'हमारी' मालिकी का है। हम 'खुद' ब्रह्मांड

के मालिक हैं, लेकिन हमारी भूलों से बंधे हुए हैं। भुगतना क्यों पड़ा? यह खोज निकालो न?

यह तो अपनी भूलों से बंधे हैं, लोगों ने आकर नहीं बाँधा। वे भूलें नष्ट हो जाएँ, तो मुक्त। वास्तव में तो मुक्त ही हैं, लेकिन भूलों के कारण बंधन है।

जहाँ ऐसा सही और निर्मल न्याय आपको दिखा देते हैं, वहाँ न्याय-अन्याय का विभाजन करना रहा ही कहाँ? यह बहुत ही गहन बात है। तमाम शास्त्रों का सार बता रहा हूँ। यह तो 'वहाँ' का जजमेन्ट (न्याय) कैसे चल रहा है, यह एग्ज़ैक्ट बता रहा हूँ कि 'भुगते उसी की भूल।'

निजदोष दर्शन

एक व्यक्ति प्रतिदिन मंदिर जाकर और भगवान से हाथ जोड़कर गाता हो, 'मैं तो दोष अनंत का भाजन हूँ करुणामय।' ऊपर से ऐसा भी कहता है, 'दिखें नहीं निज दोष तो तरें कौन उपाय?' अब उनसे पूछें कि भैया अब आप में कितने दोष शेष रहे? तब क्या कहेंगे, 'बस दो-तीन ही बचे हैं, थोड़ा-थोड़ा क्रोध होता है और थोड़ा सा लोभ है, बस। और कोई दोष अब रहा ही नहीं है।' अरे अभी तो गा रहा था न कि मैं तो दोष अनंत का भाजन हूँ करुणामय। वह कहेगा, 'ऐसा गाने में तो गाना ही पड़ता है न, लेकिन दोष तो हैं ही नहीं।'

'वाह! वाह! क्या कहने! यह तो भगवान को भी ठगने लगे? भगवान क्या कहते हैं, 'जिसमें दो ही दोष शेष हों उसका तो तीन ही घंटे में मोक्ष हो जाए।' अगर बड़े-बड़े महाराजाओं से, आचार्यों से कोई पूछे, 'आप में कितने दोष हैं?' तो वे कहेंगे, 'दो-तीन होंगे।' उतने दोष रहने पर तो तीन ही घंटों में मोक्ष हो जाए। यह तो दोष को लेकर यहाँ पड़े हैं और यदि कहें कि 'औरों के दोष दिखाइए,' तो अनेकों दोष बता देते हैं,

खुद का एक भी नज़र नहीं आता। हर एक को दूसरों के दोष देखना आता है। आत्मा प्राप्त होने के बाद ही खुद के दोष दिखते हैं, निष्पक्षता उत्पन्न हो जाती है। यदि खुद के दोष देखना आ जाता, तो मोक्ष प्राप्त कर चुके होते और नहीं जा पाते, तो भी ज्ञानीपुरुष जितनी ऊँची स्थिति में पहुँच चुके होते।

इसमें कोई दोषित नहीं है, यह काल ही ऐसा है। संयोगवश सब होता है। उसमें उसका भी क्या कसूर?

जितने दोष दिखाई देते हैं, उतने बिदा होने लगते हैं। ज्ञानीपुरुष की कृपा हो, तो दोष दिखने लगते हैं। पहले तो खुद अनंत दोष का भाजन हूँ, ऐसा समझे, तब दोषों को खोजना, तलाश करना शुरू करेगा। उसके बाद फिर दोष दिखने लगेंगे। यदि दोष नहीं दिखते, तो वह प्रमाद है। अनंत दोष का भाजन हूँ ऐसा समझा कि दोष अपने आप दिखने लगेंगे। लेकिन यह तो बहरा और घर में चोर घुस आया, फिर क्या हो? फिर भले ही बरतन खड़कें, लेकिन सुनाई दे तब न?

जितने दोष दिखते हैं, उतने बिदा होने लगते हैं। जो भी गाढ़ होंगे, वे दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन, महीना या साल के बाद भी दिख जाएँ, तो चलते ही बनेंगे। अरे, भाग ही जाएँगे। घर में चोर घुस आया हो, तो वह कब तक घर में रहेगा? मालिक नहीं जानता हो, तब तक। मालिक अगर जान जाए, तो चोर तुरंत ही भागने लगेगा।

किसी के भी अवगुण नहीं देखने चाहिए। देखने ही हैं, तो खुद के देखो न? यह तो औरों की भूलें देखने से तो दिमाग़ में कैसा तनाव हो जाता है? उसके बजाय औरों के गुण देखें तो दिमाग़ कितना खुश हो जाता है?

सामनेवाले की भूल मत देखना। हमारी भूल सुधार लेनी चाहिए। बिना हिसाब के तो कोई उल्टा नहीं बोलता।

जिसे खुद की एक भी भूल मिल जाए, भगवान ने उसे इंसान कहा है। जिस भूल की वजह से घोर जंगल में भटक रहा है और यदि उसे उस भूल का पता चल जाए, तो वह मानव है। जो मानव उसे उसकी वह भूल बता दे, उसे भगवान ने 'अति मानव' (सुपर ह्यूमन) कहा है।

इस जगत् में सबकुछ पता चल सकता है, लेकिन खुद की भूल का पता नहीं चलता। इसीलिए खुद की भूल दिखलाने के लिए ज्ञानी की ज़रूरत पड़ती है। ज्ञानीपुरुष ही ऐसे सर्व सत्ताधीश हैं कि जो आपको आपकी भूल दिखाकर उसका भान करवाते हैं, और तभी वह भूल मिटती है। ऐसा कब संभव है? जब ज्ञानीपुरुष से भेंट हो जाए और आपको निष्पक्ष बनाएँ तब। आपके खुद के प्रति भी निष्पक्षता उत्पन्न हो, तब ही कार्य सिद्ध होता है। जब तक ज्ञानीपुरुष स्वरूप का भान नहीं करवाते, तब तक निष्पक्षता उत्पन्न नहीं होती। 'ज्ञान' किसी की भूल नहीं निकालता, बुद्धि सभी की भूलें निकालती है, सगे भाई की भी भूल निकालती है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, व्यवहार में बड़ा, छोटे की भूल निकालता है, छोटा, अपने से छोटे की भूल निकालता है, व्यू पोइन्ट के टकराव के कारण, तो ऐसा क्यों होता हैं?

दादाश्री : यह तो ऐसा है न कि बड़ा छोटे को खा जाता है। अतः बड़ा छोटे की भूल निकाले, उसके बजाय हम कह दें, 'मेरी ही भूल है।' यदि भूल हमारे सिर पर ले लें, तो उसका हल निकल आए। हम क्या करते हैं? दूसरा यदि सहन नहीं कर सकता, तो हम अपने सिर ले लेते हैं, औरों की भूल नहीं निकालते। क्यों किसी को देने जाएँ? अपने पास तो सागर जितना बड़ा पेट है। देखो न, इस मुँबई की सभी गटरों का पानी सागर, अपने में समा लेता है न? वैसे ही आपको भी पी लेना है। इससे क्या होगा कि इन बच्चों पर, और सब पर प्रभाव पड़ेगा। वे भी सीखेंगे। बच्चे भी समझ जाएँगे कि इनका पेट सागर समान

है। इसलिए जितना आए उतना जमा कर लो। व्यवहार का नियम है कि अपमान करनेवाला खुद की शक्ति देकर जाता है। इसलिए अपमान स्वीकार कर लो, हँसते-हँसते।

एक आँख हाथ से दब गई हो तो चंद्रमा दो दिखाई देते हैं न? उसमें भूल किस की? ऐसा ही संसार के लोगों का है। हर मिनट पर, समय-समय पर भूल करते हैं। निरंतर 'पर' समय में होते हैं। परायों हेतु ('स्व' हेतु नहीं) समय बिताते हैं। खुद के लिए एक भी समय निकाला नहीं है। 'खुद' को पहचाने नहीं वह सब 'परसमय'। खुद को पहचानने के बाद 'स्वसमय'।

लोगों की दृष्टि दोषित हो गई है, इसलिए सामनेवाले के दोष दिखाई देते हैं, और खुद के नहीं देखते। हमें तो पहले दृष्टि निर्दोष कर देनी है। निर्दोष हुए और निर्दोष देखा। आपको कोई दोषित नहीं दिखता, तो आप मुक्त हुए।

लोग खुद की भूलों से बंधे हैं। फ़ौजदारी भूल की हो, तो फ़ौजदारों से बंधा हुआ होता है। कोई मनुष्य खुद की भूल नहीं देख सकता।

सभी करम, करम गाते हैं लेकिन करम क्या है, उसका आपको भान ही नहीं है। खुद के करम अर्थात् निजदोष। आत्मा निर्दोष है, लेकिन निज दोष को लेकर बंधन में है। जितने दोष दिखते हैं, उतना मुक्ति का अनुभव होता है। कुछ दोष की तो लाखों परतें होती हैं, अतः लाख-लाख बार देखें, तो निकलते जाते हैं। मन-वचन-काया में दोष तो भरे हुए ही है।

मन-वचन-काया के दोष तो प्रतिक्षण दिखने चाहिए। इस दूषमकाल में, बिना दोष की काया होती ही नहीं। जितने दोष दिखने लगे उतनी किरणें (ज्ञान-जागृति) बढ़ी। इस काल में, यह अक्रम ज्ञान तो ग़ज़ब का प्राप्त हुआ है। आपको केवल जागृति रखकर भरे हुए माल को खाली करना है, धोते रहना है।

जागृति तो निरंतर रहनी चाहिए। यह तो दिन में आत्मा को बोरी में बंद रखते हैं, यह कैसे चलेगा? दोष देखते और धोते जाने से आगे बढ़ सकते हैं, प्रगति होती है। वर्ना आज्ञा में रहने से लाभ तो है, उस से आत्मा का रक्षण होता है। जागृति के लिए सत्संग और पुरुषार्थ चाहिए। सत्संग में रहने के लिए पहले आज्ञा में रहना चाहिए।

नाटक में होनेवाला घाटा असर नहीं करे तो समझना कि आखिरी नाटकीय जन्म शेष रहा। नाटक में गाली सुना दे, लेकिन असर नहीं हो, वह देखना है।

बिना हिसाब के तो कोई बुरा भी नहीं बोलता और अच्छा भी नहीं बोलता। सही चीज़ के लिए अभिप्राय दिया कि तुरंत ही कच्चा पड़ा। सत्संग में भाँति-भाँति का कचरा निकलता है। सामनेवाले के दोष देखने से, तो कचरा खुद को चिपक जाता है। खुद के देखें, तो खुद के वे दोष निकल जाते हैं। आलसी को दूसरों की भूलें अधिक दिखाई देती हैं।

भूलें

अंधियारी भूलें और अँधेरे में दबी पड़ी भूलें दिखाई नहीं देतीं। ज्यों-ज्यों जागृति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों अधिक और अधिक भूलें दिखाई देती हैं। यदि स्थूल भूलें भी खत्म हो जाए तो आँखों की चमक बदल जाती है। भाव शुद्ध रखना चाहिए। अँधेरे में की गई भूलें अँधेरे में कैसे दिखाई देंगी? भूलें ज्यों-ज्यों निकलती जाती हैं, त्यों-त्यों वाणी भी ऐसी निकलती है कि कोई दो घड़ी सुनता रहे।

स्थूल भूलें तो आपसी टकराव होने पर बंद हो जाती हैं, लेकिन सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम भूलें इतनी अधिक होती हैं कि वे जैसे-जैसे खत्म होती जाती हैं, वैसे-वैसे मनुष्यपने की सुगंध आती जाती है।

अँधियारी भूलें और अँधियारी बातों की तुलना में कठोर मनुष्य की उजाले की भूलें अच्छी, फिर चाहे थोकबंद क्यों न हो?

जब अनचाही अवस्थाएँ आ पड़ें, कोई मारे, पत्थर पड़ें, तब भूलें दिखती हैं।

'मुझमें भूल ही नहीं है।' ऐसा तो कभी नहीं बोल सकते, बोल ही नहीं सकते। 'केवलज्ञान' होने के बाद ही भूलें नहीं रहती।

ये भूलें तो अँधियारी भूलें हैं। ज्ञानीपुरुष प्रकाश देते हैं, तब दिखती हैं। उनके बजाय उजाले की भूलें अच्छी। इलेक्ट्रिसिटीवाली होती हैं, वे दिखाई देती हैं।

पुरुषार्थ किसका करना है? पुरुष होने के बाद, 'शुद्धात्मा' का लक्ष्य बैठने के बाद पुरुषार्थ और स्व-पराक्रम होता है।

अंदर निरा भूलों का ही भंडार भरा है। हर क्षण दोष दिखें तब काम हुआ कहलाए। यह सारा माल आप भरकर लाए हैं, बिना पूछे ही न?

शुद्धात्मा का लक्ष्य बैठ जाने से भूलें दिखती हैं। अगर नहीं दिखें, तो वह तो निरा प्रमाद ही है।

खरी कसौटी में ज्ञान हाज़िर रहे, कान काट रहे हों और ज्ञान हाज़िर रहे, तब खरा ज्ञान कहलाता है। नहीं तो सब प्रमाद कहलाता है।

ज्ञानीपुरुष तो एक ही घंटा सोते हैं, निरंतर जागृत ही रहते हैं। आहार कम हो गया हो, नींद कम हो गई हो, तब जागृति बढ़ती है, वर्ना तो प्रमादचर्या रहती है। नींद बहुत आए, वह प्रमाद कहलाता है। 'प्रमाद यानी आत्मा को गठरी में बाँधने जैसा है।'

भूल का अर्थ क्या है? इसका खुद को भान ही नहीं है। स्व-पराक्रम से भूलें खत्म होती हैं।

जब नींद घटे, आहार घटे, तब समझना कि प्रमाद घटा।

जब भूलें नष्ट होने लगती है, तब उसके चेहरे पर चमक आती है, वाणी सुंदर निकलती है, लोग उसके पीछे फिरते हैं।

स्ट्रोंग परमाणुवाली भूलें हों तो, वे तुरंत दिखाई देती हैं। बहुत कड़क होने से, वह जिस तरफ जाए, उसी में डूब जाता है। संसार में घुसा, तो उसमें डूबता है और ज्ञान में आया, तो उसमें डूब जाता है।

आत्मा का शुद्ध उपयोग अर्थात् क्या? इसका अर्थ यह कि आत्मा को अकेला नहीं छोड़ते। जैसे पंद्रह मिनट झपकी लेनी हो, तो पतंग की डोर अँगूठे से बाँधकर झपकी लेते हैं, उसी प्रकार आत्मा के बारे में ज़रा सी भी अजागृति नहीं रखी जा सकती।

अनंत भूलें हैं। भूलों के कारण नींद आ जाती है, वर्ना नींद क्यों आती? नींद आना, वह तो अपना बैरी माना जाता है, प्रमादचर्या कहलाता है। शुभ उपयोग में भी प्रमाद हो, तो उसे भी अशुद्ध उपयोग कहते हैं।

सारी भूलें खत्म करने के लिए या तो यज्ञ (ज्ञानी और महात्माओं की सेवा का) करना होगा अथवा स्व-पुरुषार्थ करना पड़ेगा। वर्ना आप ऐसे खाली दर्शन कर जाएँगे, तो भक्ति का फल मिलेगा, लेकिन ज्ञान का फल नहीं मिलेगा।

भूल है ही नहीं, ऐसा मानकर बैठे रहें, तो भूल दिखेगी ही कैसे? फिर आराम से सोते हैं। हमारे ऋषि-मुनि सोते नहीं थे। बहुत जागृत रहते थे।

खुद की भूलें खुद को काटने लगें तो, उसे हम इलेक्ट्रिकल भूलें कहते हैं, अँधेरे की भूलें अर्थात् खुद की भूलें खुद को नहीं काटतीं। जो भूलें काटने लगें, वे तो तुरंत दिखाई दे जाती है, लेकिन जो नहीं काटतीं, वे देखे-जाने बगैर ही चली जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : इलेक्ट्रिकवाली भूलें क्या है?

दादाश्री : वे सभी दिखनेवाली भूलें। थोड़ा बेचैन करके चली जाती हैं। उनसे हमेशा जागृत रह सकते हैं। वह तो अच्छा है। जबकि अंधेरे की भूलें तो किसी को दिखाई ही नहीं देतीं। उसमें खुद तो प्रमादी होता ही है, अपराधी होता है और कोई दिखानेवाला भी नहीं मिलता। जबकि इलेक्ट्रिसिटीवाली भूलें तो कोई दिखानेवाला भी मिल जाता है। 'मैं जानता हूँ' वे अंधेरे की भूलें तो बहुत भारी हैं और ऊपर से 'अब कोई हर्ज नहीं है', वह तो मार ही डालता है। ऐसा तो ज्ञानीपुरुष के सिवाय कोई बोल ही नहीं सकता कि 'एक भी भूल नहीं रही।' प्रत्येक भूल को देखकर तोड़नी है।

हम 'शुद्धात्मा' और बाहर की बातों में 'मैं कुछ भी नहीं जानता' ऐसा ही रखना, ताकि कोई बाधा ही नहीं आएगी। 'मैं जानता हूँ', वैसा रोग तो लगना ही नहीं चाहिए। हम तो 'शुद्धात्मा'। 'शुद्धात्मा' में एक भी दोष नहीं होता, लेकिन तुम में, चंदूभाई में, जो-जो दोष दिखाई दें उनका निकाल करना है।

अगर अपनी दृढ़ इच्छा है कि ज्ञानी की आज्ञा में ही रहना है, तो उनकी कृपा से आज्ञा में ही रह सकते हैं। आज्ञा पालन करने से आज्ञा की मस्ती रहती है। ज्ञान की मस्ती तो किसे रहती है कि जो दूसरों को उपदेश देता है।

'हमारी' बात यदि जाने और कोई भीतर उतारने नहीं दे, तो समझना कि भीतर गाँठ है, भारी रोग है।

भूलें बहुत सारी हैं, ऐसा यदि जान लें, तो भूलें दिखने लगेंगी और फिर भूलें कम होती जाएँगी। हम सभी के दोष थोड़े ही देखते रहेंगे? ऐसी हमें फुरसत भी नहीं होती। वह तो बहुत पुण्य जमा हों, तब हम सिद्धिबल से उसका 'ऑपरेशन' करके 'रोग' निकाल देते हैं। ये डॉक्टर करते हैं, उस ऑपरेशन की तुलना में लाख गुना मेहनत हमारे 'ऑपरेशन' में होती है।

जिसे, खुद की जितनी भूलें दिखती हैं, उतना ही वह उनका *ऊपरी*। जिसकी सारी भूलें खत्म हो जाएँ, उसका *ऊपरी* कोई नहीं। 'मेरा *ऊपरी* कोई है ही नहीं, इसलिए मैं सबका *ऊपरी*। *ऊपरी* का भी *ऊपरी*।' क्योंकि 'हम' में स्थूल दोष तो होते ही नहीं, सूक्ष्म दोष भी चले गए हैं। सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होते हैं, उनके हम संपूर्ण ज्ञाता-दृष्टा होते हैं। भगवान महावीर भी यही करते थे। नाम मात्र भी मैल नहीं रहे, तभी सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम दोष दिखते हैं।

भगवान महावीर को केवलज्ञान प्रकट हुआ, तब तक दोष दिखाई देते थे। भगवान को केवलज्ञान प्रकट हुआ वह काल और खुद के दोष दिखने बंद होने का काल, दोनों एक ही था। वे दोनों समकालीन थे। 'अंतिम दोष का दिखना बंद होना, और इस ओर केवलज्ञान का प्रकट होना,' ऐसा नियम है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, बचपन से ही मुझे हर ओर से मार ही पड़ती रही है। अब संतानों की ओर से भी सहना पड़ता है। अब इसे कैसे सहूँ? इसमें भूल किसकी?

दादाश्री : यह चाय का गिलास आपसे खुद से टूटे, तो आपको दुःख होगा? खुद फोड़ो, तो आपको सहन करना होता है? यदि आपके बेटे से टूट जाए, तो दुःख, चिंता-संताप होते हैं। खुद की ही भूलों का हिसाब है', ऐसा यदि समझ में आ जाए, तो क्या दुःख या चिंता होगी? यह तो परायों के दोष निकालकर दुःख या चिंता खड़े करते हैं और रात-दिन बस, दुःख और जलन ही खड़े करते हैं और ऊपर से खुद को ऐसा लगता है कि मुझे बहुत सहन करना पड़ता है।

'स्वरूप का ज्ञान' ऐसा है कि जैसे-जैसे परिणाम में आता जाता है, तब कुछ भी सहन नहीं करना पड़ता। ज्ञाता-ज्ञेय संबंध समझने से सहन करना नहीं पड़ता। तेरे साथ कोई टकराया क्यों? वही तेरा दोष है। हमारे दोष से ही बंधन है। खुद की भूलों

से छुटकारा पाना है। यह तो संयोग संबंध हैं। बिना हिसाब के कोई मिलता ही नहीं। सब खुद के दोषों से ही बंधे हुए हैं। मात्र खुद के दोष देखने से छूट सकें, ऐसा है। 'हम' अपने दोषों को देखते रहे, इसलिए 'हम' छूट गए। निजदोष समझ में आए, तो दोषों से छूटता जाता है।

खुद के हाथों से पाँच सौ रुपये खो जाएँ, तो सहन कर सकते हैं। वैसे ही खुद की भूलें समझ में आएँ, तो सहन करने की शक्ति अपने आप आएगी।

जब समझ में आ जाए कि दोष किसका था, खुद का था, तो छूट सकता है, वर्ना और अधिक बंधन में आ जाते हैं।

लोग सहनशक्ति बढ़ाने को कहते हैं, लेकिन वह कब तक टिकती है? ज्ञान की डोर तो ठेठ तक पहुँचती है। सहनशक्ति की डोर कहाँ तक पहुँचती है? सहनशक्ति की लिमिट है, ज्ञान अनलिमिटेड है। यह हमारा ज्ञान ही ऐसा है। किंचित्‌मात्र सहन करने को रहता नहीं। सहन करने में तो लोहे को आँख से देखकर पिघलाएँ, उतनी शक्ति चाहिए। जबकि इस ज्ञान से किंचित् मात्र सहन किए बगैर, परमानंद के साथ मुक्ति! ऊपर से समझ में आता है कि यह तो हिसाब चुक रहा है। मुक्त हो रहे हैं।

निजदोष दृष्टि अर्थात् समकित यानी कि सीधी राह पर चलनेवाला। एक ही बार सीधी राह पर आ जाए, तो उसकी संसार की दुकान खाली होने लगती है। सीधी राह पर आया मनुष्य हमेशा खुद के ही दोष देखता है। जब की उल्टी राह चलनेवाला? तब कहे, खुद के बर्तन जूठे पड़े हों और दूसरों से कहता है कि लाओ आपके बर्तन धो दूँ।

हमने खुद ज्ञान में देखा है कि संसार किस से बंधा है? मात्र निजदोष से बंधा है।

अंत में कोई दृष्टि तो चाहिए न? जीव मात्र जब निर्दोष

दिखाई दे, तब काम हो गया कहलाता है। मनुष्यों को ही नहीं लेकिन यह पेड़ टेढ़ा है, ऐसा भी नहीं बोल सकते। छोड़ न झंझट। अनंत जन्मों से यही सब गाया हैं न?

हमारी दो चाबियाँ यदि पकड़ ले, तो समकित हो जाए ऐसा है।

(१) मन को गाँठें कहा है। मन को पराया कहा है। मन को वश करने जाएँ, तो वह प्रतिकार करता है। हमने गाँठों से बना बोल दिया, फिर शेष क्या रहा?

(२) दूसरी चाबी : 'भुगते उसी की भूल'।

आड़ाई-स्वच्छंदता

खुद में स्वच्छंद नामक एक ऐसा दोष है कि वह कभी तैरने नहीं देता। अनंतकाल का लेखा-जोखा अर्थात् चंदूभाई का बहीखाता। अरे! अनंतकाल में इतना ही कमाया क्या? आठ प्रकार के कर्मों की कमाई में अनंतज्ञान में से ज्ञान की एक बूँद भी उत्पन्न नहीं हुई है। अनंत दर्शन में से अथवा अनंत सुख में से सुख का एक छींटा भी उत्पन्न नहीं हुआ। जिसे सुख माना है, वह तो आरोपित है, सच्चा नहीं है। माना हुआ मोक्ष नहीं चलेगा, यथार्थ मोक्ष चाहिए। हमारा *ऊपरी* इस वर्ल्ड में कोई है ही नहीं, ऐसा मुक्ति सुख प्राप्त हो जाए, तभी यथार्थ मोक्ष हुआ कहलाएगा।

स्वच्छंद अर्थात् अपने आप ही दवाई बना लेना है। अपने आप ही रोग का निदान करना, खुद ही दवाई बनाना और खुद ही प्रेस्क्राइब करना। अरे, मोक्षमार्ग की दवाई भी खुद ही बनाता है? तो भाई! पोइज़न हो गया तेरे लिए। इसीलिए तो प्रशंसा पर राग होता है और बुराई करने पर द्वेष होता है। धर्म में, जप में, तप में, शास्त्र समझने में स्वच्छंद नहीं चल सकता। साधन किया, तो वह स्वच्छंद से किया हुआ हो तो नहीं चल सकता। अपनी स्व-मति की कल्पना से मत करना। यह तो खुद ही गुनहगार,

खुद ही वकील और खुद ही न्यायाधीश, इस तरह चलता है। स्वच्छंदता अर्थात् स्व-मति कल्पना! अरे! फिर मर जाओगे। स्वच्छंदता तो कहाँ से कहाँ ले जाकर मार डालेगी।

अपनी मनमानी ही करे, वह स्वच्छंदता। स्वच्छंदता रुके, तो काम हो। अपनी होशियारी से धर्म और ध्यान किए, इसलिए कोई परिणाम नहीं आया। अपनी ही मति अनुसार चलने पर अनंत, अनंत जन्मों के लिए संसार का बंधन बंधेगा, इससे तो 'इस' स्टेशन पर नहीं आना अच्छा। जहाँ पर हो, वहीं बैठे रहो। वर्ना 'इस' (धर्म के) स्टेशन पर आने के बाद, यदि स्वच्छंदता रही और अपनी स्व-बुद्धि से चलोगे, तो अनंतानंत संसार में भटकते रहोगे।

स्वच्छंद जाए, तो खुद का कल्याण खुद कर सकता है। लेकिन खुद स्वच्छंद निकालने जाए, तो निकल नहीं सकता न? स्वच्छंद को पहचानना तो होगा न? तू जो कुछ करता है वह स्वच्छंद ही है। कृपालुदेव (श्रीमद् राजचंद्रजी) ने कहा था कि सजीवन मूर्ति के लक्ष्य के बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह जीव के लिए बंधन है, यह बात हमारा हृदय है। 'जो कुछ भी करे वह बंधन है, वही स्वच्छंदता है।' एक बाल के बराबर किया, तो भी स्वच्छंद ही है। व्याख्यान में जाए या साधु हो जाए, तप-त्याग करके शास्त्र पठन करे, वह सबकुछ स्वच्छंदता ही है। तू जो भी क्रिया करता है, वह ज्ञानीपुरुष से पूछकर करना, वर्ना वह स्वच्छंद-क्रिया है। उससे तो बंधन में पड़ते हैं।

'मैं चंदूभाई हूँ', वही स्वच्छंद। वह गया, तो फिर तप-त्याग या शास्त्र की भी ज़रूरत नहीं है। स्वच्छंदता थी, इसलिए अभी भी ठिकाना नहीं पड़ा। स्वच्छंदता छूटे, तो घंटेभर में मोक्ष हो जाए।

स्वच्छंद अर्थात् अंधा छंद। 'मैं चंदूभाई' वही स्वच्छंद। उससे तो अनंत जन्मों तक ठिकाना नहीं पड़ता। स्वच्छंदता जाए, तभी काम होगा।

यह संसार ऐसा है कि स्व-मति से नहीं चल सकते। अपने से पाँच अंश बड़े को खोज निकालना और उनके कहे अनुसार चलना, कब तक? जब तक ज्ञानीपुरुष नहीं मिलते तब तक। 'और कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुष को खोजकर, उनके चरणकमल में सर्वभाव अर्पण करके, उनके कहे अनुसार चलता जा। फिर यदि मोक्ष नहीं मिले, तो मेरे पास से लेना।' ऐसा श्रीमद् राजचंद्र जी कहा करते थे।

आज तो धर्म स्वच्छंदता से ही करते हैं। कितने ही सालों से आप किसी की आराधना करते आए हैं, लेकिन फिर भी यदि 'चंदूभाई' पुकारा कि तुरंत ही कान धरते हो या नहीं? इसके उपरांत चंदूभाई को ऐसा-वैसा कह दिया, तो तुरंत ही राग-द्वेष होते हैं। गुरु जी की इतनी आराधना की और यदि राग-द्वेष नहीं जाते, तो वह किस काम का? फिर भी यदि आपकी आराधना मोक्ष हेतु है, तो कभी न कभी ज्ञानीपुरुष मिल ही जाएँगे।

स्वच्छंदता से ज़रा भी नहीं चल सकते। अनजाने में अग्नि में हाथ डालें, तो जल जाते हैं या नहीं? अनजाने में किए गए कर्मों का फल मिलेगा ही। इसलिए पहले तू जान ले कि तू कौन है? और यह सब क्या है?

स्वच्छंद नामक दोष चले जाने के बाद ही 'दादा' के छंद में बैठेगा। स्वच्छंद जाने पर ही स्वरूपज्ञान होगा। जिसमें स्वच्छंदता कम हो, ऐसा मनुष्य कैसा होता है? जैसे मोड़ना चाहो मुड़ जाता है, ऐसा फ्लेक्सिबल होता है। उसे मोक्षमार्ग मिल जाता है। स्वच्छंदी को मोड़ें वैसे नहीं मुड़ता।

स्वच्छंदता अर्थात् बुद्धिभ्रम। इस जगत् में कोई दोषित है ही नहीं। स्वच्छंदता ही तेरा सबसे बड़ा दोष है।

भगवान ने मोक्षमार्ग पर जाने के लिए सुंदर पद्धतिवाला मिक्स्चर बनाया था, जो उन्होंने सबको बताया था। उन्होंने उस

मिक्स्चर का जो फॉर्मूला दिया था, आज वह फॉर्मूला ही नष्ट हो गया है। किसी के भी पास नहीं रहा। आज हम आपको वही फॉर्मूला फिर से देते हैं।

उस मिक्स्चर में २० % 'शास्त्रों' के, ७० % 'ज्ञानी का परम विनय' और १० % 'संसारी भावना' रखना और फिर पीना। तब लोग शास्त्र को ही पीते रहे, इसलिए बदहजमी हो गई। भगवान ने कहा था कि यह दवाई दिन में तीन बार हिलाकर पीना। इस पर कई तो, दिन में तीन बार हिलाते ही रहे। और कुछ तो 'हिलाकर पीना है, हिलाकर पीना है' ऐसा गाते ही रहे, बस गाते ही रहे!

यह किसके जैसा है? डॉक्टर की पुस्तक पढ़कर खुद दवाई बनाकर पीने जैसा है। वहाँ कोई खुद मिक्स्चर बनाने नहीं जाता, मरने का डर लगता है। एक जन्म के मरण से बचने के लिए डॉक्टर को पूछे बगैर दवाई नहीं बनाते, और अनंत जन्मों का मरण बिगाड़ने के लिए महावीर के, वीतरागों के, शास्त्रों का खुद मिक्स्चर बनाकर पी गए, इसलिए ज़हर हो गया है। भगवान ने इसे ही स्वच्छंद कहा है। अँधा छंद कहा है।

मोक्ष की गली अति सँकरी है। उसमें आड़ा चलने गया, तो समझ कि फँस ही गया। उसमें तो सीधा होकर ही चलना पड़ेगा, सरल होकर चलना पड़ेगा, तभी मोक्ष तक पहुँचना संभव है। साँप भी बिल में घुसने से पहले सीधा-सरल हो जाता है।

आड़ाई से ही सारा संसार खड़ा है। आड़ाई से ही मोक्ष अटका है। भगवान ने साधु होने से पहले सीधा होने को कहा है। चाहे कैसा भी साधुपन प्राप्त हुआ हो, यदि आड़ाई नहीं गई हो, तो वह किस काम का? आड़ाई तो भयंकर विकृत अहंकार है। यह आड़ाई तो कैसी है कि जब रियल सत्य सामने चलकर गले मिलने आए, तो भी उसे गले मिलने नहीं देता। आड़ाई उसे फिंकवा देती है।

बीवी-बच्चों का, अरे! अपना खुद का भी जितना जतन नहीं किया, उससे अनेक गुना इस आड़ाई का जतन किया है। इसलिए अनेक जन्मों से आड़ाई के कारण ही भटक रहा है। आड़ाई अंधा बना देती है। सच्चा मार्ग सूझने नहीं देता। आड़ाई ही स्वच्छंदी बनाती है और स्वच्छंदता तो प्रत्यक्ष ज़हर समान ही है।

व्यवहार में यदि कोई आड़ा हुआ, तो कोई उसका भाव नहीं पूछता और यदि आड़ाई कम हो, तो उसको हर कोई पूछता है, लोगों में उसकी पूजा होती है। तब फिर मोक्षमार्ग में आड़ाई चलेगी क्या?

केवलज्ञान होने तक आड़ाई रहती है। आड़ाई रूपी समंदर को पार करना है। आप आड़ाई के इस पार खड़े हैं और जाना है उस पार। इस संसार में आड़ाई के साथ आड़ाई रखने से समस्या नहीं सुलझेगी। आड़ाई सरलता से दूर होती है। साँप भी बिल में जाता है, तब आड़ा-टेढ़ा होकर नहीं जाता, सीधा होकर बिल में घुसता है। मोक्ष में जाना हो, तो सरल होना पड़ेगा। गाँठे निकालकर अबुध होना पड़ेगा।

शंका

जैसे-जैसे निज कल्पना से, स्व-मति से शास्त्र पढ़ता है, वैसे-वैसे आड़ापन बढ़ता जाता है। बल्कि उससे आवरण बढ़े! यदि पढ़ने से कोई प्रकाश प्राप्त हुआ होता, तो फिर अब भी ठोकरें क्यों लगती हैं? ठोकरें तो अँधेरे में लगती हैं। प्रकाश में कैसे लगेंगी? यदि 'कुछ जाना', तो क्या उससे एक भी चिंता कम हुई? उल्टा यह सही है या वह सही इसकी उलझन बढ़ी, ज़्यादा शंकित हुआ, और जहाँ शंका वहाँ अज्ञान। शंका के सामने आत्मा खड़ा नहीं रहता। ज्ञान तो वह है, कि जो संपूर्ण नि:शंक बनाए।

ज्ञान वह कहलाता है कि भीतर एक भी परमाणु नहीं हिले,

शंका तो आत्मा की शत्रु है। पूरा आत्मा फिंकवा दे। इसलिए जहाँ शंका पैदा हो, उसे तो जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। आत्मा प्राप्त होने के बाद, आत्मा में स्थित होने के बाद, ऐसी कौन सी चीज़ है जो हिला सके? इस संसार में ऐसा कौन सा तत्व है कि जो 'आपका खुद का' है, उसे छीन सके? शंका का कीड़ा तो भयंकर रोग है। पता भी नहीं चलता कि कब खड़ी हुई और कितना नुकसान कर गई? एक जन्म की हम गारन्टी देते हैं कि 'व्यवस्थित' के नियम में कोई बदलाव होनेवाला नहीं है, फिर शंका करने का रहा ही कहाँ? बिना ठौर-ठिकाने का संसार कि जहाँ घर से निकला, तो फिर जब वापस घर लौटे तभी सच्चा। ऐसे संसार में कहाँ शंका करनी और कहाँ शंका नहीं करनी? और जो हो रहा है, वह क्या पहले नहीं हुआ था? इसमें नया क्या है? इसकी फिल्म तो पहले ही उतर चुकी है न? फिर उसमें क्या है? किसी के लिए भी शंका करने जैसा नहीं है। वहाँ ये लोग तो मोक्ष के बारे में शंका करते हैं, वीतराग पर शंका करते हैं! धर्म के लिए शंका करते हैं! अरे, कहीं का कहीं फ़िंक जाएगा यदि शंका की तो!

अनंत जन्मों का देहाध्यास यदि छूटे, तभी आत्मा प्राप्त होता है। देहात्म-बुद्धि, आत्मा प्राप्त नहीं होने देती। उल्टा ही दिखाती है, क्योंकि देहात्म बुद्धि संसार का ही रक्षण करती है और संसार में ही भटकाती है। यह देहात्म-बुद्धि तो निरंतर खुद के स्वरूप का ही अहित करती रहती है। कभी भी सीधा नहीं सूझने देती, उल्टा ही दिखलाती है। एक बार सीधी राह पर चल पड़ा, तो समस्या का हल निकल ही जाए, ऐसा है। सीधी राह चलना मतलब समकित होना। उल्टी राह चलना मतलब देहात्म बुद्धि में रहना और आत्मा में आत्म बुद्धि होना, वह समकित कहलाता है। आत्मा में आत्मरूप अर्थात आत्म स्वरूप होना, वह ज्ञान कहलाता है। देहात्म बुद्धि को फ्रेक्चर करके, आत्मबुद्धि उत्पन्न हो, तभी मुक्तानंद प्रकट होता है। देहात्म बुद्धि ही देहाध्यास करवाती है।

मताग्रह

कईं लोग तो मत में पड़ गए हैं, पक्ष में पड़ गए हैं, अतः पक्ष की नींव मज़बूत करते रहते हैं। मताग्रही हो गए हैं, इसलिए अपने ही पक्ष की नींव दिन-रात मज़बूत करने में मनुष्य-जन्म व्यर्थ गँवा रहे हैं। अरे! मोक्ष में जाना है या मत में, पक्ष में पड़े रहना है? मोक्ष और पक्ष, ये दोनों विरोधाभासी हैं। पक्षातीत हो जाएँ, तभी मोक्षमार्ग मिलता है। जहाँ निष्पक्षपातीपना है, वहीं भगवान हैं, वहीं मोक्ष है।

मतांध कभी भी 'सत्य वस्तु' को नहीं पा सकता, क्योंकि खुद के मत का ही आग्रही होता है, इसलिए फिर दूसरे के सत्य को कैसे स्वीकारे? और जिसका आग्रह रखते हैं, वह टेम्परेरी वस्तु का है या परमानेन्ट वस्तु का? चाहते हैं परमानेन्ट वस्तु और आग्रह रखते हैं टेम्परेरी वस्तुओं का। तब फिर आत्मा कहाँ से प्राप्त होगा? सर्व रीति से संपूर्ण निराग्रही होकर, एक मात्र आत्मा जानने का आग्रह रखे, तभी आत्मा प्राप्त होगा। सारी कामनाओं को एक ओर रखकर, मात्र 'सत्य' को ही जानने का कामी हो जाए, तब ही 'परम सत्य' की प्राप्ति होगी।

दृष्टिराग

मतांध की तुलना में दृष्टिरागी का रोग बहुत भारी है, जो अनंत जन्मों तक नहीं निकलता। जब तक समकित नहीं हो जाता, तब तक अंधश्रद्धा रहती ही है। जिसे मिथ्यात्व है, उसे अंधश्रद्धा होती है। भगवान को तो अंधश्रद्धा का जितना एतराज़ नहीं है, उतना इन दृष्टिरागियों का है, ऐसा कहते हैं। दृष्टिरागी अर्थात् क्या? ३६० डिग्रियाँ हैं, व्यू पोइन्ट हैं और उनकी ३६० दृष्टियाँ हैं। उनमें एक-एक दृष्टि पर अनंत दृष्टियाँ हैं। उनमें से किसी एक दृष्टि पर, उस व्यू पोइन्ट पर संपूर्ण राग उत्पन्न हो जाना वह दृष्टिराग

है। दृष्टिराग कभी भी नहीं जाता। अनंत जन्मों की भटकन के बाद, जब ज्ञानीपुरुष से भेंट हो जाए, तब जाकर उसका दृष्टिराग रूपी रोग अपसेट होता है।

दृष्टिरागी के आत्मा के ऊपर आवरण छाया होता है। संसार के राग-द्वेष जा सकते हैं, लेकिन दृष्टिराग नहीं जाता। उसका उपाय नहीं है। इस जन्म और अनंत जन्मों में मरे, तब भी यह रोग नहीं जाता, मिटता ही नहीं।

दृष्टिराग के क्या लक्षण हैं? जिसमें वीतरागता का एक भी लक्षण नहीं, वह। जिसे दृष्टिराग है, उसे हमारी बात समझ में नहीं आती। बाकी कैसा भी अनपढ़ हो, तो भी उसे हमारी बात समझ में आ जाती है।

दृष्टिराग तो राग का भी राग है। उसे तो जड़ से ही निकाल दें , तभी सत्य समझ में आएगा।

बैरभाव

प्रश्नकर्ता : यदि साँप काटने आए, तो क्या हमें उसे नहीं मारना चाहिए?

दादाश्री : लेकिन हम ही पीछे हट जाएँ न। यदि ट्रेन सामने से आ रही हो, तब क्या करोगे? उसी तरह, हट जाना।

साँप तो पँचेन्द्रिय जीव है। उसे यदि मारें तो वह बैर बाँधता है। उसे पता चलता है कि मुझे बिना गुनाह के मार रहे हैं। फिर अगले जन्म में वह हमीं को मारता है।

बैर से ही सारा संसार खड़ा है न? अरे, इस चींटी को भी ऐसा होता है कि यदि मेरे पास शक्ति होती, तो मैं तुझी को सताती। यह खटमल भी बत्ती जलाने पर त्रस्त होकर भाग जाता है, भयभीत हो जाता है, कि मुझे मार डालेंगे। साथ-साथ उसे ऐसा भी होता है कि मैं अपना भोजन खा रहा हूँ, उसमें

मुझे क्यों मार रहे हैं? वह जो रक्त पीता है, वह भी उसके ऋणानुबंध का ही है।

दो प्रकार के बंधन हैं। एक बैरभाव का, दूसरा प्रेमभाव का। प्रेमभाव में पूज्यभाव होता है। यह संसार बैर से ही बंधा हुआ है। स्नेह तो चिपकनेवाले, चिपचिपे स्वभाव का है, वह सूख जाता है। बैर नहीं जाता। दिन-दिन बढ़ता जाता है।

संसार-सागर के स्पंदन

संसार-सागर परमाणुओं का सागर है। जब उसमें स्पंदन खड़े होते हैं, तब लहरें उत्पन्न होती हैं और वे लहरें फिर दूसरों से टकराती हैं। इससे फिर दूसरे में भी स्पंदन खड़े होते हैं और फिर तूफ़ान शुरू होता है। यह सब परमाणुओं में से ही उपजता है। आत्मा उनमें तन्मयाकार हो जाए, तो स्पंदन ज़ोरों में शुरू होते हैं।

इस दुनिया में भी सागर जैसा ही है। एक भी स्पंदन उठा, तो अनेकों प्रति स्पंदन उठते हैं। सारा संसार स्पंदन से ही उत्पन्न हुआ है। सभी तरह के सभी स्पंदन सच्चे हैं और तालबद्ध सुनाई देते हैं।

किसी बावड़ी के पास जाकर तू अंदर मुँह डालकर ज़ोर से चिल्लाए कि तू चोर है, तो बावड़ी में से क्या जवाब आएगा? 'तू चोर हैं।' तू कहे कि तू राजा है, तो बावड़ी भी कहेगी, कि तू राजा है। और 'तू महाराजा है', ऐसा कहे तो बावड़ी 'तू महाराजा है' ऐसे जवाब देगी। वैसे ही यह जगत् भी बावड़ी जैसा है। तू जैसा कहेगा वैसे स्पंदन उठेंगे। 'एक्शन एन्ड रिएक्शन आर इक्वल एन्ड ऑपोज़िट' ऐसा नियम है। इसलिए जैसे आपको पसंद हों, वैसे स्पंदन डालना। सामनेवाले को चोर कहा, तो तुझे भी 'तू चोर है' ऐसा सुनना पड़ेगा और 'राजा है', ऐसा सामनेवाले को कहेगा, तो तुझे 'राजा है', ऐसा सुनने को मिलेगा। हमने

तो तुझे परिणाम बताए, लेकिन स्पंदन पैदा करना तेरे हाथ की बात है। इसलिए तुझे अनुकूल आए, वैसा स्पंदन डालना।

यदि हम पत्थर नहीं डालें, तो हममें स्पंदन नहीं उठते और सामनेवाले में भी तरंगे (शेखचिल्ली जैसी कल्पनाएँ) नहीं उठतीं और हमें भी कोई असर नहीं पहुँचता। लेकिन क्या हो? सभी लोग स्पंदन करते ही हैं। कोई छोटा तो कोई बड़ा स्पंदन करता है। कोई कंकड़ डालता है, तो कोई ढेला डालता है। ऊपर से फिर स्पंदन के साथ अज्ञान है, इसलिए बहुत ही फँसाव है। ज्ञान हो और फिर स्पंदन हों, तो हर्ज नहीं। भगवान ने कहा है कि स्पंदन मत करना। लेकिन लोग बिना स्पंदन किए रहते ही नहीं न? देह के स्पंदनों में हर्ज नहीं है, लेकिन वाणी और मन के स्पंदनों की मुश्किल है। इसलिए इन्हें तो बंद ही कर देना चाहिए, यदि सुख से रहना चाहो तो, जहाँ-जहाँ पत्थर फेंके हैं, वहाँ-वहाँ स्पंदन उठने ही वाले हैं। जब स्पंदन बहुत इकट्ठे हो जाते हैं, तब उन्हें भुगतने नर्क में जाना पड़ता है और उन्हें भुगतने के बाद हलका होकर, वापस आता है। हलके स्पंदन इकट्ठे किए हों, तो वह देवगति भोगकर वापस आता है। सागर बाधा नहीं डालता, लेकिन हमारे द्वारा डाले गए पत्थरों के स्पंदन (उठनेवाली तरंगे) ही बाधा डालते हैं। यदि सागर की ओर ध्यान नहीं दिया, तो वह शांत ही है और जहाँ-जहाँ गड़बड़ की थी, उसी के ही, सागर के वही स्पंदन बाधक होते हैं।

भगवान ने क्या कहा है कि एक समय के लिए भी खुद, खुद का नहीं हुआ है। स्पंदनों में ही सारा समय गुज़ारता है। वे भी लहरें बनाते हैं और हम भी लहरें बनाते हैं, इसलिए डूबते भी नहीं और तैर भी नहीं पाते।

देह के स्पंदन बंधन नहीं करते हैं, लेकिन मन के और वाणी के स्पंदन बंधन करते हैं। इसलिए भगवान ने उन्हें समरंभ, समारंभ और आरंभ के स्पंदन कहे हैं। पहले मन में स्पंदन उठता

है। भगवान ने उसे समरंभ कहा है। जैसे चर्चगेट जाने का अंदर पहले विचार आया वह समरंभ। फिर अंदर ही वहाँ जाने की योजना बनाता है और डिसीज़न लेता है, निश्चय करता है और कहता है कि हमें तो चर्चगेट ही जाना है। ऐसे बीज बोया, उसे समारंभ कहा है। फिर वह पूरा निकल पड़ा चर्चगेट जाने के लिए, पूरा ही वह स्पंदनों की तरंगों में बह गया, उसे आरंभ कहा है। अब समस्या का हल कैसे हो?

मन का यदि तिरस्कार हो, तब फिर देख लो उस तिरस्कार के स्पंदन! त्यागियों का तिरस्कार कठोर होता हैं। वीतराग तो, लाख तिरस्कार मिलें, फिर भी स्पंदन पैदा नहीं होने देते। खोखे (पुद्‌गल) में कभी स्पंदन पैदा करना ही मत। उनका तो नाश होनेवाला है, फिर चाहे वे हीरे के खोखे हों या मोती के। उनमें स्पंदन पैदा करके क्या मिलनेवाला है?

खुद अपने ही मन से फँसा है। ऊपर से शादी की, तो मिश्रचेतन में फँस गया। वह भी फिर पराया। यदि बाप के साथ स्पंदन खड़े होते हैं, तो वाइफ के साथ क्या नहीं होंगे? वाइफ तो मिश्रचेतन है, अतः वहाँ क्या करें? स्पंदन ही बंद कर दो। बाप के साथ स्पंदन चालू रखेगा तो चलेगा, लेकिन वाइफ के साथ स्पंदन खड़े हुए बगैर रहते ही नहीं न?

जीभ का, वाणी का, गड़बड़-घोटाला क्या है? वह अहंकार है पूर्वजन्म का। उस अहंकार से जीभ चाहे जैसा कह देती है और उसमें स्पंदनों का टकराव खड़ा होता है। आज तो जो भी दुःख हैं, वे अधिकतर जीभ के, वाणी के स्पंदनों के ही हैं।

इस कलियुग में तो अच्छे कर्म करने का अवसर ही नहीं मिलता और खोटे कर्मों का हिस्सेदार होना पड़ता है। ज्ञान मिलने के बाद अगर गलत कर्मों में गलत हो रहा हो, तो ज्ञान होने के कारण महात्माओं को अच्छा नहीं लगता। यानी कि कार्य गलत हो या सही, तो भी वह निकाली बाबत हो गई और उतने तक

ही स्पंदन खड़े होते हैं, जो शांत हो जानेवाले हैं। लेकिन जिसे यह गलत हो रहा है, ऐसा भी मूढ़ात्म दशा में नहीं लगता है, उससे तो एक्शन यानी कार्य के स्पंदन और अज्ञान वश नये पैदा होते रिएक्शन के भावों के स्पंदन, इस प्रकार दोगुने स्पंदन होते हैं। अज्ञान है, इसलिए स्पंदन कब पैदा हो जाएँगे यह कहा नहीं जा सकता, फिर चाहे वह कोई भी हो, संसारी हो या त्यागी हो। क्योंकि जहाँ अज्ञान है, वहाँ भय बना रहता है और जहाँ भय है, वहाँ स्पंदन अवश्य होंगे।

एक चिड़िया दर्पण के सामने आकर बैठ जाए, तो शीशा क्या करे उसमें? शीशा तो जैसा था वैसा ही है, लेकिन अपने आप दूसरी चिड़िया अंदर आ पड़ी है। उसी के जैसी आँखे, वैसी ही चोंच दिखती है, और इस कारण उस चिड़िया की मान्यता बदलती है और अपने जैसी ही दूसरी चिड़िया है, ऐसा मान लेती है। इसलिए शीशेवाली चिड़िया को चोंच मारती रहती है। ऐसा है यह सब। स्पंदन से संसार खड़ा हुआ है। बिलीफ में ज़रा सा बदलाव आया कि वैसा ही दिखाई देता है। फिर जैसी कल्पना करें, वैसा हो जाता है। शीशा तो एक आश्चर्य है। लेकिन लोगों को सहज हो गया है, इसलिए दिखाई नहीं देता। यह तो ऐसा है न कि लोग सारा दिन शीशे में चेहरा देखते रहते हैं, कंघी करते हैं, पफ-पाउडर लगाते हैं, इसलिए ये शीशे भी सस्ते हो गए हैं। वर्ना शीशा अलौकिक चीज़ है। कैसी है पुद्‌गल की करामात! चिड़िया शीशे के सामने बैठती है, तो उसका ज्ञान नहीं बदलता, लेकिन उसकी बिलीफ, मान्यता बदलती है। उसे ऐसी बिलीफ बैठती है कि अंदर चिड़िया है इसलिए चोंच मारती रहती है। ऐसा ही इस संसार में है। एक स्पंदन उछाला, उसके सामने कितने ही स्पंदन उछलते हैं। ज्ञान नहीं बदलता, बिलीफ बदलती है। बिलीफ हर क्षण बदलती है। यदि ज्ञान बदलता, तो आत्मा ही नहीं रहता। क्योंकि आत्मा और ज्ञान दोनों वस्तुएँ एक दूसरे से अलग नहीं है। आत्मा का स्वरूप ही ज्ञान स्वरूप है। जैसे वस्तु और वस्तु के गुण साथ

ही रहते हैं और अलग नहीं होते, वैसे। यह तो ऐसा है कि बिलीफ से कल्पना करें, वैसा हो जाता है।

क्लेश

'क्लेश के वातावरण में जिसे ज़रा भी क्लेश नहीं होता, वही मोक्ष है।'

क्लेशमय वातावरण तो आता ही रहता है। क्या धूप नहीं निकलती? दरवाज़े हवा से फट-फट नहीं होते? ऐसा तो होता रहता है। जब दरवाज़े टकरा रहे हों, तो थोड़े दूर खड़े रहें। यदि क्लेश का वातावरण नहीं होता, तो मुक्ति का स्वाद कैसे लेते? 'दादा' का मोक्ष ऐसा है कि चारों ओर क्लेश का वातावरण होने के बावजूद भी मुक्ति रहा करे!

भगवान ने किसी चीज़ को बंधन नहीं कहा है। खाते हैं, पीते हैं वह प्रकृति है, लेकिन आत्मा का क्लेश मिटा, वही मोक्ष। बाकी खिचड़ी हो या कढ़ी, उसमें कुछ बदलनेवाला नहीं है।

चाहे किसी भी समय, चाहे कैसा भी वातावरण हो फिर भी क्लेश न हो, तो तूने सारे शास्त्र पढ़ लिए। बाहर कैसा भी वातावरण हो और उसमें वमन होने जैसा भी लगे और मुँह पर हाथ रखकर उसे दबाने का प्रयत्न करके खुद को स्वच्छ दिखाए, वैसे ही भीतर क्लेश होने पर भी ज्वाला न भड़के, तो समझना कि सारे शास्त्र पढ़ लिए। गुरु-शिष्य में भी क्लेश हो जाता है!

ज्ञानीपुरुष मिलने के बाद चाहे कैसा भी क्लेश का वातावरण हो, भीतर क्लेश खड़ा ही नहीं होता न? 'दादा' ने महात्माओं को यह कैसा ज्ञान दिया है? कभी क्लेश नहीं हो और वीतरागता जैसा सुख रहे। क्लेश खत्म हुआ, उसी को मुक्ति कहते हैं। यहीं मुक्ति हो गई।

क्लेश में तो क्या होता है? जी जलता ही रहता है। बुझाने पर भी बुझता नहीं। जी कोई जलाने के लिए नहीं है। कपड़ा

जल रहा हो, तो जलने देना, लेकिन जी मत जलाना। यह तो सारा दिन, रात-दिन क्लेश करते ही रहते हैं। थोड़ी देर मोह में डूब जाते हैं, और फिर क्लेश से जलते रहते हैं। सारा संसार क्लेश में ही डूबा है। आज तो सभी 'क्लेशवासी' ही हैं। वह तो, मूर्च्छा के कारण भूल जाते हैं। बाकी क्लेश मिटता नहीं और क्लेश जाए, तो मुक्ति!

आज तो सर्वत्र क्लेश की तरंगे फैल गई हैं। खाते समय भी क्लेश और यदि ज़्यादा क्लेश हो जाए, तो खटमल मारने की दवाई ले आते हैं। आजकल तो जब सहन नहीं होता, तब लोग खटमल मारने की दवाई पी लेते हैं। लेकिन क्या इस से समस्या का अंत हो गया? यह तो आगे धकेला, जो कि कई गुना होकर वापिस आएगा और उसे भुगतना पड़ेगा। उसके बजाय किसी तरह यह समय बिता दो न? वर्ना यह तो निरी नासमझी ही है।

ये दु:ख आए कहाँ से? दुखियारों की शरण ली, इसीलिए। सुखी मनुष्य की शरण ली होती, तो दु:ख आते ही कहाँ से? 'दादा' तो संपूर्ण सुखी हैं, इसलिए उनकी शरण में आने के बाद कोई कठिनाई आएगी ही कैसे? जो अवसरवादी हैं और जिन्हें कोई न कोई मतलब है, वे दुखियारे हैं। ऐसों की शरण ली, तो फिर दु:खी ही होंगे न? जो दुखियारा है, खुद अपनी दरिद्रता दूर नहीं कर सका है, तो वह हमारी क्या दूर करेगा। जो पूर्ण स्वरूप हैं, अनंत सुख के धाम हैं, जिन्हें किसी भी तरह का कोई स्वार्थ नहीं हैं, जिन्हें कोई इच्छा नहीं रही, उनके पास जाकर उनकी शरण लेने पर ही पूर्ण हो सकते हैं।

क्लेश जब बढ़ जाए, तो उसे कलह कहते हैं। इसलिए कलह करनेवाले के साथ लोग मैत्रीभाव कैसे रख सकते हैं? यह तो खट्टी छाछ को फीकी करने जैसा है, इससे तो वे खुद भी खट्टे हो जाएँगे। इनसे तो दूर रहें, तो अच्छा या फिर ज्ञानी हुए होते, तो अच्छा। जो ज्ञानी हों वे तो जानते हैं कि ऐसा रिकॉर्ड

तो चारों ओर बजता है। भीतर आत्मा तो शुद्ध है न? लेकिन जेल में आ फँसे हैं, तो क्या हो? क्लेश का जंजाल तो कैसा! घर के सारे लोग एक के ऊपर टूट पड़ते हैं। फिर घर में ही युद्ध! फिर क्या दशा हो? यदि मित्र ने कहा हो कि घर पर भोजन के लिए आना, तब वह बेचारा कहेगा, 'नहीं भैया, मैं नहीं आ सकता। यहाँ घर में फिर क्लेश होगा।' बेचारा शांति से सो तक नहीं पाता। क्षण-क्षण क्लेश, वह भी अनिवार्य रूप से भुगतना पड़ता है। घर में ही, वहीं उसी क्लेशमय वातावरण में रहना पड़ता है। कर्मों का कैसा उदय! वे भी फिर अपने खुद के ही सगे संबंधियों के साथ! वेदना से मुक्त नहीं हो सकें, ऐसा है यह संसार।

एक भाई मेरे पास आए थे। मुझसे कहा, 'दादाजी मैंने विवाह तो किया है, लेकिन मुझे मेरी बीवी पसंद नहीं है।'

दादाश्री : क्यों भाई, पसंद नहीं आने का कारण क्या है?

प्रश्नकर्ता : वह थोड़ी लंगड़ी है, लंगड़ाती है।

दादाश्री : तेरी बीवी को तू पसंद है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दादाजी, मैं तो पसंद आऊँ, वैसा ही हूँ न? खूबसूरत हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ, कमाता हूँ और कोई शारीरिक त्रुटि भी नहीं है।

दादाश्री : फिर तो भूल तेरी ही है। तूने ऐसी कौन सी भूल की थी कि तुझे लंगड़ी पत्नी मिली और उसने कैसे अच्छे पुण्य किए थे कि उसे तेरे जैसा अच्छा पति मिला?

अरे! यह सब अपने ही किए हुए कर्म, अपने सामने आते हैं, उसमें सामनेवाले का दोष क्यों देखता है? जा, तेरी भूल भुगत ले और दोबारा ऐसी भूल मत करना। वह समझ गया और उसकी लाइफ फ्रेक्चर होते-होते बच गई और सुधर गई।

मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ भाग है, क्लेश को मिटाना। क्लेश मिट गया वही सबसे बड़ा सुख है। ज्ञान भले ही न हो पर घर में धरम-करम है, ऐसा कब कह सकते हैं? तब कहे, घर में चाहे जैसा वातावरण हो, खुद सहन कर ले और टकराव हो फिर भी क्लेश पैदा न करे, धमाका न करे, वही खानदानी कहलाता है। तब तक घर में भगवान का वास रहता है। जहाँ घर में क्लेश हो, वहाँ सबकुछ खत्म हो जाएगा। भगवान का वास तो रहता ही नहीं और लक्ष्मी जी भी चली जाती हैं।

जो धार्मिक परिवार हो, वह क्लेश होने नहीं देता और यदि साल में एकाध बार हो जाए, तो दरवाज़े बंद कर लेता है और घर के अंदर ही दबा देता है। ऐसा क्लेश पुनः नहीं हो यही लक्ष्य में रखता है।

संपूर्ण प्रामाणिकता, लेने से पहले वापस लौटाना है, ऐसी भावना आदि और लक्ष्मी के नियमों का पालन करें, तो लक्ष्मी जी राज़ी रहती हैं। बाकी, लक्ष्मी जी के कायदों का पालन नहीं करें और लक्ष्मी जी की पूजा करें, तो वह कैसे राज़ी हों?

भगवान कहते हैं कि यह संसार कब तक है? तब कहे, मन क्लेशयुक्त रहे, तब तक। मन क्लेशरहित हुआ, तो मुक्ति। फिर जहाँ मन जाए वहाँ समाधान रहता है।

यह छोटा बच्चा यहाँ हमारी वाणी सुनता है, तो उसे भी ठंडक लगती है। वह भी ठंडे पानी को ठंडा और उबले हुए पानी को उबला हुआ समझता है। घर में झगड़ा हो तब देखता है कि पापा ने मम्मी से ऐसा कहा और मम्मी ने पापा से ऐसा कहा। वह समझ होती है उसमें। इसलिए फिर मन ही मन सोचता है कि फलाँ का दोष है। मैं छोटा हूँ इसलिए मेरी नहीं चलती, लेकिन बड़ा होकर बताऊँगा। बच्चा तो क्लेशवाली दृष्टि भी समझता है और शांत दृष्टि भी समझता है।

क्लेश का काल तो जैसे-तैसे करके बीत जाता है, लेकिन उस समय अनंत जन्मों के बंधन बाँध लेता है। अनंत जन्मों के क्लेश के बीज भरे पड़े हैं, इसलिए सामग्री मिलते ही क्लेश खड़ा हो जाता है। ज्ञानीपुरुष भरे हुए क्लेश बीजों को जला डालते हैं। फिर क्लेश खड़ा नहीं होता।

श्रीमद् राजचंद्र जी कहते हैं, 'जिनका घर एक दिन भी बिना क्लेश का जाएगा, उन्हें हमारे नमस्कार हैं।'

वास्तव में सुख-दुःख क्या है?

दुःख तो किसे कहते हैं? ज्ञानी की संज्ञा में तो दुःख है ही नहीं। लोकसंज्ञा से ही दुःख हैं। ज्ञानी की संज्ञा से दुःख कभी आता ही नहीं और लोकसंज्ञा से तो इधर गया, तो भी दुःख और उधर गया, तो भी दुःख, वहाँ कभी भी सुख नहीं है।

दुःख तो कब कहलाता है? कि खाने गए हों और खाना नहीं मिले और अंदर पेट में आग लगी हो, उसे दुःख कहते हैं। प्यास लगी हो और पीने को पानी नहीं मिले, वह दुःख है। नाक दबाने पर पाँच ही मिनट में दम घुटने लगे वह दुःख है। बाहर से चाहे जितना टेन्शन आ जाए, तो चलेगा, लेकिन भूख-प्यास और हवा का नहीं चलेगा। क्योंकि और सारा टेन्शन तो कितना भी क्यों न आए, सहन होता है, उससे मर नहीं जाते। लेकिन लोग तो बिना काम के टेन्शन लिए फिरते हैं।

प्रश्नकर्ता : एक को सुख पहुँचता है और दूसरे को दुःख ऐसा क्यों?

दादाश्री : सुख-दुःख कल्पित हैं, आरोपित हैं। जिसने कल्पना की कि यह अच्छा है तो सुख लगता है। सामनेवाले को जैसा पसंद हो, वैसा करें, तो पुण्य बंधता है। बुद्धि का आशय बदलता रहता है, लेकिन मरते समय जो आशय होता है, उसके अनुसार परिणाम आता है।

यह इवोल्युशन (उत्क्राँति) है। पहले मील का ज्ञान हो, वह दूसरे मील पर फिर उत्क्राँत होता है। पिछले जन्म में चोरी का अभिप्राय हो गया हो, लेकिन इस जन्म में ऐसा ज्ञान हो कि यह गलत है, तो उसके मन में रहता है कि यह गलत हो रहा है। लेकिन चोरी तो पहले के आशय में सेट हो चुकी थी और इसलिए चोरी होती ही रहती है। एग्रीमेन्ट फाड़ा नहीं जा सकता। जो एग्रीमेन्ट हो चुका है, वह अधूरा नहीं रहता, पूरा होता ही है। उससे पहले मरता नहीं है। हम क्या कहते हैं कि तेरा जो उल्टा आशय है, उसे तू बदल दे। चोरी नहीं करनी है, ऐसा तू बार-बार निश्चय करता रह। जितनी बार चोरी करने का विचार आए, उतनी बार तू उसे जड़ से उखाड़ता रहे, तो तेरा काम होगा। सुल्टा होता जाएगा।

संसार के लोगों को व्यवहार धर्म सिखलाने के लिए हम कहते हैं कि परानुग्रही बन। अपने खुद के बारे में विचार ही न आए। लोककल्याण हेतु परोपकारी बन। यदि आप अपने खुद के लिए खर्च करोगे, तो वह गटर में जाएगा और दूसरों के लिए कुछ भी खर्च करना, वह आगे का एडजस्टमेन्ट है।

शुद्धात्मा भगवान क्या कहते हैं? 'जो दूसरों का ध्यान रखता है, मैं उसका ध्यान रखता हूँ और जो खुद का ही ध्यान रखता है, उसे मैं उसके हाल पर छोड़ देता हूँ।'

दोष दृष्टि

प्रश्नकर्ता : सामनेवाले में जो दोष दिखते हैं, वह दोष खुद में होता है क्या?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कोई नियम नहीं है, फिर भी ऐसा दोष होता है। यह बुद्धि क्या करती है? खुद के दोष ढँकती है और दूसरों के देखती है। यह तो टेढ़े इंसान का काम है। जिसकी भूलें नष्ट हो गई हो, वह दूसरों की भूलें नहीं देखा

करता। ऐसी बुरी आदत ही नहीं होती, सहज ही निर्दोष देखता है। ज्ञान ऐसा होता है कि ज़रा सी भी भूल नहीं देखता।

सभी के दोष, वे तो गटर के समान है। ये बाहर के गटर हम खोलते नहीं हैं, छोटे बच्चे को भी वह अनुभव होता है। रसोईघर रखा है तो गटर तो होना ही चाहिए न? लेकिन उस गटर को खोलना ही मत। किसी में कोई दोष होता है, किसी में कोई ओर। कोई चिढ़ता है, कोई उतावला होकर घूमता है, ऐसा देखना वह गटर खोला कहलाता है। उसके बजाय गुणों को देखना अच्छा है। गटर तो अपना खुद का ही देखने योग्य हैं। यदि पानी भर गया हो, तो खुद का गटर साफ करना चाहिए। यह तो गटर भर जाता है, लेकिन समझ में नहीं आता और समझ में आए, तो भी करे क्या? आखिर वह अभ्यस्त हो जाता है, उसी से तो ये सारे रोग पैदा होते हैं। शास्त्र पढ़कर गाते हैं कि 'किसी की निंदा मत करना,' लेकिन निंदा तो चालू ही रहती है।

किसी के बारे में ज़रा सा भी उल्टा बोले, तो उतना नुकसान तो हुआ ही समझो। इन बाहरवाले गटर के ढक्कन को कोई नहीं खोलता, लेकिन लोगों के गटर के ढक्कन खोलते ही रहते हैं।

किसी की निंदा करने का मतलब है, अपना दस रुपये का नोट देकर एक रुपया लेना। निंदा करनेवाला हमेशा खुद का ही नुकसान करता है। जिसका कोई फल नहीं मिलता हो, ऐसी मेहनत हम नहीं करते। निंदा से आपकी शक्तियों का दुर्व्यय होता है। यदि हमें पता चले कि यह तिल नहीं है लेकिन रेत है, तो फिर उसे पेलने की मेहनत क्यों करें? टाइम और एनर्जी दोनों वेस्ट होते हैं। निंदा करके तो सामनेवाले का मैल धो दिया और तेरा अपना कपड़ा मैला किया। इसे अब कब धोएगा, मुए?

यह हमारे 'मुआ' शब्द का भाषांतर या अर्थ आप क्या करेंगे? इस शब्द का गूढ़ अर्थ है। इसमें उलाहना तो है, लेकिन तिरस्कार

नहीं है। बहुत गहरा शब्द है। हमारी ग्रामीण भाषा है, लेकिन है पावरफुल। एक-एक वाक्य पर विचार करने लगें, ऐसा है। क्योंकि यह तो ज्ञानी की हृदयस्पर्शी वाणी है, साक्षात सरस्वती!

स्मृति

प्रश्नकर्ता : दादाजी, भूतकाल नहीं भुला पाते, ऐसा क्यों?

दादाश्री : भूतकाल अर्थात् याद करने पर याद नहीं आता और भूलना चाहें, तो भुलाया नहीं जाता, उसका नाम भूतकाल। सारे संसार की बहुत इच्छा है कि भूतकाल भुलाया जा सके, लेकिन बिना ज्ञान के संसार की विस्मृति नहीं हो सकती।

यह याद आती है, वह राग-द्वेष के कारण है। जिसका जिस चीज़ पर जितना राग है, उतनी वह चीज़ उसे ज़्यादा याद आया करती है और यदि द्वेष हो, तब भी वह चीज़ ज़्यादा याद आया करती है। बहू सास को भूलने के लिए पीहर जाती है, लेकिन भूल नहीं पाती, क्योंकि द्वेष है, अच्छी नहीं लगती। जबकि पति याद आता है, क्योंकि सुख दिया था इसलिए राग है। जिसने बहुत दुःख दिया हो या बहुत सुख दिया हो, वही याद आता है, क्योंकि राग-द्वेष से बंधे हैं। जब उस बंधन को मिटा देंगे, तब विस्मृत हो जाएगा। अपने आप ही विचार आया करें, उसे 'याद' आना कहते हैं। ये सब धो दिया जाएँ, तो स्मृति बंद हो जाती है और उसके बाद मुक्त हास्य उत्पन्न होता है। स्मृति है इसलिए तनाव रहता है। मन खिंचा हुआ रहता है, इसलिए मुक्त हास्य उत्पन्न नहीं होता। सबको अलग-अलग याद आया करता है। एक को याद आता हो वह दूसरे को याद नहीं आता, क्योंकि सबके अलग-अलग ठिकानों पर राग-द्वेष होते हैं। स्मृति राग-द्वेष के कारण है।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, उसे निकालनी तो पड़ेगी न?

दादाश्री : स्मृति इटसेल्फ बोलती है कि हमें निकालो, धो

डालो। यदि स्मृति नहीं आती, तो सब गड़बड़ हो जाता। वह यदि नहीं आएगी, तो आप किसे धोएँगे? आपको मालूम कैसे होगा कि कहाँ पर राग-द्वेष हैं? स्मृति आती है, वह तो अपने आप निकाल होने के लिए आती है। बंधन को मिटाने आती है। यदि स्मृति आए और आप उसे धो डालें, साफ कर डालें, तो धुलकर विस्मृत हो जाएगी। याद इसीलिए आता है कि 'आपका यहाँ लगाव है, उसे मिटा दीजिए, उसका पश्चात्ताप कीजिए और फिर से ऐसा नहीं होगा, ऐसा दृढ़ निश्चय कीजिए।' इतना करने से वह खत्म हो जाती है इसलिए फिर वह विस्मृत हो जाता है। जो ज्ञान जगत् विस्मृत कराए, वह यथार्थ ज्ञान है।

असुविधा में सुविधा

भगवान ने कहा था कि असुविधा में सुविधा खोज निकालना। असुविधा में ही सुविधा होती है। लेकिन खोजना आए तब न?

सोफ़ा पाँच साल पुराना हो जाने पर उसके मालिक को वह असुविधाजनक लगने लगता है। ओल्ड टाइप का हो गया है, ऐसा लगता है। यह तो सुविधा में असुविधा पैदा की। आजकल तो ईज़ी चेयर में बैठकर लोग अनईज़ी रहते हैं। अरे, पूरी ज़िंदगी में एक ही दिन अनईज़ी होना होता है, लेकिन यह तो सदा ही अनईज़ी रहता है। सारा दिन उलीचता ही रहता है। इस मुंबई में भरपूर सुख पड़ा है, लेकिन यह तो सारा दिन दुःख में ही पड़ा रहता है। असुविधा तो तब कहलाएगी कि जब नये-नये सोफे के, पाँच ही दिनों में पाये टूट जाएँ। लेकिन यह तो नये सोफे की सुविधा में असुविधा पैदा की। पड़ोसी के घर सोफासेट आया, इस पर पति के साथ छः महीने तक झिकझिक करके, रुपये उधार लेकर पत्नी, नया सोफासेट ले आई। वह जब टूटा, तो उसका जी जल गया। अरे, जी भी कोई जलाने की चीज़ है? कपड़ा जले, तो हर्ज नहीं, लेकिन जी तो जलाना ही नहीं चाहिए। अपने तो कैसा रहना चाहिए कि किसी की नकल नहीं करनी

है। कम अक्कलवाले ही नकल करते हैं और दुःखी होते हैं। आजकल कौन सोफासेट नहीं लाता है? और वैसा हमें भी किसलिए? लेकिन हमें तो नकल नहीं असल होना चाहिए। घर में बैठक रूम में असल भारतीय बैठक लगाना। गद्दी-तकिये और स्वच्छ सफेद चद्दर, ताकि फिर किसी की नकल नहीं करनी पड़े और बैठने में भी कैसी सुविधा! वास्तव में चीज़ें तो कितनी होनी चाहिए? खाने-पीने की, पहनने की और रहने की सुविधा हो, तो काफ़ी हो गया। जबकि आजकल तो सुविधा के नाम पर नये-नये दुःख खड़े करते हैं। वास्तव में दुःख संसार में नाम मात्र को भी नहीं है। यह तो नासमझी में दुःख पैदा करते हैं।

पड़ोसी आज बुलाए और कल नहीं भी बुलाए। उसमें रोज़-रोज़ बुलाने में क्या सुविधा? बुलाए, तो लगता है कि उसे मेरी क़ीमत है। इसलिए अच्छा लगता है। नहीं बुलाए, तो बुरा लगता है। ऐसा रखो कि बुलाए, तो भी अच्छा नहीं बुलाते, तो भी अच्छा।

खुद के पास भरपूर सुख पड़ा है, लेकिन कैसे निकालना, यह मालूम नहीं है। एक ही तरह का सुख, एक ही तरह का माल है, लेकिन यह तो समाज ने स्तर बनाए हैं। वास्तविक क्या है, जानें तो सुख मिले। कब तक इस काल्पनिक सुख में रहोगे? लेकिन करें क्या? आ फँसे हैं भैया आ फँसे! फिर क्या करें?

यह कैसी बात है, मैं आपको बताता हूँ। एक बनियाभाई और एक मियाँभाई में पक्की दोस्ती थी। एकबार मुहर्रम के दिनों में दोनों घूमने निकले। रास्ते में ताज़ियों का जुलूस जा रहा था। मियाँभाई को तो ताज़ियों का जुलूस दिखते ही दिल मचलने लगा, सो कैसे भी रोक नहीं सके और बनिया मित्र से दो मिनट में आता हूँ कहकर, मियाँभाई जुलूस में शामिल होकर 'या हुसैन, या हुसैन' करने लगे। बनिये ने तो बहुत राह देखी, लेकिन मियाँभाई तो बाहर आने का नाम ही नहीं ले रहे थे। वे तो मग्न हो गए थे। आखिर घंटाभर बीतने के बाद बनिया ऊब गया और जुलूस

में घुसकर मियाँ का हाथ पकड़कर बाहर खींचने लगा तो मियाँभाई ने उसी को अंदर खींच लिया कहे, ''बस, दो मिनट 'या हुसैन, या हुसैन' कर लेते हैं, हम दोनों फिर निकल जाएँगे।'' बनियाभाई मुँह लटकाकर बोले, 'आ फँसे भैया, आ फँसे।' ऐसा है यह जगत्!

एक बार आ फँसने के बाद निकलना मुश्किल है। वह तो ज्ञानीपुरुष मिलें और हाथ खींचकर बाहर निकालें, तब निकल सकते हैं। इस भ्रांति के फँसाव में से तो भ्रांति जाने पर ही छूट सकते हैं। लेकिन वह भ्रांति जाए कैसे? वह तो ज्ञानीपुरुष झकझोरकर जगाएँ, तभी भ्रांति जाती है। उनके सिवाय और किसी का काम नहीं है यह। उनके बिना तो ज्यों-ज्यों छूटने जाएँ त्यों-त्यों ज़्यादा, और भी ज़्यादा फँसते जाते हैं।

चार्ज और डिस्चार्ज

दर्शनमोह अर्थात् चार्ज मोह और चारित्रमोह अर्थात् डिस्चार्ज मोह। पानी, दर्शन मोह है और बर्फ चारित्रमोह है। चार्ज किस कारण से होता है?

चेतन ने जड़ को स्पर्श किया कि खुद के स्वरूप का भान चला जाता है और इसलिए चार्ज होता है। जो-जो बहुत याद आते हैं, उनमें तन्मयाकार होता है, उसी के कारण चार्ज होता रहता है। याद क्या आता है? जिस पर बहुत राग होता है अथवा तो बहुत द्वेष होता है। जो डिस्चार्ज हो रहा है, उसके प्रति राग-द्वेष करता है, तो आत्मा की स्वभाविक कल्पशक्ति विभाविक रूप से विकल्प होकर उसमें मिलती है, उससे चार्ज होता रहता है। ऐसे ही संसार क्रम चलता रहता है। भूल के कारण चार्ज हुआ है, भ्रांति से भरा गया है, वह डिस्चार्ज होता रहता है।

राह चलते, 'चंदन' ने दुकान में साड़ी देखी और उसमें तन्मयाकार हो गई। दुकान में साड़ी देखी उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन उसके लिए मोह उत्पन्न हुआ, उसी का हर्ज है। साड़ी

को देखा और पसंद आई, वह डिस्चार्ज मोह है, लेकिन चंदन उसमें ऐसी तन्मयाकार हो जाती है कि जो मोह डिस्चार्ज होने लगा था, वह फिर से चार्ज हो जाता है। चंदन साड़ी में ऐसी तन्मयाकार हो जाती है कि साड़ी सवा छः मीटर लंबी हो, तो चंदन भी सवा छः मीटर की हो जाती है। साढ़े तीन मीटर चौड़ी हो, तो वह भी साढ़े तीन मीटर चौड़ी हो जाती है। साड़ी में जितने फूल हों या शीशे हों उतने चंदन में भी हो जाते हैं। प्रतिष्ठित आत्मा उसी में रमा हुआ रहता है। इसलिए चंदन जब वापस घर आ जाए, उसके बाद भी चित्त तो वहीं का वहीं, दुकान की साड़ी में ही रहता है। इस पर पति भी चंदन से पूछता है कि आज तबियत ठीक नहीं क्या? मुँह उतर गया है न! उस बेचारे को क्या पता कि यह जो घर में घूम-फिर रहा है, वह तो पुतला ही है, चंदन का चित्त तो दुकान पर साड़ी में है। इसी को भगवान ने 'चार्ज-मोह' कहा है।

अच्छे से अच्छे पकौड़े या अच्छे से अच्छी मिठाई मिले और खाए उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन उसमें स्वाद रह जाए, तो चार्ज हो जाता है। तन्मयाकार होकर पकौड़े और मिठाई खाए, तो पकौड़े और मिठाई जैसा हो जाता है और फिर से मोह चार्ज करता है।

व्यापार करते हैं, वह डिस्चार्ज हो रहा है। पूर्व जन्म में ऐसा चार्ज किया था, इसलिए व्यापार शुरू किया और शुरू किया तभी से डिस्चार्ज होता है, लेकिन उसमें तदाकार होकर फिर से चार्ज करते हैं।

जन्म से मृत्यु पर्यंत सभी डिस्चार्ज होता रहता है। अभी का यह मनुष्य जन्म भी डिस्चार्ज है। पिछले जन्म में मनुष्य होना चार्ज किया था, जो अब डिस्चार्ज हो रहा है। डिस्चार्ज का तो भगवान को भी एतराज़ नहीं है, लेकिन डिस्चार्ज के समय आपका ध्यान कहाँ बरतता है, उसकी क़ीमत है। भगवान के दर्शन को मंदिर

गया, भगवान की मूर्ति के दर्शन किए और साथ-साथ बाहर रखे जूतों की भी फोटो ली (मेरे जूते सलामत हैं न!)। दर्शन किए, वह डिस्चार्ज हुआ और जूतों की फोटो खींची, वह चार्ज किया।

पानी पीया वह चार्ज कहलाता है क्योंकि उसमें खुद को कर्ता मानता है। फिर पानी का पेशाब बनता है। जब वह बाहर आता है, वह डिस्चार्ज है।

मनुष्य खुजलाता है, वह डिस्चार्ज है, लेकिन खुजलाने में आनंद आता है। देह की जो स्थूल क्रियाएँ हैं, वे डिस्चार्ज स्वरूप है, उसमें आनंद लेने जैसा भी नहीं है और चिंता करने जैसा भी नहीं है। आनंद आता है, वह 'प्रतिष्ठित आत्मा' को आता है, उसको जाननेवाला खुद 'शुद्धात्मा' है। वह जानता है, खुजलाने पर अभी जलन होगी तब मालूम होगा। लेकिन वहाँ उस आनंद में तन्मयाकार हो जाता है, इसलिए फिर चार्ज होता है। डिस्चार्ज मोह खप रहा है, लेकिन तन्मयाकार होकर अगले जन्म के लिए फिर से चार्ज करता है। मनुष्यपन चार्ज करने जाता है, लेकिन हो जाता है गधा। ऐसा बिना ठौर-ठिकाने का है सब। हिताहित का भान ही नहीं है, इसलिए करने जाता है क्या और हो जाता है क्या? लोकनिंद्य कार्य हो रहा हो, वहाँ मन-वचन-काया से कह देना और उन्हें खींच लेना, लेकिन लोकमान्य होगा, तो हर्ज नहीं है। यदि लोकअमान्य हो, वहाँ पर उपाय करना पड़ेगा। मिकेनिकल 'मैं' को कंट्रोल में रखने की सत्ता मूल 'मैं' की नहीं है। इंजन चालू होने के बाद बंद करने की सत्ता नहीं रहती। चार्ज होने के बाद डिस्चार्ज होगा ही। उसमें भगवान की भी सत्ता नहीं थी। डिस्चार्ज में तो बैटरी जैसी चार्ज हुई होगी, वैसी ही डिस्चार्ज होगी। मूल स्वरूप में 'मैं' जानने के बाद कोई बैटरी चार्ज नहीं होती। चार्ज बंद हो जाता है। स्वरूप का ज्ञान मिलने के बाद डिस्चार्ज में दखल नहीं होता, लेकिन काफी कुछ तो पुरुषार्थ से खप जाता है।

चार्जेबल मोह वह चार्ज होता है, *पूरण* होता है। १ अंश, २ अंश, ३ अंश ऐसे *पूरण* होते होते ५०० तक पहुँचता है। अब मोह डिस्चार्ज होता है, तब कैसे होता है? पहले एकदम से ५०० पर आता है। जैसे, क्रोध पहले ५०० डिग्री का आता है, फिर ४५० पर आता है, फिर ४०० पर आता है, ऐसा करते-करते अंत में १ पर आकर खत्म हो जाता है, संपूर्ण डिस्चार्ज होता है। प्रत्येक चीज़ डिस्चार्ज में एकदम से बड़ी आती है, फिर धीरे-धीरे घटती जाती है। क्रोध पहले ५०० पर आकर एकदम धमाका करता है। ५०० से शुरू होकर फिर धीरे-धीरे खत्म होता जाता है।

राह चलते रुचि-अरुचि उत्पन्न हो, ऐसा होता रहता है। हमारी इच्छा नहीं हो, फिर भी रुचि-अरुचि होती रहती है, लेकिन रुचि क्यों होती है और अरुचि क्यों होती है? इस पर कोई विचार ही नहीं करता। तेरी इच्छा नहीं हो, तो भी उसमें परिवर्तन संभव नहीं है। तेरी इच्छा की बात नहीं है। जन्में तब से ही मन-वचन-काया की तीन बैटरियाँ डिस्चार्ज होती रहती हैं। क्योंकि पूर्व जन्म में चार्ज किया था इसलिए। जब डिस्चार्ज होता है, तब पता चलता है कि उल्टा चार्ज किया था। इसलिए फिर से सुल्टा चार्ज करें, तो सुल्टी लाइफ जाएगी। बाकी आज की तो सारी फिल्म तैयार हो चुकी है, वही है। अब जो रोल अदा करने को आया है, उसे अदा कर। जो फिल्म आज परदे पर दिखाई देती है, उसकी शूटिंग तो पहले कब की हो चुकी है, लेकिन आज उसे वह पर्दे पर देख रहा है। उसमें जब अनचाहा आ जाता है, तब चिल्लाता है कि कट करो, कट करो, लेकिन अब कट कैसे हो सकती है? वह तो जब शूटिंग कर रहे थे, तब सोचना था न? चार्ज करते थे, तब सोचना था न? अब तो कोई बाप भी बदल नहीं सकता। इसलिए बिना राग-द्वेष किए चुपचाप फिल्म पूरी कर दे।

सारा संसार ही चार्ज के वश में हो गया है।

रुचि-अरुचि, लाइक एन्ड डिस्लाइक, सभी अब डिस्चार्ज मोह है और राग-द्वेष चार्ज मोह है। चार्ज भगवान की आज्ञा के विरुद्ध है, डिस्चार्ज भगवान की आज्ञा के विरुद्ध नहीं है।

लोग डिस्चार्ज मोह के पत्ते काटते रहते हैं, लेकिन चार्ज मोह तो जारी ही है, तो कैसे पार आएगा? कुछ तो डालियाँ काटा करते हैं, कुछ सारा तना ही काट देते हैं, लेकिन जब तक जड़ रहेगी, तब तक वह फिर से उगता जाएगा। इसलिए लोग चाहे जितने उपाय करें, इस संसार वृक्ष को निर्मूल करने के लिए वैसे हल निकलनेवाला नहीं है। वह तो ज्ञानीपुरुष का ही काम है। ज्ञानीपुरुष पत्ते, डाली, तना किसी को नहीं छूते, अरे! छोटी-छोटी असंख्य जड़ों को भी नहीं छूते। वे तो वृक्ष की मुख्य जड़ को जानते हैं और पहचानते हैं। वहाँ पर चुटकी भर दवाई लगा देते हैं, जिससे सारा वृक्ष सूख जाता है।

ज्ञानीपुरुष और कुछ नहीं करते। वे केवल आपकी चार्ज बैटरी को सरका कर दूर रख देते हैं, ताकि फिर से चार्ज नहीं हो। आपका चार्जिंग पोइन्ट ही पूरा का पूरा उड़ा देते हैं।

बाकी चाहे जो भी उपाय करे लेकिन जब तक चार्ज बंद नहीं होता तब तक मोह नहीं छूटता, फिर तू चाहे जो भी त्यागेगा या जो भी करेगा, चाहे उल्टा लटके पर मोह नहीं छूटनेवाला। उल्टा और अधिक फँसता जाएगा। पचास प्रकार के (पच्चीस चार्ज और पच्चीस डिस्चार्ज) मोह जाएँ, तब जाकर हल आएगा।

'मैंने यह किया' ऐसा कहा कि चार्ज हुआ। मैंने दर्शन किए, प्रतिक्रमण किए, सामायिक की ऐसा कहा कि चार्ज हो गया। नाटकीय भाषा में बोलें, तो हर्ज नहीं है, लेकिन निश्चय से बोलें, तो उसका मद चढ़ता है। इसलिए डिस्चार्ज होते समय नया चार्ज भी होता है। चार्ज हमारे हाथों में है, डिस्चार्ज हमारे हाथों में नहीं है। मात्र मोक्ष की ही इच्छा करने जैसी है, तो मोक्ष का मार्ग मिल जाएगा। मोक्ष की इच्छा का चार्ज करो न?

देखने का अधिकार सभी को है, लेकिन चिंतन का नहीं है, उसमें तन्मय होने का नहीं है। देखते तो ज्ञानीपुरुष भी हैं, लेकिन चिंतन में अंतर है। इस मोहमयी नगरी (मुंबई) में सभी घूम-फिर रहे हैं और ज्ञानीपुरुष भी घूमते हैं, लेकिन किसी चीज़ का उन्हें चिंतन नहीं होता है। कहीं पर भी उनका चित्त नहीं जाता है।

भावकर्म चार्ज बैटरी है। आत्मा के अत्यंत निकट पड़ी है, इसलिए निरंतर चार्ज होती रहती है। उस बैटरी का चार्ज होना हमने बंद कर दिया, इसलिए महात्माओं में अब डिस्चार्ज बैटरी ही रही। अब तो जिस भी भाव से डिस्चार्ज होना हो, होता रहे। 'हम' उसे देखेंगे। मन आगे-पीछे होता हो, तो उसे जानना और सीधा हो उसे भी जानना, ताकि चार्ज नहीं हो। अब तो जिसे आना हो वह आए। यह हो, तो भी ठीक और नहीं हो, तो भी ठीक।

'भावकर्म ही चार्ज बैटरी है।' इन पाँच शब्दों में भगवान के पैंतालीस के पैंतालीस आगम समा गए। बाकी एक मोह को निकालने में लाख-लाख जन्म लेने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : कल्पना और इच्छा में क्या अंतर है?

दादाश्री : कल्पना मूल स्वरूप की अज्ञानता से खड़ी होती है और इच्छा डिस्चार्ज के कारण होती हैं। लेकिन मूल इच्छा जो खड़ी होती है, वह कल्पना में से खड़ी होती है। ऐसा है, आकाश से पानी बरसता है, आकाश अपनी जगह पर ही है, हवा चलती है और ऊपर का पानी नीचे के पानी में पड़ता है, तब बुलबुले बनते हैं। बरसात होती है उसमें किसी की इच्छा नहीं है, न हवा की, न पानी की। ऐसा है यह सब!

प्रश्नकर्ता : चार्ज हुआ या डिस्चार्ज यह लक्ष्य में कैसे आए?

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ,' ऐसा भान हुआ तब से चार्ज

हुआ। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसी सभानता रहे, तो कुछ भी चार्ज नहीं होता। लेकिन यदि डाँवाडोल हो, तो चार्ज होता है। लेकिन ऐसा कौन करेगा? जितने-जितने चार्ज के लक्षण दिखाई देते हैं, वे भी डिस्चार्ज हैं। चार्ज होता है या डिस्चार्ज इसका पता नहीं चलता, यदि इसका पता चल जाता, तो हर कोई चार्ज करना बंद कर देता। वह तो ज्ञानीपुरुष के बगैर कोई उसे समझा नहीं सकता। खुद 'शुद्धात्मा' है, इसलिए डिस्चार्ज ही है। यदि चंदूलाल हुआ तो चार्ज है। जब डिस्चार्ज होता है, तब उस पुरानी बैटरी की इफेक्ट सहन नहीं होती, इसलिए उसके असर से ही नयी बैटरी चार्ज होती रहती है।

चार्ज होना शुरू हो, तो चिंता शुरू हो जाती है। भीतर जलने लगता है। अग्नि सुलगती है। आकुलता और व्याकुलता में रहते हैं। जबकि अकेले डिस्चार्ज में ऐसा नहीं रहता। निराकुलता रहती है, क्योंकि उसमें तन्मयाकार नहीं हुआ होता है।

भगवान कहते हैं, 'यदि डिस्चार्ज होता है, तब उसकी ज़िम्मेदारी हमारी है, लेकिन चार्ज मत होने देना' इन दो वाक्यों में ही दुनिया के सभी शास्त्रों का ज्ञान समाया हुआ है।

चार्ज बंद हुआ, इसलिए डिस्चार्ज बंद ही हुआ कहलाएगा। मोह जो चार्ज किया, वह 'प्रोमिसरी नोट' है और जो डिस्चार्ज हुआ, वह 'कैश इन हैन्ड' है।

जा, 'हम' तुझे गारन्टी देते हैं कि 'दादा भगवान' से मिलने के बाद तेरा चार्ज नहीं होगा!

मोह का स्वरूप

मोह के मुख्य दो प्रकार हैं।

दर्शन मोह - चार्ज मोह और चारित्र मोह - डिस्चार्ज मोह।

दर्शन मोह रुचि पर आधारित है अर्थात् रुचि कहाँ है इस

पर आधारित है। संसार की विनाशी चीज़ों मैं ही रुचि रहे, वह मिथ्यात्व मोह है।

आत्मा जानने की रुचि और साथ में संसार की विनाशी चीज़ों की रुचि, वह मिश्रमोह है। यह सत्य है और वह भी सत्य है, ऐसा बरते वह मिश्रमोह है।

आत्मा जानने की उत्कंठा हो और यही सत्य है, ऐसा बरते वह सम्यक मोह। आत्मा में आत्मबुद्धि होना, उसका नाम समकित और आत्मा में आत्मरूप होना, उसका नाम ज्ञान।

ज्ञान और ज्ञानी के प्रति मोह, वह अंतिम मोह है। वह सम्यक् मोह कहलाता है। अन्य सारे ही मोह मिथ्या मोह हैं।

जैसा है वैसा दर्शन में नहीं आता, वह दर्शन मोह के कारण। दर्शन के आवरण के कारण 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा दिखता है।

यह संसार किसके आधार पर टिका है? दर्शन मोह के आधार पर। भगवान कहते हैं कि चारित्र मोह का एतराज़ नहीं है वह डिस्चार्ज मोह है। अज्ञानी का भरा हुआ माल निकलता है, लेकिन फिर से 'मैं चंदूलाल हूँ' कहता है, इसलिए पुनः नया माल भरता रहता है।

मन-वचन-काया के योगों का मूर्छित प्रवर्तन, वह चारित्रमोह है। 'मैं करता हूँ' और 'मेरा है', ऐसा प्रवर्तन ही चारित्रमोह है। भगवान कहते हैं, वैसी चारित्र मोह की यथार्थ समझ, समझने योग्य है। 'मैं सामायिक करता हूँ' ऐसा जो भान है वह चारित्र मोह।

सामायिक, प्रतिक्रमण या संसार की किसी भी क्रिया में कर्ताभाव, वह चारित्रमोह और रुचिभाव वह दर्शनमोह।

चारित्रमोह अर्थात् परिणमित हुआ मोह। जो फल देने को सन्मुख हुआ हो, वह चारित्रमोह मतलब डिस्चार्ज मोह। जो मोह

चार्ज होता रहे, वह दर्शन मोह और डिस्चार्ज होता रहे, वह चारित्रमोह।

डिस्चार्ज मोह भटका देता है।

आत्मा की हाज़िरी से पुद्‌गल में चेतनभाव चार्ज हो जाता है और वही फिर डिस्चार्ज होता है। पुद्‌गल चेतन के संसर्ग में आने से उसमें चेतन चार्ज होता है, लेकिन उसमें चेतन का कुछ भी बिगड़ता नहीं है। इस शरीर में से डिस्चार्ज होनेवाली प्रत्येक चीज़ अनुभव होती देखने में आती है, इसलिए चार्ज हुआ था, ऐसा कहते हैं। *गलन* का अर्थ ही डिस्चार्ज है। हम उसे भावाभाव कहते हैं, उसमें चेतन नहीं होता है।

एक मनुष्य को सारी ज़िंदगी जेल में गुजारनी पड़े और उसे खाने को मिलता रहे, लेकिन जलेबी-लड्डू नहीं मिलते, इसलिए क्या उसका मोह चला गया? नहीं, अंदर तो मोह होता ही है। मिलता नहीं है, इसलिए मोह चला गया, ऐसा नहीं कहलाता।

प्रश्नकर्ता : दादाजी, मुझ में मोह बहुत होगा और दूसरों में कम होगा, ऐसा है?

दादाश्री : एक ज़रा सा मोह का बीज होता है, वह जब व्यक्त होता है, तब सारे संसार में व्याप्त हो जाए, ऐसा है। इसलिए कम हो या ज़्यादा, उसमें समझ को लेकर अंतर नहीं है। जब संपूर्ण मोह क्षय होता है, तभी काम बनता है।

भगवान और सत्पुरुष के सत्संग का मोह है, वह प्रशस्तमोह और प्रशस्तमोह से मोक्ष।

मोह के तो अनंत प्रकार हैं। उनका कोई अंत आनेवाला नहीं है। एक मोह छोड़ने को लाख जन्म करने पड़ें, ऐसा है। मनुष्यपन तो मोह का संग्रहस्थान ही है। 'स्वरूप ज्ञान के बिना मोह नहीं जा सकता।'

माया

प्रश्नकर्ता : माया के बंधन में से मुक्त होने के लिए क्या करें?

दादाश्री : अज्ञान ही माया है। खुद के निज स्वरूप का अज्ञान वही माया है और वह माया तो मूढ़ मार मारती है। इस संसार में कोई हमारे ऊपर है ही नहीं। माया के कारण कोई ऊपर है, ऐसा लगता है।

माया क्या है? भगवान का रिलेटिव रूप, वही माया है। यह माया फँसाती है ऐसा लोग बोलते हैं, वह क्या है? यह सब कौन चलाता है? यह वह जानता नहीं है, इसलिए 'मैं चलाता हूँ' ऐसा मानता है। यही माया है और उसमें फँसता है।

इस संसार में यदि कोई कच्ची माया नहीं है, तो वे भगवान हैं। कच्चे सभी मार ही खाते हैं, भगवान की माया का ही तो! यह मार अनहद है या बेहद है, यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन वह मार ही मोक्ष में जाने की प्रेरणा देगा।

खुद, खुद को जानता नहीं है। यही सबसे बड़ी माया है। अज्ञान गया कि माया गई।

जहाँ जो चीज़ नहीं हैं, वहाँ उस चीज़ के लिए विकल्प होता है, उसी को माया कहते हैं।

हमारी उपस्थिति में आपकी माया टिकती नहीं, बाहर ही खड़ी रहती है। आप हमारी उपस्थिति में से बाहर निकलेंगे, तो आपकी माया अपने आप आ लिपटेगी। हाँ, हमारे पास से एक बार स्वरूप ज्ञान ले जाओ, फिर आप चाहे जहाँ जाओ, फिर भी माया आपको छूएगी ही नहीं।

भगवान कहते हैं कि यह सब नाटकीय है। तू उसमें नाटकीय मत हो जाना। मूलतः मन का झमेला है, इसलिए लोग मन के

पीछे लगे हैं, लेकिन मन परेशान नहीं करता है। उसके पीछे माया है, वह परेशान करती है। माया जाए, तो मन तो सुंदर एन्डलेस फिल्म है। कुछ लोगों ने सांसारिक माया छोड़कर त्यागी बनना स्वीकार किया, तो क्या उनकी माया चली गई? नहीं, उल्टे दुगनी माया लिपटी हुई है। माया छोड़ी किसे कहेंगे? संसार वैभव भोगना छोड़ें, उसी को कहते हैं, 'माया छोड़ी।' यह तो बीवी-बच्चों को छोड़ा लेकिन साथ में अज्ञानता की गठरियाँ बाँधी हुई हैं उसे लेकर भटक रहा है। उसे माया छोड़ना कैसे कहेंगे?

चाहे कहीं भी जाएँ, लेकिन 'मेरा-तेरा' गया नहीं और 'मैं' गया नहीं, तो तेरी माया और ममता साथ ही रहनेवाली है।

एक बार मेरे पास एक आदमी आया और बहुत रोने लगा। कहने लगा, 'अब तो जीना बहुत भारी पड़ता है, आत्महत्या करने को मन करता है।' मुझे मालूम था उसकी बीवी पंद्रह दिन पहले चल बसी थी और पीछे चार बच्चे छोड़ गई थी। इसलिए मैंने उसे पूछा, 'भैया, तेरे ब्याह को कितने साल हुए?' 'दस साल', वह बोला। तो दस साल पहले जब तूने उसे देखा नहीं था तब मर गई होती, तो तू रोने बैठता क्या? 'उसने कहा,' नहीं, तब क्यों रोता? मैं तो उसे पहचानता तक नहीं था तब।' फिर अब तू क्यों रोता है यह मैं तुझे समझाता हूँ। देख! तू ब्याह करने गया, बाजे-गाजे के साथ गया और जब लग्न मंडप में फेरे लेने लगा तब से तू 'यह मेरी पत्नी, यह मेरी पत्नी' ऐसे तू लपेटता गया। मंडप में उसे देखता गया, 'यह मेरी पत्नी' बोलता गया और ममता लपेटता गया। पत्नी यदि बहुत अच्छी हो, तो रेशम का बंधन और बुरी हो, तो सूत का बंधन। यदि तू इससे छूटना चाहता है, तो जितने बंधन 'मेरी, मेरी' के बाँधे, उतने ही 'नहीं है मेरी, नहीं है मेरी' बोलकर खोल दे, तभी ममता से तेरा छुटकारा होगा।

मेरी बात वह अच्छी तरह समझ गया और उसने तो 'नहीं है मेरी,' 'नहीं है मेरी' का ऐसा हैन्डल घुमाया, ऐसा घुमाया

कि सारी लपेटें खुल गईं उसकी। फिर पंद्रह दिन के बाद आकर आँखों में आनंदाश्रु के साथ पाँव छूकर कहने लगा, 'दादाजी, आपने मुझे बचा लिया, मेरी सारी ममता के बंधनों को खोलने का मार्ग दिखलाया,' उससे मैं छूट गया।

मेरी इस सत्य घटना को सुनकर, कितनों के बंधन खुल गए हैं।

क्रोध

वर्ल्ड में कोई मनुष्य क्रोध को जीत नहीं सकता। क्रोध के दो प्रकार हैं, एक कुढ़न के रूप में और दूसरा बेचैनी के रूप में। जो लोग क्रोध को जीतते हैं, वे कुढ़न के रूप में जीतते हैं। इसमें ऐसा होता है कि एक को दबाने पर दूसरा बढ़ जाता है। फिर यदि ऐसा कहे कि मैंने क्रोध जीत लिया है तो मान बढ़ जाता है। वास्तव में क्रोध पूर्ण रूप से नहीं जीताता। दृश्यमान क्रोध को जीतता है। क्रोध तो अग्नि जैसा है, खुद भी जले और सामनेवाले को भी जलाए।

जहाँ क्रोध आ रहा हो और क्रोध न करे, वह शुभ चारित्र कहलाता है। शुभ चारित्र से संसार सुधरता है, जबकि मोक्ष तो शुद्ध चारित्र से ही होता है।

'क्रोध' उग्र परमाणु हैं। 'अनार' के पटाखे में अंदर बारूद भरा होता है, इसलिए फूटने पर आग पकड़ता है और अंदर का बारूद खत्म हो जाने पर अपने आप शांत हो जाता है। ऐसा ही क्रोध के संबंध में है। क्रोध उग्र परमाणु हैं, इसलिए जब 'व्यवस्थित' के नियम के आधार पर फूटता है, तब सब तरफ से जलता है। हम उग्रता को क्रोध नहीं कहते। जिस क्रोध में तंत हो, वही क्रोध कहलाता है। क्रोध कब कहलाता है कि जब आत्मा को जलन हो, जलन हो तब आँच लगती है और दूसरों पर भी उसका असर हो जाता है, वह कुढ़न कहलाती है। और

बैचेनी में अंदर अकेला ही जलता रहता है, लेकिन तंत तो दोनों में ही रहता है। जबकि उग्रता अलग चीज़ है। जिस क्रोध में तंत हो उसी को क्रोध कहते हैं। जैसे कि रात को पति-पत्नी दोनों खूब झगड़े, ज़बरदस्त क्रोध धधक उठा, सारी रात दोनों जागते पड़े रहे। सबेरे पत्नी चाय का कप थोड़ा पटककर रखे, तो पति समझ जाता है कि अभी तंत है। यह क्रोध कहलाता है। फिर तंत चाहे कितने भी समय का हो। अरे! कितनों को तो पूरी ज़िंदगी का होता है। बाप, बेटे का मुँह नहीं देखता और बेटा, बाप का मुँह नहीं देखता। क्रोध का तंत तो, बिगड़े हुए मुँह पर से पता चल जाता है।

लोभ

क्रोध-मान-माया-लोभ में लोभ का तंत बहुत भारी होता है। लोभ अर्थात् कुछ इच्छा रखनी। लोभी को कोई झिड़के, तब भी वह हँसता है। ज्ञानी भी हँसते हैं (ज्ञान में रहते हैं इसलिए), लेकिन लोभी लोभ की गाँठ अधिक बड़ी करके हँसता है।

सेठ दुकान पर बैठे हों और ग्राहक लड़ने आए कि मेरे बेटे से आपने छल करके आठ आने ज़्यादा ले लिए। इस पर सेठ गद्दी-तकिये पर बैठे हुए हँसता रहता है। उस पर कुछ भी असर नहीं होता। राह चलते लोगों की भीड़ जमा हो जाती है। वे सेठ और ग्राहक की दशा देखते हैं। सेठ को शांत, धीर गंभीर और ग्राहक को बदहाल, चीखता-चिल्लाता देखते हैं, तब भीड़ में लोग भी कहते हैं कि इस आदमी का दिमाग़ खिसक गया है। इसलिए उसे कहते हैं कि चुपचाप घर जा, इतने बड़े सेठ कहीं ऐसा करते होंगे? और सेठ मूँछ में हँस रहा होता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसका लोभ उसे मन में कहता है कि यह पगला शोर मचाकर चला जाएगा, उसमें मेरा क्या जानेवाला है? मेरी जेब में तो अठन्नी आ गई न? लोभी वास्तव में ज्ञानी जैसा ही दिखता है।

जबकि मानी को झिड़कें, तो वह हँसता नहीं है, तुरंत ही

उसका क्रोध भड़क उठता है। लेकिन लोभी को क्रोध नहीं आता।

भगवान ने कहा कि क्रोध और मान के कारण लोग दुःखी होते हैं। मान के कारण तिरस्कार होता है। मान प्रकट तिरस्कार करता है। क्रोध जलता है और जलाता है। उसका उपाय लोग भगवान के वाक्य सुनकर करने गए। क्रोध नहीं करते, मान नहीं करते, इसलिए त्रियोग साधना करने लगे। त्रियोग साधना से क्रोध-मान कुछ कम हुए, लेकिन बुद्धि का प्रकाश बढ़ गया। बुद्धि का प्रकाश बढ़ने से लोभ का रक्षण करने के लिए कपट बढ़ाया। क्रोध और मान भोले होते हैं, इसलिए कभी कोई यह बतानेवाला मिल भी जाता है, जबकि लोभ और कपट तो ऐसे हैं कि खुद मालिक तक को भी पता नहीं चलता। वे तो आने के बाद निकलने का नाम तक नहीं लेते।

लोभी कब क्रोध करता है? जब बड़े से बड़े लोभ का हनन होता हो और कपट भी काम नहीं करता, तब अंत में लोभी क्रोध का सहारा लेता है।

पैदा हो, तभी से लोभी के लोभ की डोर टूटती ही नहीं। क्षण भर के लिए भी उसका लोभ नहीं छूटता। उसकी जागृति निरंतर बस लोभ में ही होती है। मानी तो बाहर निकले, तभी से मान और मान में ही रहता है। रास्ते में भी जहाँ जाएगा वहाँ, मान में और लौटेगा तब भी मान में ही। लेकिन यदि कोई अपमान करे, तो वहाँ वह क्रोध करता है।

मोक्ष मार्ग से कौन भटकाता है? क्रोध-मान-माया-लोभ। लोभ का रक्षण करने के लिए कपट है, इसलिए कपड़ा बेचते समय एक उँगली कपड़ा बचा लेता है। मान के रक्षण के लिए क्रोध है। इन चारों के आधार पर लोग जी रहे हैं।

क्रोध-मान-माया-लोभ दो प्रकार के हैं : एक मोड़े जा सकें ऐसे-निवार्य। दूसरे मोड़े नहीं जा सकें ऐसे-अनिवार्य। जैसे कि किसी

पर क्रोध आया हो, तो उसे अंदर ही अंदर मोड़ लें और शांत कर सकें, उसे मोड़ा जा सकनेवाला क्रोध कहते हैं। इस स्टेज पर पहुँच जाने पर तो व्यवहार बहुत ही सुंदर हो जाता है।

दूसरे प्रकार का क्रोध वह है जो मोड़ा नहीं जा सकता। लाख प्रयत्नों के बावजूद पटाखा फूटे बगैर रहता ही नहीं। वह मोड़ा नहीं जा सके ऐसा अनिवार्य क्रोध। यह क्रोध खुद का भी अहित करता है और सामनेवाले का भी अहित करता है।

क्रोध-मान की अपेक्षा कपट-लोभ की गाँठें भारी होती हैं। वे जल्दी नहीं छूटतीं। लोभ को गुनहगार क्यों कहा है? लोभ किया मतलब दूसरों का लूट लेने का विचार किया। बाँध के पानी के सभी नल एक आदमी अगर खुद के लिए खोल दे, तो दूसरों को पानी मिलेगा क्या?

कपट

कपट अर्थात् जैसा है वैसा नहीं बोलना, वह। मन-वचन और काया तीनों को स्पर्श करता है। स्त्री जाति में विशेष रूप से कपट और मोह के परमाणु होते हैं। पुरुष जाति में विशेष रूप से क्रोध और मान के परमाणु होते हैं। यदि कपट और मोह के परमाणु विशेष खिंचे, तो दूसरा जन्म स्त्री के रूप में आता है। क्रोध व मान के परमाणु विशेष खिंचें, तो दूसरा जन्म पुरुष के रूप में आता हैं।

स्त्री जाति भय के कारण कपट करती है। उससे बहुत आवरण आते हैं। मोह से मूर्च्छा बढ़ती है। पुरुषों में मान अधिक होता है। मान से जागृति बढ़ती है। जैसे-जैसे कपट बढ़ता है, वैसे-वैसे मोह बढ़ता जाता है।

क्रोध-मान-माया-लोभ की खुराक

क्रोध-मान-माया-लोभ निरंतर खुद का ही चुराकर खाते हैं,

लेकिन लोगों की समझ में नहीं आता है। इन चारों को यदि तीन साल भूखा रखें, तो वे भाग जाएँगे। लेकिन जिस खुराक से वे जीवित हैं, वह खुराक क्या है? यदि वह नहीं जानते, तो वे भूखे कैसे मरेंगे? वह नहीं समझने से उन्हें खुराक मिलती रहती है। वे जीते हैं किस प्रकार? और वह फिर अनादिकाल से जी रहे हैं। इसलिए उनकी खुराक बंद कर दो। ऐसा विचार तो किसी को भी नहीं आता और सभी उन्हें मार-पीटकर निकालने में लगे हैं। वे चारों ऐसे जानेवाले नहीं हैं। वह तो आत्मा बाहर निकले, तो अंदर सबकुछ झाड़-बुहारकर साफ करने के बाद निकलता है। उन्हें हिंसक मार नहीं चाहिए। उन्हें तो अहिंसक मार चाहिए।

आचार्य शिष्य को कब डाँटते हैं? क्रोध आता है, तब। उस समय कोई कहे, 'महाराज, इसे क्यों डाँट रहे हैं?' तब महाराज कहते हैं, 'वह तो डाँटने योग्य ही है।' बस, खत्म। ऐसा कहा वही क्रोध की खुराक। किए गए क्रोध का रक्षण करना ही उसकी खुराक है।

कोई कंजूस स्वभाव का आपको चाय की पुड़िया लाने को कहे और आप ३० पैसे की लाएँ, तो वह कहेगा, 'इतनी महँगी थोड़े ही लाते हैं?' ऐसा बोला, उससे लोभ को पोषण मिलता है और कोई अस्सी पैसे की चाय की पुड़िया लाए, तो फजूल-खर्च आदमी कहेगा 'अच्छी है।' तो वहाँ फजूलखर्ची के लोभ को पोषण मिलता है। यह हुई लोभ की खुराक। हमें नॉर्मल रहना है।

अब कपट क्या खाता होगा? रोज़ कालाबाज़ारी करता हो, लेकिन कपट की बात निकले तब वह बोल उठता है कि हम ऐसी कालाबाज़ारी नहीं करते। ऐसे वह ऊपर से साहुकारी दिखाता है, वही कपट की खुराक।

मान की खुराक क्या? चंदूलाल सामने मिल जाएँ और हम

कहें 'आइए चंदूलाल जी', तब चंदूलाल की छाती फूल जाती है, अकड़ जाता है और खुश होता है, वह मान की खुराक।

आत्मा के अलावा सभी अपनी-अपनी खुराक से जीते हैं।

हम तो इन चारों को क्रोध-मान-माया-लोभ से कहेंगे कि आओ बैठो, लेकिन उन्हें खुराक नहीं देंगे।

क्रोध-मान-माया-लोभ, ये चारों किस से खड़े होते हैं? खुद के ही प्रतिष्ठा करने से। ज्ञानीपुरुष उस प्रतिष्ठा में से उठाकर, उसकी जगत् निष्ठा में से उठाकर ब्रह्म में, स्वरूप में बिठा देते हैं और ब्रह्मनिष्ठ बना देते हैं, तब इन चारों से छुटकारा मिलता है।

ज्ञानीपुरुष चाहें सो करें! ये क्रोध-मान-माया-लोभ तो आत्मा-अनात्मा, ज्ञान-अज्ञान के बीच की कड़ी जैसे हैं, ज़ंजीर हैं। नहीं तो अनासक्त भगवान को आसक्ति कैसी?

होम डिपार्टमेन्ट-फॉरेन डिपार्टमेन्ट

पेरू या अन्य किसी देश में तूफ़ान आए या ज्वालामुखी फट पड़े, तब हमारे देश के प्रधानमंत्री मीटिंग बुलाकर देश के विदेश मंत्री द्वारा पेरू के प्रधानमंत्री के नाम दिलासे का पत्र भिजवाते हैं कि आपके देश में तूफ़ान के कारण हज़ारों लोग मर गए हैं और लाखों बेघर हुए हैं, यह जानकर हमें गहरा दुःख हुआ है। हमारे देशवासी भी बहुत शोक संतप्त हैं। हमारे देश के ध्वज भी हमने नीचे उतार दिए हैं, आपके दुःख में हमें सहभागी समझिए, वगैरा, वगैरा। अब एक ओर ऐसा आश्वासन पत्र लिखा जा रहा हो और दूसरी ओर नाश्ता-पानी, खाना-पीना सबकुछ चल रहा होता है। यह तो ऐसा है न कि फॉरेन अफेयर्स (विदेशी मामलों) में सभी सुपरफ्लुअस रहते हैं और होम अफेयर्स में सावधान। फॉरेन की बात आई अर्थात् ऊपर-ऊपर से। बाहरी शोक और सांत्वना होते हैं, अंदर से कुछ नही होता। अंदरूनी तौर पर तो चाय-नाश्ते ही होते हैं। वहाँ पर तो कम्पलीट सुपरफ्लुअस रहते हैं।

वैसे ही हमारे अंदर भी दो डिपार्टमेन्ट हैं, होम और फॉरेन। फॉरेन डिपार्टमेन्ट में सुपरफ्लुअस रहने जैसा है और होम डिपार्टमेन्ट में सतर्क रहने जैसा है। बाकी, मन-वचन-काया के संसार व्यवहार में फॉरेन अफेयर्स की तरह सुपरफ्लुअस रहने जैसा है।

''संयोग निरंतर बदलते ही रहेंगे, लेकिन उनमें से 'शुद्ध हेतु योग्य संयोगों' में ही एकाकार होने जैसा है। बाकी शेष सारे संयोगों में सुपरफ्लुअस ही रहने जैसा है।''

संयोग

इस संसार में संयोग और आत्मा दो ही हैं। संयोगों के साथ एकता हो, तो संसार और संयोगों का ज्ञाता बने, तो भगवान।

इस संसार में निरंतर परिवर्तन होते ही रहते हैं, क्योंकि वह परिवर्तन स्वभावी है। संयोग हैं, वे वियोग स्वभावी हैं। संयोग तो परिवर्तित होते ही रहेंगे।

जगत् सारा संयोग-वियोग से ही चल रहा है। इस जगत् का कर्ता कौन है? कोई बाप भी कर्ता नहीं है। सांयोगिक प्रमाणों से ही सब चलता रहता है। मात्र साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स से ही चलता रहता है।

चीज़ों का सम्मेलन जैसा होता है वैसा ही दिखाई देता है, उसमें किसी को कुछ भी करना नहीं पड़ता। यह जो इन्द्रधनुष दिखाई देता है, तो उसमें रंग भरने कौन गया? वे तो सांयोगिक प्रमाण (साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स) आ मिले, चीज़ों का सम्मेलन हुआ, तब इन्द्रधनुष दिखाई दिया। सांयोगिक प्रमाणों में, सूर्य हो, बादल हों, देखनेवाला आदि कितने ही प्रमाण इकट्ठे हों, तब जाकर इन्द्रधनुष दिखाई देता है। उसमें यदि सूर्य अहंकार करे कि मैं नहीं होता, तो यह नहीं बन पाता, तो ऐसा अहंकार गलत है। क्योंकि बादल नहीं होते, तब भी नहीं बन पाता और यदि बादल अहंकार करें कि हम नहीं होते, तो इन्द्रधनुष बन

ही नहीं पाता, तो वह भी गलत है। जब सभी चीज़ों का सम्मेलन होता है, यह तो तभी रूपक में आता है। सम्मेलन बिखर जाए, तब विसर्जन होता है। संयोगों का वियोग होने के बाद फिर इन्द्रधनुष दिखाई नहीं देता।

संयोग मात्र वियोगी स्वभाव के हैं और फिर 'व्यवस्थित' के हाथ में हैं। संयोग कब, किस भाव से मिलेंगे, वह 'व्यवस्थित' है। इसलिए झंझट छोड़ न? यह दुनिया कैसे पैदा हुई? मात्र साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडन्स से। बट नैचुरल है। मुख्य चीज़ 'व्यवस्थित' है। संयोग-वियोग के अधीन रहकर 'व्यवस्थित' चलाता है। कितने ही संयोग जमा हों, तब एविडन्स खड़ा होता है। कितने ही संयोग आ मिलें, तब नींद आती है और कितने ही संयोग आ मिलें, तब जाग पाते है। 'व्यवस्थित' इतना अच्छा है कि संयोग मिलवा ही देता है।

जल प्रपात में बुलबुले दिखाई देते हैं, वे कैसे भाँति-भाँति के होते हैं? कोई आधा गोल, कोई छोटा होता है, बड़ा होता है, उन्हें किस ने बनाया? किस ने रचा? वे तो अपने आप ही बने। हवा, जोरों से गिरता हुआ जल, लहरें आदि अनेक संयोग जमा हों, तब बुलबुले बनते हैं। जिसमें ज़्यादा हवा भर जाए, वह बड़ा बुलबुला और कम हवा भरे, तब छोटा बुलबुला बनता है। उसी तरह ये सारे मनुष्य भी बुलबुले ही हैं न! मात्र संयोगों से ही उत्पन्न होते हैं।

एक ही तरह के संयोग, एक को पसंद आते हैं और दूसरे को पसंद नहीं आते। प्रत्येक संयोग का ऐसा है। एक को पसंद आते हैं और दूसरे को पसंद नहीं आते। जो अच्छा लगे वह जमा किया, उसका कब वियोग होगा, इसका क्या ठिकाना? फिर ऐसा है कि एक संयोग आता है और दूसरा आता है, फिर तीसरा आता है। लेकिन एक आया उसका वियोग हुए बगैर दूसरा संयोग नहीं आता।

संयोग दो तरह के, मनचाहे और अनचाहे। प्रिय-अप्रिय। अप्रिय संयोग, अधर्म का फल, पाप का फल है और प्रिय संयोग, धर्म का, पुण्य का फल है और स्वधर्म का फल मोक्ष है।

संयोग मात्र दुःखदायी हैं, फिर चाहे पसंदीदा हों या नापसंद हों। मन चाहे का वियोग होना भी दुःख और अनचाहे का संयोग होना भी दुःख, और नियम से दोनों का ही संयोग-वियोग, वियोग-संयोग होता ही है।

भगवान ने कहा है कि सुसंयोग हैं और कुसंयोग हैं। जबकि कुसंयोग को लोग ऐसा कहते हैं कि इसकी बुद्धि बिगड़ी है। सिपाही आकर पकड़ ले जाए, वह कुसंयोग और सत्संग में जाने को मिले, वह सुसंयोग। इस जगत् में संयोग यानी *पूरण* और वियोग यानी कि *गलन,* इसके सिवा और कुछ है ही नहीं।

वियोग करना जितना मुश्किल है, उतना ही मुश्किल संयोग करना है।

स्वाद हमेशा संयोग आने से पहले आता है। जब तक जमाराशि होती है, तब तक स्वाद आता है। जब से जमाराशि खर्च होना शुरू होती है, तब से स्वाद कम होता जाता है। 'यात्रा रविवार को जानेवाली है,' पता चले तब सभी को अनूठा स्वाद आता है, लेकिन रविवार साढ़े सात बजे जब गाड़ी चलेगी, तब से जमा राशि खर्च होने लगेगी और फिर खत्म हो जाएगी।

संयोग जब से आता है, तब से ही वह वियोग की ओर जाने लगता है और वियोग आता है, तब से संयोग का आना शुरू हो जाता है। एक का एविडन्स आ मिले, उसका वियोग होने पर दूसरे के एविडन्स मिलना शुरू हो जाते हैं।

जगत् के संयोग सार निकालने के लिए हैं, एक्सपीरियेन्स (अनुभव) करने के लिए है, किन्तु लोग विषम परिस्थिति में फँस गए हैं। शादी करके ढूँढते हैं कि सुख किसमें है? पत्नी में है?

बच्चे में है? ससुर में है? सास में है? किसमें सुख है, उसका सार निकाल न! लोगों को द्वेष होता है, तिरस्कार होता है किन्तु सार नहीं निकालते हैं। इस संसार के रिश्ते रिलेटिव संबंध हैं, रियल नहीं हैं। सिर्फ सार निकालने के लिए हैं रिश्ते! सार निकालनेवाले लोगों में राग-द्वेष कम होते हैं और वह मोक्ष मार्ग का शोधक बनता है।

मनुष्यदेह के अलावा और कोई देह ऐसी नहीं है, कि जो मोक्ष की अधिकारी हो। मनुष्यदेह मिले और मोक्ष के संयोग मिलें, साधन मिलें, तो काम हो जाए।

जब शुद्ध संयोग मिलें तभी मोक्ष होता है। ज्ञानीपुरुष का सत्संग ही एकमात्र शुद्ध संयोग है। क्योंकि ज्ञानीपुरुष के लिए क्या लिखा गया है?

'शुद्धात्मा मूळ उपादानी, अहं ममतना अपादानी।
मूळ निमित्त शुद्ध संयोगी, छोड़ाव्यो भव संसारे,
वंदु कृपाळु ज्ञानी ने...'

शुद्धात्मा मूल उपादानी, अहम् ममत के अपादानी।
मूल निमित्त शुद्ध संयोगी, छुड़वाया भव संसार से,
वंदन कृपालु ज्ञानी को...

ज्ञानीपुरुष ही एक ऐसा संयोग हैं, मूल निमित्त है कि जो 'शुद्धात्मा' का उपादान करवाते हैं और अहंकार और ममता का, 'मैं' और 'मेरा' का अपादान करवाते हैं। दूसरे शब्दों में 'शुद्धात्मा' ग्रहण करवाते हैं और अहंकार और ममता का त्याग करवाते हैं। इसलिए उन्हें 'मूल निमित्त' और मोक्ष प्राप्ति के एकमात्र 'शुद्ध संयोगी' कहा गया है।

जबकि आत्मा और संयोगों का तो ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध है। आत्मा को तो सबसे संयोग संबध मात्र ही है। 'शुद्धात्मा' खुद असंयोगी है और उसके अलावा, सभी संयोग संबंध है। संयोग-

वियोग तो ज्ञेय हैं और 'तू खुद' ज्ञाता है, लेकिन ज्ञाता ज्ञेयाकार हो जाता है, इसीलिए तो अनंत जन्मों से भटका है। पाँच करण से जो दिखता है, अनुभव में आता हैं, वे स्थूल संयोग और अंत:करण के सूक्ष्म संयोग और वाणी के संयोग, उन सारे संयोगों के साथ आत्मा का मात्र 'संयोग संबंध' है, सगाई (रिश्ते का) संबंध नहीं है। ज्ञाता-ज्ञेय का, 'संयोग संबंध' मात्र है। यदि ज्ञाता-ज्ञेय के 'संयोग संबंध' मात्र में ही रहें, तो वह अबंध ही है।

जबकि लोग तो संयोगों के साथ 'शादी संबंध' की कल्पना कर बैठे हैं, इससे ऐसा फँसाव खड़ा हुआ कि बाहर निकल ही नहीं सके न!

आत्मा बिल्कुल निराला है। संयोगों को हर तरह से देख सके, जान सके ऐसा है, लेकिन संयोगों में एकाकार हो जाओ और उनसे शादी कर बैठो, तो फिर क्या हो सकता है।

सारे ही संयोग पौद्‌गलिक हैं, अनात्मा के हैं। गधा मिले, तो पौद्‌गलिक नहीं कहलाता क्योंकि अंदर अनात्मा और आत्मा का संयोग साथ मिला हुआ है। वास्तव में उसमें आत्मा एकाकार नहीं हुआ है, लेकिन भ्रांति से आपको ऐसा दिखाई दे, तो वह भयंकर भूल है।

सभी संयोग ऑटोमेटिक ही आ मिलते हैं और ज्ञान भी उससे ऑटोमेटिक विभाविक हुआ है। बाकी, द्रव्य नहीं बदला, गुण नहीं बदले, मात्र पर्याय बदले हैं। दर्शन-ज्ञान पर्याय विभाविक हो गए हैं।

एक लेबोरेटरी में बैठा साइन्टिस्ट प्रयोग के सारे साधन लेकर बैठा हुआ हो और प्रयोग करते समय कहीं अचानक किसी एकाध साधन में से गैस लीक हो जाए और उस आदमी का दम घुटने लगे और बेहोश हो जाए, तब वह सबकुछ भूल जाता है, संपूर्ण रूप से भान गवाँ देता है। लेकिन बाद में जैसे-जैसे होश में

आता जाता है, वैसे-वैसे उसका प्रकाश बढ़ता है और उसे और अधिक समझ में आता जाता है। शुरू में ऐसा समझता है कि सब मेरे ही हाथों में है। मेरी ही सत्ता में है। फिर जैसे-जैसे भान आता है वैसे-वैसे समझ में आता है कि यह तो भगवान की सत्ता में है, मेरे हाथ में नहीं। जब और अधिक भान में आता है, तब ऐसा लगता है कि यह सब तो भ्रांति स्वरूप है। भगवान की सत्ता में भी नहीं और अंत में जब संपूर्ण भान में आए, तब संयोग ही कर्ता हैं, ऐसा भान होता है और तभी उसे संयोगों से मुक्ति का सुख बरतता है। ऐसे समझ में ही परिवर्तन होता रहता है। प्रयोगकर्ता यदि संयोगों में संयोगी बन जाए, एकाकार हो जाए, तो वह भयंकर अभानावस्था कहलाती है। और जब संयोग अलग और 'मैं' अलग, ऐसा भान हो जाए तब मुक्ति का आस्वाद मिलता है।

अनेकों संयोग खड़े होते हैं। उनमें फिर तन्मयाकार हों, तो नये बीज पड़ते हैं। फिर हल कैसे आए? उनके ज्ञाता-दृष्टा रह सकें, तो फिर नये बीज नहीं पड़ते। अनंत संयोग हैं, लेकिन वे सभी उगने लायक नहीं रहे उसका अर्थ मोक्ष।

प्रत्येक मनुष्य संयोगों से बंधा है। हमारे महात्मा संयोगों से घिरे हैं और वे संयोग मात्र के ज्ञाता-दृष्टा हैं। संयोगों में फँसा, बंधा, तो शक्ति कुंठित हो जाती है। जबकि ज्ञानी को संयोग आते और जाते हैं, लेकिन ज्ञानी उनसे हाथ मिलाने नहीं ठहरते। हम तो दूर से ही देख लेते हैं, इसलिए संयोगों का वियोग हो जाता है। आत्मा स्व-पर प्रकाशक है इसलिए, उसमें संयोग केवल झलकते ही हैं। मात्र, प्रकाश प्राप्त हो चुका होना चाहिए।

संयोग होता है, वह चेतन नहीं है। असंयोगी ही 'हमारा' द्रव्य है। किसी के लिए अच्छे भाव हों या खराब भाव हों, वे मात्र संयोग ही हैं, वे हमारे नहीं होते। संयोग सदा नहीं रहते। जो आएँ और जाएँ वह स्वरूप नहीं होता। जो हमारा स्वरूप

नहीं हो, उसे हमारा कैसे मानें? वे तो हमारे पड़ोसी आते हैं और जाते हैं, वैसे ही ये संयोग हैं। नासमझ तो, खुद को विचार आते हैं, उसमें यदि अच्छे विचार आएँ, किसी का भला करने का विचार आया, तो उसे आत्मा कहता है, लेकिन वह आत्मा नहीं होता। आपको चाहे कैसा भी भाव होता है, लेकिन वह 'मेरा नहीं है' इतना ही जानने की ज़रूरत है। स्वामित्वभाव किसी भी संयोग के लिए नहीं होना चाहिए। चाहे वह शुभ विचार हो या अशुभ विचार हो। हम स्पष्ट शब्दों में संसार को बता देते हैं, जैसा है वैसा कि स्थूल संयोग, सूक्ष्म संयोग, वाणी के संयोग पर हैं और पराधीन है।

आत्मा और संयोग दो ही हैं। कार्य-अकार्य संयोगाधीन हैं, पराधीन हैं, स्वाधीन नहीं हैं। स्वाधीन होते, तो अप्रिय संयोगों को कोई पास भी फटकने नहीं देता और प्रिय संयोगों का कोई वियोग ही होने नहीं देता, फिर तो कोई मोक्ष में जा ही नहीं सकता था।

'जो कुछ टेम्परेरी है, संयोग-वियोग है, वह 'मेरा' नहीं है।' ऐसा जो जाने, वह 'ज्ञान'। सारे ही पर्यायों का शुद्ध होना, अनंत ज्ञान कहलाता है। सूक्ष्म संयोग तो, जब उस ज्ञान के शुद्ध पर्याय उत्पन्न होते हैं, तब ही झलकते हैं और जिसके सभी पर्याय शुद्ध हो जाएँ, वह अनंतज्ञानी! परमात्मा स्वरूप!

'संयोग ही कर्ता हैं' ऐसा, यदि ज्ञान न हो, फिर भी अहंकार से भी मानें, तो बहुत बड़ा पुण्य बंधन होता है। उच्च श्रेणी के देवता बनते हैं। यह तो, कुछ करें और उल्टा हो, तो कहते हैं कि संयोगाधीन करना पड़ा और वही उल्टा किया हुआ यदि फेवर में जाए, तो कहते हैं कि वह तो ऐसा ही करने योग्य था। बस, इतना बोले कि हस्ताक्षर हो गए और ज़िम्मेदारी आ गई। हमारे महात्माओं की तो रोंग बिलीफ उड़ गई है। उनके सभी संयोग वही के वही, प्रकृति वही की वही, ससुर-जमाई,

बीवी-बच्चे आदि सब वही के वही, फिर भी कैसा ग़ज़ब का सुख बरतता है उन्हें!

संयोग, जिसका कि वियोग होनेवाला है उससे डरना क्या?

'हमारे' तो बुढ़ापा नहीं, मरण नहीं, जन्म नहीं, केवल संयोग आते और जाते हैं। ज्ञानीपुरुष के लिए तो मरण और भोजन दोनों संयोग जैसे ही होते हैं। केवल संयोग ही होते हैं।

प्राप्त संयोगों के अलावा संसार में कोई चीज़ नहीं है। 'प्राप्त संयोगों' का सुमेल सहित समता भाव से *निकाल* करो।' यह ग़ज़ब का वाक्य निकला है। इस एक ही वाक्य में जगत् के तमाम शास्त्रों का ज्ञान सार रूप से समा गया है। प्राप्त संयोगों के हम ज्ञाता-दृष्टा हैं, अप्राप्त के नहीं।

ग्यारह बजे कोर्ट में जाना हो और ग्यारह बजे भोजन की थाली आई, तो उस समय, वह संयोग प्राप्त हुआ, ऐसा कहलाता है। सुमेल रखते हुए पहले उसे समभाव से *निकाल* करना पड़ेगा। इसलिए शांति से भोजन कर लेना। दो हाथों से थोड़े ही खाया जाता है? शांति से भोजन करना मतलब, चित्त उस समय कोर्ट में नहीं जाना चाहिए। पहले शांति से भोजन करना और फिर आराम से कोर्ट जाना। लोग क्या करते हैं कि प्राप्त संयोग को भोग ही नहीं सकते और अप्राप्त के पीछे अधीर होकर पड़ जाते हैं। अतः दोनों को गँवा देते हैं। मुए, भोजन प्राप्त हुआ है, सुमेल सहित उसे भोग, तभी *निकाल* होगा। कोर्ट तो अभी दूर है, अप्राप्त है, उसके पीछे क्यों पड़ा है? संयोगानुसार काम निपटा लेना। ज्ञानीपुरुष का संयोग मिले, तब काम नहीं निकालें, तो बात खत्म हो गई न? फिर कोई आशा ही नहीं रही न? ऐसी सच्ची और सरल समझदारीवाली बात कौन बताता है? यह तो आत्मानुभवी का ही काम है।

सारे जगत् के तमाम जीवों के लिए ये 'ज्ञानी-पुरुष', एक उत्तम निमित्त का संयोग हैं।

'वैसे भवि सहज गुण होवे, उत्तम निमित्त संयोगी रे।'

अल्प काल में मोक्ष जानेवालों को सहज ही उत्तम निमित्त आ मिलता है। मोक्ष अति सुलभ है, लेकिन मोक्षदाता का संयोग होना अति अति दुर्लभ है। उसकी दुर्लभता अवर्णनीय है।

जीव सभी योनियों में भटक-भटककर आया है, कहीं भी सच्चा सुख नहीं मिला। वहाँ अहंकार की गर्जनाएँ और विलाप ही किया है। छूटने की इच्छा है, लेकिन मार्ग नहीं मिल पाता। मार्ग मिलना अति-अति दुर्लभ है। यह 'ज्ञानीपुरुष' का संयोग आ मिलना ही मुश्किल है। सभी संयोग जमा होकर बिखर जानेवाले हैं, लेकिन ज्ञानीपुरुष के संयोग से 'सदा की ठंडक' प्राप्त होती है। अब तो काम निकाल लेना है, ज्ञानीपुरुष के पास पड़े रहना है, ऐसी भावना से पराक्रम उत्पन्न होता है। उसके बाद चाहे कैसे भी संयोग आएँ, फिर भी पराक्रम से पार उतरा जा सकता है।

प्राकृत संयोग

यह आपको जो कुछ मिलता है, वह आपकी प्रकृति के हिसाब से ही मिलता है। प्रकृति के अनुसार ही हर चीज़ मिल जाती है। कालीमिर्चवाले को कालीमिर्च और इलाईचीवाले को इलाईची मिल जाती है, बैंगनवाले को बैंगन और चाय पीनेवाले को, उसे चाय मिल जाती है और यदि सौंठवाली चाय प्रकृति में रही, तो सौंठवाली चाय भी उसे मिल जाती है। लेकिन जो क्रोध-मान-माया-लोभ हैं, वे दखल करते हैं। लोभ संग्रह करना सिखाता है। ऊपर से, उसके लिए कपट करते हैं और भयंकर दख़ल कर बैठते हैं। लेकिन किसी प्रकार का दख़ल ज़रूरी नहीं है। प्रकृति के अनुसार, अंदर की डिमान्ड के अनुसार, सबकुछ आपको मिले ऐसा है। इन लोगों को विचार आता है कि कल सूर्यनारायण नहीं निकले, तो क्या होगा? मुए, ये सभी तेरे लिए

हैं, तुझे भोगना आना चाहिए। ये सूर्य, चंद्र, तारे, हवा, पानी सबकुछ तेरे लिए ही है।

प्रकृति के अनुसार दस दिन के लिए हिल स्टेशन जाना हुआ हो, तो मन में होता है कि दस दिन और रहने को मिलता, तो अच्छा होता और अन्यत्र दो दिन भी ज़्यादा ठहरना पसंद नहीं आता। यह जो खाते हैं, पीते हैं, वह सबकुछ प्रकृति के अनुसार मिलता है। हाँ, जितना लोभ हो, उतना शायद न भी मिले। यह जो त्याग करते हैं, उपवास करते हैं, वह भी प्रकृति के अनुसार ही होता है, लेकिन अहंकार करता है कि मैंने किया। त्याग हुआ, वह भी प्रकृति के अनुसार और त्याग नहीं हुआ, वह भी प्रकृति के अनुसार।

बड़ौदा में एक सेठ थे। उनकी पत्नी बहुत किच-किच किया करती थी। घर में पाँच-छः बच्चे, खातापीता घर था, लेकिन पत्नी बहुत तेज़ थी। इसलिए सेठ तंग आ गए थे। उन्होंने सोचा, ''इससे तो साधु बन जाना अच्छा है, लोग 'बापजी, बापजी' तो करेंगे कम से कम।'' अतः सेठ तो चुपचाप भाग खड़े हुए और साधु बन गए। लेकिन पत्नी बड़ी होशियार निकली, सेठ को खोज निकाला उसने तो और ठेठ दिल्ली के उपाश्रय में अचानक जा पहुँची, जहाँ वे रहते थे। वहाँ महाराज का व्याख्यान चल रहा था। सेठ भी सिर मुँडवाकर साधुवेष में बैठे थे। सेठानी ने तो वहीं पर सेठ को डाँटना शरू कर दिया, 'अरे, आपने मेरे साथ यह कैसा व्यापार शुरू किया है? घर पर छः बच्चे मेरे सिर पर डालकर कायरों की तरह क्यों भाग खड़े हुए? उनकी पढ़ाई, शादी कौन करवाएगा? उसने तो सेठ का हाथ पकड़ा और लगी घसीटने। सेठ समझ गए कि ज़्यादा खींचा-तानी करूँगा तो नाहक बदनामी होगी। उन्होंने कहा, 'ज़रा ठहर! कपड़े तो बदल लेने दे!' इस पर सेठानी बोली, 'नहीं, अब आपको ऐसे खिसकने नहीं दूँगी, इन्हीं कपड़ों में घर चलिए। घर से भागते हुए शरम नहीं आई थी?' उपाश्रय

के महाराज भी समझ गऐ और इशारे से जाने को समझाया। सेठानी तो उसी वेष में सेठ को घर ले आई वापस। प्रकृति में त्याग नहीं था, इसलिए सेठ को वापस लौटना पड़ा।

एक महाराज बहुत वृद्ध हो गए थे। घूमना-फिरना बंद हो गया। कोई चाकरी करनेवाला नहीं था। इसलिए महाराज को घर याद आया। बेचारे जैसे-तैसे करके किसी की मदद से घर पहुँचे। आखिरी समय में बीवी-बच्चे चाकरी करेंगे, इसी आशा से तो न! लेकिन बीवी-बच्चों ने घर में रखने से साफ इनकार कर दिया। प्रकृति में त्याग था, तो वही सामने आया उनके।

ऐसा विचित्र है प्रकृति का कामकाज़। लेकिन प्रकृति है क्या? यदि वह कोई चीज़ होती, तो हम उसका नाम गंगाबहन रखते। लेकिन नहीं, प्रकृति यानी 'सरकमस्टेन्शियल एविडन्स' यह तो प्रकृति नचाती है वैसे नाचता है और कहता है, 'मैं नाचा, मैंने त्याग किया' प्रकृति में त्याग हो, तभी हो पाता है। वर्ना बीवी आकर उठा ले जाती है अंत में!

प्रकृति का अंत आए, ऐसा नहीं है। यदि खुद पुरुष बन जाए, तो प्रकृति, प्रकृति का काम करे और पुरुष, पुरुष के भाग में रहे। पुरुष अर्थात् परमात्मा। जब तक परमात्मा नहीं बना, तब तक प्रकृति नचाए वैसे नाचता है।

सभी ग्रंथों ने पुरुष का, आत्मा का ज्ञान जानने को कहा, लेकिन प्रकृति को जानने का किसी ने नहीं कहा। अरे! पर-कृति जान तब आत्मा को जान सकेगा। यदि तेल और पानी एक हो गए हों, तो पानी को जान और अलग कर। तब तू तेल को जान सकेगा। इसलिए हम कहते हैं कि प्रकृति-ज्ञान को जानो। चंचल भाग जो-जो है, वह सारा ही प्रकृति भाग है, उसे तू जान। चंचल भाग में क्या-क्या आता है? पाँच इन्द्रियाँ। आँखें, नहीं देखना हो फिर भी देख लेती हैं। बांद्रा की खाड़ी आए, तब नाक, नहीं सूंघना हो, फिर भी सूंघ लेता है। देह चंचल

किस प्रकार है? सामने से मोटर टकराने आए, तो फट से एक ओर हो जाती है। उस समय मन-बन कुछ नहीं करता। मन चंचल, चित्त चंचल, इसलिए बैठे हैं यहाँ, और चित्त स्टेशन जा पहुँचता है। बुद्धि भी चंचल। कोई कहे 'वहाँ नहीं देखना चाहिए।' तो भी बुद्धि झट से दिखा देती है। और यदि कोई ऐसा कहे कि चंदूभाई आइए, तो छाती फूल जाती है, वह अहंकार की चंचलता। इसलिए चंचल भाग को पूर्ण रूप से जान लिया, तो शेष रहा अचंचल भाग, वही आत्मा। दया, मान, अहंकार, शोक-हर्ष, सुख-दु:ख ये सब द्वंद्व गुण हैं। वे सब प्रकृति के ही गुण हैं। प्रकृति धर्म है। प्रकृति अर्थात् चंचल विभाग, एक्टिव विभाग और आत्मा पुरुष, जो अचंचल है। यदि पुरुष को जानें, तो आत्मज्ञान होता है और तभी परमात्मा हो सकते हैं।

योग-एकाग्रता

एक इंजिनीयर मेरे पास आए थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'दादाजी, मुझे मोक्ष का साधन चाहिए।' मैंने उनसे पूछा, 'आज तक आपने कौन सा साधन किया है?' उसने कहा, 'मैं एकाग्रता करता हूँ।' मैंने उनसे कहा, 'जो व्यग्रता का रोगी हो, वह उस पर एकाग्रता की दवाई लगाता है।' एकाग्रता कौन करेगा? जिसे व्यग्रता का रोग है, वह। इन मज़दूरों को एकाग्रता क्यों नहीं करनी पड़ती? क्योंकि उन्हें व्यग्रता नहीं है, इसलिए। हम ज्ञानीपुरुष भी एकाग्रता नहीं करते। हमें व्यग्रता नाम मात्र की भी नहीं होती। यह तो अगन होती है, उस पर ठंडक के लिए दवाई लगाते हैं, उसमें आत्मा पर क्या उपकार किया आपने? एक भी चिंता कम हुई? भाई ब्रिलियन्ट थे, इसलिए उसने कहा, 'दादाजी, मेरी बुद्धि फ्रेक्चर हो गई है। आपने जो कहा वह मुझे एकदम एक्सेप्ट हो गया है, वह रोग ही निकल गया मेरा तो।'

लेकिन कुछ रह गया, इसलिए फिर वापस मुझसे कहा, 'दादाजी, लेकिन मैं रोज़ाना चार घंटे योग साधना करता हूँ न?'

मैंने पूछा, 'किसकी योग साधना करते हो? जाने हुए की या अनजाने की?' आत्मा को तो जाना नहीं है, देह को ही जाना है। अतः देह को जानकर देह की साधना की। किसी अनजाने आदमी के चेहरे का ध्यान किया जा सकता है? नहीं कर सकते। जो आत्मा से अनजान है, वह आत्मा का ध्यान कैसे कर सकता है? यह किया, वह तो देह साधना हुई, उसमें आत्मा के ऊपर क्या उपकार किया? आत्मयोग उत्पन्न होगा, तभी मोक्ष होगा। देहयोग से तो संसार फल मिलता है। ये हमारे महात्मा, सभी आत्मयोगी हैं और हम आत्मयोगेश्वर हैं।

योग अर्थात् टु जोइन, युज धातु पर से बना है। जाने हुए का ही योग होता है। देह का योग, वाणी का योग, तो कोई मन का भी योग करता है। ऐसे योग से भौतिक शक्ति बढ़ती है, लेकिन मोक्ष नहीं होता है। आत्मयोग से ही मोक्ष होता है।

इस संसार में मनोयोगी होते हैं, बुद्धियोगी हैं, उल्टी-सुल्टी बुद्धिवाले, कितने ही सम्यक् बुद्धि तो कितने विपरीत बुद्धिवाले होते हैं। देहयोगी-तपस्वी और वचनयोगी-वकील आदि तरह-तरह के योगी पड़े हैं। आत्मयोग वही एक सच्चा योग है, बाकी सब अयोग हैं। आत्मयोग में बैठे हों, तभी मन फाइलें दिखाएगा, तब उसे कहना कि चला जा! वर्ना तेरा अपमान करूँगा, अभी मत आना, बाद में आना। जब आत्मयोग के ध्यान में रहने से अनुभूति होती है और वह अनुभूति कभी नहीं जाती। स्वरूप के भान के अलावा जो-जो जानते हो वह अज्ञान है। स्वरूप के ज्ञान के बाद जो-जो जानते हो, वही जाना हुआ कहलाता है। आत्मयोग हुआ, वही स्वरूप का भान कहलाता है। ज्ञानयोग ही सिद्धांत है। त्रियोग (मन-वचन-काया का योग), वह असिद्धांत है।

निर्विकल्प समाधि

योगमार्ग की समाधि में मन-वचन-काया की जलन हो, तब

योग से देह की शांति अनुभव होती है, लेकिन 'मुक्ति सुख' का अनुभव नहीं होता। वह सुख तो आत्मयोगी ही अनुभव कर सकते हैं।

समाधि किसे कहते हैं? कष्ट उठाकर प्राप्त की गई देहयोग की समाधि यानी जितनी देर तक हैन्डल घुमाया, उतनी देर ठंडक लगती है। शाश्वत ठंडक तो निर्विकल्प समाधि उत्पन्न होने पर ही मिलती है। निर्विकल्प समाधि यानी सहज समाधि। उठते-बैठते, खाते-पीते, अरे! लड़ते-झगड़ते भी समाधि नहीं जाती। ऐसी समाधि उत्पन्न हो, तभी मोक्ष प्राप्त होता है।

विकल्पी कभी भी निर्विकल्पी नहीं बन सकता। वह तो, जो खुद नैचुरली निर्विकल्पी बन गए हैं, वही दूसरे को निर्विकल्प पद दे सकते हैं। देह और आत्मा दोनों बिल्कुल अलग-अलग ही रहें, कभी तन्मयाकार नहीं हों, फिर भले ही कोई भी अवस्था हो, वह कहलाती है निर्विकल्प समाधि।

जब संकल्प-विकल्प बंद हो जाएँ, तब आत्मा निर्विकल्पी बनता है। निर्विकल्प का ज्ञान लिए बगैर, निर्विकल्पी नहीं बन सकता। ऐसे कुछ योगी हैं कि जो सभी संकल्प-विकल्प निकाल देते हैं और एक ही संकल्प-विकल्प पर पहुँचते हैं और वह 'मैं हूँ' ही होता है, लाइट (ज्ञान प्रकाश) नहीं होता। उच्च दशा हो जाती है, तेज आता है, लेकिन ज्ञान नहीं होता। वस्तु का (आत्मा का) अपना स्वगुण होता है, स्वधर्म होता है, स्वअवस्था होती है। भगवान अलख निरंजन हैं। यह ज्ञानीपुरुष के लक्ष्य में आता है। ध्येय जब तक नहीं जानते, तब तक ध्येय स्वरूप नहीं बन सकते। हज़ारों उल्कापात हों, फिर भी सहज समाधि नहीं जाती। धारणा तो कल्पित होती है। इनडाइरेक्ट प्रकाश, वह रिलेटिव आत्मा है। रियल आत्मा सतत रहा ही करता है। उसमें केवल ज्ञाता-दृष्टापन ही रहता है। हर तरह से मन का समाधान रहे, उसका नाम ज्ञान। पाँचों इन्द्रियाँ जागृत हों और समाधि रहे, वही सच्ची समाधि है।

प्रत्येक अवस्था में अनासक्त योग, वही पूर्ण समाधि।

नाक दबाकर तो कहीं समाधि होती होगी? किसी छोटे बच्चे की नाक दबाकर देखिए, तुरंत काट लेगा। उससे तो दम घुट जाता है। जब आधि, व्याधि और *उपाधि* नहीं हों, उसे समाधि कहते हैं। जब आखिर में जाने का समय हो जाए (मृत्यु समय), तब 'खुद का' सारा ही भाग सिकोड़ लेता है और उसकी समाधि में ही रहता है। हमारे सम्यक् दृष्टिवाले महात्माओं का समाधि मरण होता है। 'शुद्धात्मा' के लक्ष्य के साथ ही देह छूटती है।

प्रश्नकर्ता : वृत्ति स्थिर नहीं रहने का कारण क्या है?

दादाश्री : क्या आप खुद स्थिर बैठ सकते हो? फिर वृत्ति कैसे स्थिर रह सकती है? वृत्तियाँ स्थिर करने के अनेक साधन हैं, लेकिन मुश्किलें भी अनेक हैं। त्रिविध ताप में भी समाधि रह सके, ऐसा है।

ध्याता-ध्येय-ध्यान

प्रश्नकर्ता : दादाजी, ध्यान ठीक से नहीं हो पाता हो, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ध्यान में तो मैं आपको अभी बिठा दूँ, लेकिन उसके बाद अनंत सीढ़ियाँ तो बाकी रहीं! तो ऐसे ध्यान का क्या करना है? मैं आपको सीधे मोक्ष में ही बिठा दूँगा। आना! हमें तो रियल ध्यान ही पूरा माँग लेना है, रिलेटिव ध्यान क्यों माँगें? वह तो अधूरा ध्यान है।

प्रश्नकर्ता : वह तो बहुत मुश्किल है न?

दादाश्री : देनेवाला मैं हूँ न, फिर काहे की मुश्किल? एक मंत्री की पहचान से सारे काम होते हैं, तो ज्ञानीपुरुष की 'पहचान' से क्या नहीं हो सकता? हम पक्षपात नहीं करते, वीतराग होते हैं। सच्चा हो, और हमसे आ मिले, तो उसे ज्ञान देते हैं।

आप यह ध्यान करते हो, लेकिन किसका ध्यान? ध्येय क्या? ध्याता कौन? ध्येय को बिना पहचाने, निश्चित किए बगैर, किसका ध्यान करना? ध्यान तो साधन है, ध्येय स्वरूप का और ध्याता 'शुद्धात्मा' है, तभी वह ध्यान फलदायी होता है। बाकी, 'मैं चंदूभाई' और उसे ध्याता मानकर अपनी कल्पना का ध्येय निश्चित करके, अपनी ही कल्पना से जो समझ में आए वह ध्यान करे, तो उसका क्या फायदा? ऐसे कैसे काम बनेगा? जब हम आपको ज्ञान प्रदान करते हैं, तब आपको रियल ध्याता बनाकर, आपके स्वरूप में बिठा देते हैं। ध्येय, ध्यान और ध्याता एक रूप हो जाते हैं। स्वरूप, स्वरूप में ही रहे, तभी मोक्ष बरतता है। बाकी यह तो आप ध्यान करने बैठे हों और निश्चय किया हो कि आज ध्यान करते समय फलाँ इन्कमटैक्स अथवा विषय का विचार नहीं आए तो अच्छा। लेकिन वहीं पर पहले अनचाहे विचारों का ही धमाका होता है! उसे ध्यान किस प्रकार रहेगा?

एक सेठ ध्यान में बैठे थे। बाहर कोई उन्हें पूछता हुआ आया कि सेठ जी कहाँ गए हैं? सेठानी ने कहा, 'हरिजनवास में।' सेठ मन ही मन पत्नी के चरणों में झुक गए। वास्तव में सेठ के ध्यान में उस समय विषय ही थे।

यदि यह ध्यान यथार्थ रूप से किया जाए, तो उसमें ग़ज़ब की शक्ति है। ध्यान की परिभाषा समझो। जब ध्येय निश्चित हो जाए, तभी ध्याता कहलाता है। ध्याता और ध्येय को जो जोइन्ट करता है, वह ध्यान है। एक घंटा यदि हुक्के को देखकर, फिर ध्येय निश्चित करके कहें कि यह हुक्का मुझे चाहिए, फिर चाहे वह किसी भी दुकान में क्यों न हो। हुक्का चाहिए ऐसा ध्येय पक्का करके आप पचास मिनट उसका सतत ध्यान करो, तो एक सेकन्ड के लिए भी ध्यान ब्रेक नहीं होना चाहिए। पचास मिनट आप कन्टिन्युअस उसका ध्यान लगाओ, तो पचासवें मिनट में वह हुक्का आपके हाथों में होगा। कहाँ से आएगा? वह मत सोचना।

ध्यान की इतनी ग़ज़ब की शक्ति है। यदि पद्धति अनुसार ध्यान करें, तो ध्येय का साक्षात्कार अवश्य होना ही चाहिए। लेकिन यह तो तरीका ही गलत होगा, तो जवाब किस तरह आएगा? ध्यान से तो परमात्मा की भी प्राप्ति हो सकती है, ऐसा है। ध्यान में ग़ज़ब की शक्ति है। लेकिन ध्यान जब समझ में आ जाए तब काम होगा। ये 'दादा', कभी नहीं हुआ हो, ऐसा भगवान का पद आपको पचास मिनट में देते हैं, तो और क्या नहीं मिल सकता?

यदि आठ मिनट तक भी ध्यान रह पाए, तो वह जमा होते-होते पचास मिनट का हो जाता है। आठ मिनट का ध्यान जमा होता है, सात मिनट का नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : 'खुद' के (शुद्धात्मा के) गुणधर्म अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, उनका ध्यान करें, तो क्या वे प्राप्त होंगे?

दादाश्री : होंगे, अवश्य होंगे। आत्मा के जितने गुण जानें और उतनों का ध्यान करें, तो उतने गुणधर्म प्राप्त होते हैं।

भगवान, नाम है या विशेषण?

प्रश्नकर्ता : नाम।

दादाश्री : यदि नाम होता, तो हमें उन्हें 'भगवानदास'! कहना पड़ता। भगवान शब्द तो विशेषण है। जैसे भाग्य पर से भाग्यवान विशेषण बना है, वैसे भगवत् शब्द से भगवान बना है। जो कोई भगवान के गुण प्राप्त करता है, उसे यह विशेषण लागू होता है। हमें सभी भगवान कहते हैं, लेकिन 'हमारा पद' निर्विशेष अनुपमेय है। उसे कौन सा विशेषण देंगे? क्या इस देह को दोगे? वह तो खत्म हो जानेवाला है। अंदर जो प्रकट हो चुके हैं, वही परमात्मा हैं। ग़ज़ब का प्रकाश हो गया है!

शुद्ध ज्ञान ही परमात्मा है। 'आत्मा' वह भी शब्द रखा गया है, वह संज्ञासूचक शब्द है। 'ज्ञान' ही परमात्मा है। ज्ञान सबकुछ

चलाता है, लेकिन शुद्ध ज्ञान के दर्शन होने चाहिए। शुद्ध ज्ञान से मोक्ष है। सद्ज्ञान रखेगा, तो सुख मिलेगा, विपरीत ज्ञान रखेगा, तो दुःख मिलेगा। कोई बाप भी *ऊपरी* नहीं है। भगवान कौन कहलाता है? जो इस दुनिया में स्वतंत्र हुआ है और जिसका कोई मालिक नहीं है, वह भगवान। कोई *ऊपरी* भी नहीं है और कोई अन्डरहैन्ड भी नहीं है, लेकिन खुद की 'परवशता' ही समझ में नहीं आई है, वहाँ स्वतंत्रता कैसे समझ में आएगी? संसार तो परवशता का संग्रहस्थान है और परवशता वही दुःख है। यह तो लोग खुद, अपने आप से ही गुप्त रहे हैं। जितने विचार आते हैं, उतने संसार में मार्ग हैं। तुझे जो अनुकूल आए, उस मार्ग पर भटकता रह और जब थक जाए, तो 'इस' मोक्ष के रास्ते पर आ जाना। जब तुझे स्वतंत्र होना हो तब आना। संसार गलत नहीं है, जगत् गलत नहीं है, जगत् में कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन तेरी समझ गलत है। जगत् में प्रतिक्षण भय है, प्रतिक्षण परवशता ही है, इसी कारण आपको निरंतर डर रहा करता है।

कितनों ने तो 'यम और यमदूत' के नाम से लोगों को डरा दिया है। यमराज, यमराज ही तो! फिर लोगों ने तो तरह-तरह के यमराज के चित्र बनाए। भैंसे बनाए, बड़े-बड़े दाँतवाला राक्षसी रूप चित्रित किया और लोगों को डरा दिया। अरे! यमराज नाम का कोई जानवर नहीं है। वह तो नियमराज हैं। नियमराज ही सबकुछ चलाते हैं। नियमराज ही जीवित रखते हैं और नियमराज ही मारते हैं। यदि ऐसी सच्ची समझ मिल जाए, तो फिर रहेगा क्या किसी प्रकार का भय या डर?

किसी ने कहा हो कि जिस जंगल के रास्ते पर तुझे जाना है, वहाँ बाघ-सिंह नहीं हैं। लेकिन साथ-साथ इतना कहना भूल गया कि एक जगह पर बाघ-सिंह हैं, लेकिन वे पिंजरे में हैं। बस, इतना ही बताना रह गया और वह तो जंगल के रास्ते चल पड़ा। वहाँ एक ही बाघ दहाड़े तो उसके छक्के छूट जाते हैं

और वापस भाग आएगा। यदि उसे पहले से बता दिया होता कि बाघ-सिंह हैं, लेकिन पिंजरे में हैं, तो उसे डर नहीं लगता। अत: ऐसे अधूरे ज्ञान से हल कैसे निकलेगा? बतानेवाले के अधूरे ज्ञान से वह डरकर भाग गया।

गुरु किल्ली

भगवान ने कहा था कि गुरु बनना मत और बनो, तो गुरु किल्ली साथ रखना, वर्ना कैफ़ चढ़ जाएगा, तो डूबेगा। भगवान किसी के गुरु नहीं थे और आज ये सभी जगह-जगह गुरु बन बैठे हैं। घर पर दो बच्चे और बीवी रूपी, तीन ही घंट छोड़कर यहाँ दो सौ-पाँच सौ शिष्यों के घंट गले में लटकाए हुए हैं। मुए! डूब मरेगा। गुरु अर्थात् भारी। भारी खुद तो डूबता ही है, लेकिन साथ में दूसरों को भी डुबोता है। हम लघुत्तम हैं। हम तो डूबते नहीं हैं और किसी को डुबोते भी नहीं हैं। 'हम' हलके फूल जैसे होते हैं। हम तर गए हैं और सबको तारते हैं, क्योंकि हम तरण तारण हैं। खुद तर गए और दूसरे अनेकों को तारने का सामर्थ्य रखते हैं।

भगवान ने भी कहा था कि गुरुपद जोखिमवाला पद है, ऐसा लक्ष्य में रखकर गुरु बनना, वर्ना मारा जाएगा। यदि गुरु बनना हो, तो ज्ञानीपुरुष से गुरु किल्ली ले जाने पर ही काम होगा, नहीं तो भारी कैफ चढ़े ऐसा पद है। गुरुपद तो रिस्पोन्सिबिलिटी है।

लोगों के गुरु बन बैठे थे, ऐसे पाँच-छ: गुरु एकबार मेरे पास आए और मुझसे पूछने लगे, 'क्या लोगों को गुरु नहीं चाहिए?' मैंने बताया, सच्चे गुरु हों तो काम के! बाकी, गुरु अर्थात् भारी और भारी तो खुद डूबें और दूसरों को डुबोएँ। मैं तो लघुत्तम पुरुष हूँ, गुरुत्तम पुरुष हूँ। मैं कच्चा नहीं हूँ कि लोगों का गुरु बन बैठूँ। यदि तू गुरु बन बैठा है, तो समझना कि तू लघु

है। अगर लघुता के भान के बिना गुरु बनेगा, तो डूबेगा और डुबोएगा।

अगमज्ञान तो, सभी के लक्ष्य के बाहर ही गया है। कभी भी गम नहीं पड़े, वह अगम। हमने आपको अगम का ज्ञान दिया है। निगम का ज्ञान तो लोगों को होता है, लेकिन अगम का नहीं होता। गुरुगम शब्द है, लेकिन गुरु खुद ही उत्तर को दक्षिण समझें, तो क्या होगा?

शुष्कज्ञान अर्थात् जो परिणमित नहीं होता, वह। पेड़ पर फूल लगते हैं, लेकिन फल नहीं आते। उसी तरह आज जगह-जगह शुष्कज्ञान घर कर गया है। काल की विचित्रता है यह!

'अक्रम ज्ञान' - 'क्रमिक ज्ञान'

'क्रमिक मार्ग' में, रिलेटिव धर्म की भाषा में, व्यवहार-निश्चय का जो विभाजन करने में आया है, वह समझ से ठीक है, लेकिन अक्रम मार्ग की, रियल धर्म की ज्ञानभाषा में तो निश्चय व्यवहार है, अर्थात् निश्चय यथार्थ प्रकट हो, उसके बाद ही यथार्थ व्यवहार की शुरूआत हुई, ऐसा माना जाता है। ऐसे निश्चय-व्यवहार संबंध में ही, यथार्थ निश्चय से यथार्थ व्यवहार होता है और इसलिए चाहे कोई भी जाति हो, वेष हो, श्रेणी हो या फिर चाहे किसी भी प्रकार की अवस्था हो, लेकिन उस प्रत्येक अवसर पर, संयोगों में संपूर्ण, समाधानकारी ज्ञान जागृति रहती है अर्थात् असमाधान मात्र से विराम पाना संभव होता है। तात्पर्य यह कि व्यवहार यथार्थ तभी कह सकते हैं जब यथार्थ निश्चय प्रकट हुआ हो। सर्व अवस्थाओं में सर्व समाधान रहे ऐसा 'ज्ञान' है यह।

चौरासी लाख योनियाँ - चार गति की भटकन क्यों?

आत्मा खुद पुद्गल को ऊर्ध्वगामी खींचता है। जब पुद्गल का बोझ बढ़ता है, तब पुद्गल आत्मा को अधोगति में ले जाता है। इसलिए अभी कलियुग में तो धर्म ऐसा देना चाहिए कि 'भैया,

हिंसा चोरी आदि के भाव हों, तो उन्हें मिटा देना ताकि अधोगति नहीं हो। पाशवी और राक्षसी विचारों को मिटा देना। यदि ऐसा करोगे, तो आत्मा का तो स्वभाव ही है ऊर्ध्वगामी होना।'

इससे गति सीधी होगी। पूरे दिन पाशवता और राक्षसी विचार करते ही रहते हैं, इसलिए पूरा दिन आत्मा पर आवरण का लेप चढ़ाते ही रहते हैं। अपने लाभ के अवसर की ताक में ही रहा करते हैं, यही पाशवता है।

जैसे टेप की आवाज़ मिटाई जा सकती है, वैसे ही अंदर भी मिटाया जा सके ऐसा है। ग्यारह बजे भोजन से पहले जो विचार आया, उसके प्रकट होने से पहले उसे मिटाया जा सकता है। हम यही कहते हैं कि भाई! उसे मिटा देना।

'ज्ञान ही आत्मा है।' जैसा-जैसा जिसका ज्ञान होता है, वैसा उसका आत्मा होता है। विपरीत ज्ञान हुआ, तो विपरीत आत्मा होता है। जिस ज्ञान पर श्रद्धा होती है, वैसा वह हो जाता है। श्रद्धा बैठी, तो श्रद्धा को मदद करनेवाला ज्ञान मिल जाता है और ज्ञान तथा श्रद्धा एक हों, तो चारित्र ऐसा ही हो जाता है। आत्मा वैसा ही हो जाता है। कोई सास अपनी बहू को पागल कहे, लेकिन जब तक बहू को इसमें श्रद्धा नहीं बैठती, तब तक उस पर कोई इफेक्ट (असर) नहीं होता है। चाहे सारी दुनिया उसे पागल ही क्यों न कहे, तब भी उस पर सायकोलोजिकल इफेक्ट नहीं होती है। लेकिन यदि उसकी श्रद्धा बदली, तो वह सचमुच पागल हो जाएगी। इसलिए इस दुनिया में कभी किसी का दबाव मत पड़ने देना अपने पर!

जिनके जैसी प्रतिष्ठा तूने की तेरा प्रतिष्ठित आत्मा वैसा ही बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : श्रद्धा और ज्ञान में क्या अंतर है?

दादाश्री : श्रद्धा अन्‌डिसाइडेड ज्ञान है। 'ज्ञान' डिसाइडेड

ज्ञान है, मतलब 'अनुभववाला ज्ञान' है। बगीचे में बैठे हों और कुछ आवाज़ हो, और मैं कहूँ कि कुछ है, आप भी कहें कि कुछ है, यह कौन सा ज्ञान? उसका नाम 'श्रद्धा' अथवा 'दर्शन'। फिर सब खड़े होकर पता लगाते हैं। हाथ फेरकर सब तय करते हैं कि यह तो गाय है वह ज्ञान कहलाता है। बिलीफ यानी दर्शन में कभी रोंग (गलत) भी हो सकता है। सामान्य रूप से जानना, वह 'दर्शन' कहलाता है और विशेष रूप से जानना, वह 'ज्ञान' कहलाता है।

जेबकतरे को जेब काटना कैसे आ जाता है? पहले श्रद्धा उत्पन्न होती है और फिर ज्ञान मिलता है, चारित्र अपने आप ही आ जाता है।

ज्ञान-दर्शन का फल क्रियामान। लोग उसे चारित्र कहते हैं। सम्यक् अर्थात् यथार्थ, रियल। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन से सम्यक् चारित्र उत्पन्न होता है। जिसमें रियल चारित्र है, वह संपूर्ण भगवान! रियल चारित्र से किसी को भी दुःख नहीं पहुँचता।

बर्ताव, बिलीफ (मान्यता) और ज्ञान एक दूसरे पर आधारित (डिपेन्डेन्ट) हैं। जैसी बिलीफ होगी, वैसा ज्ञान मिलता है और बर्ताव भी वैसा ही हो जाता है। बर्ताव करना नहीं पड़ता।

क्रिया, आत्मा नहीं है। आत्मा के अपने गुणधर्म हैं। लेकिन आत्मा की सक्रियता नहीं है। जैसी-जैसी कल्पना, वैसा-वैसा अनुभव होता है। दुःख-सुख कोई चीज़ नहीं है, कल्पना है। आत्मा की इतनी बड़ी शक्ति है, लेकिन खुद निर्लेप है। आत्मा की उपस्थिति से अन्य सभी की सक्रियता दिखती है।

भगवान क्या कहते हैं कि जो सारी क्रियाएँ की गई हैं, उनका फल आएगा। जिस क्रिया का फल नहीं आता, वैसी क्रिया से मोक्ष! परम विनय से मोक्ष, उसके अलावा सब जंजाल है, और उसका अंत नहीं आता है। गुफा में होगा, तो गुफा का

जंजाल और संसार में होता है, तो संसार का जंजाल, इस प्रकार जहाँ होगा, वहाँ का जंजाल आ घुसेगा।

लोग कहते हैं कि क्रिया कीजिए, लेकिन बिना ज्ञान के क्रिया कैसी? क्रिया तो ज्ञान की दासी है। भगवान ने कहा ज्ञानक्रिया करो, 'ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष।'

'ज्ञानक्रिया' अर्थात् क्या? खुद के स्वरूप में ही रहना और जानना। दर्शन क्रिया में देखना और ज्ञानक्रिया में जानना। देखना और जानना, यही आत्मा की क्रिया है। जबकि आत्मा के अलावा अन्य किसी तत्व में ज्ञान-दर्शन-क्रिया नहीं होती है। अन्य सभी क्रियाएँ होती हैं।

दादाश्री : आत्मा देह से अलग ही होता होगा न?

प्रश्नकर्ता : अलग ही है।

दादाश्री : तो जो यह देह तू चलाता है, वह किसी की मदद से चलता है क्या? यह तो 'व्यवस्थित' शक्ति की मदद से सब चलता है। यह सब करती है, वह 'व्यवस्थित' शक्ति करती है। उसमें आत्मा कुछ भी करता नहीं है। वह तो केवल देखता है और जानता है।

जो जानता है, वह करता नहीं है और जो करता है, वह जानता नहीं है। जो करनेवाला होता है, वह जाननेवाला नहीं होता और जो जाननेवाला होता है, वह करनेवाला नहीं होता। इस इंजन से पूछें, तो वह कहेगा कि नहीं भैया मैं कुछ नहीं जानता। यह इलैक्ट्रिक बल्ब लाइट देता है, लेकिन वह जानता नहीं है।

समुद्र में से नाव आपको किनारे पर लाई या आप नाव को लाए? नाव लाई। करनेवाली है नाव, लेकिन वह खुद नहीं जानती। इसी प्रकार 'जाननेवाली' और 'करनेवाली' दोनों धाराएँ अलग होती हैं। लेकिन यदि 'जो करे वह जाने' कहा, तो दोनों

धाराएँ जो अलग बह रही थीं, वे एक हो जाती हैं और इसी कारण स्वाद भी बेस्वाद कढ़ी जैसा लगता है न? कर्ताधारा और ज्ञाताधारा दोनों अलग ही हैं।

जो करता है, वह जानता नहीं और जो जानता है, वह करता नहीं। क्योंकि कर्तापन में एविडन्स चाहिए, जबकि ज्ञातापन में एविडन्स की ज़रूरत नहीं होती। कुछ भी करना पड़े, उसमें सांयोगिक प्रमाण चाहिए, यों ही नहीं होता।

प्रज्ञा

प्रज्ञा आत्मा का डायरेक्ट प्रकाश है, जबकि बुद्धि इनडायरेक्ट प्रकाश है। मिडियम थ्रु आनेवाला प्रकाश है।

केवलज्ञान स्वरूप के अंश स्वरूप को हम प्रज्ञा कहते हैं। प्रज्ञा ज्ञान पर्याय है। जैसे-जैसे आवरण हटते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रकाश बढ़ता जाता है और उतना ही अंशतः केवलज्ञान बढ़ता जाता है। संपूर्ण केवलज्ञान तो ३६० अंश पूरे हो जाएँ, तब होता है।

जैसे एक मटके में हज़ार वॉट का बल्ब लगाया हो और मटके का मुँह बंद कर दिया हो, तो प्रकाश मिलेगा क्या? नहीं मिलेगा। ऐसा इस मूढ़ात्मा का है। भीतर तो अनंत ज्ञान प्रकाश है, लेकिन आवृत होने से घोर अंधकार है। ज्ञानीपुरुष की कृपा से, उनकी सिद्धि के बल से, मटके में यदि ज़रा सा छेद हो जाए, तो पूरे कमरे में प्रकाश हो जाता है। उतना आवरण टूट जाता है और उतना डायरेक्ट प्रकाश प्राप्त होता है। ज्यों-ज्यों आवरण टूटते जाते हैं, ज्यों-ज्यों अधिक छेद होते जाते हैं, त्यों-त्यों प्रकाश बढ़ता जाता है। और जब पूरा मटका टूट जाता है और बल्ब अनावृत हो जाता है तब संपूर्ण प्रकाश चारों और फैल जाता है। जगमगाहट हो जाती है।

यह जो डायरेक्ट ज्ञानकिरण फूटती है, वही प्रज्ञा कहलाती है। जब सारे आवरणों से आत्मा मुक्त हो जाता है, तब उसे

सारे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की शक्ति प्राप्त होती है। सारे ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है। दूसरे शब्दों में सारे ब्रह्मांड के ज्ञेयों को देखने जानने की जो शक्ति प्राप्त होती है, वही केवलज्ञान कहलाता है।

आत्मा की खुद की सारे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की जो शक्ति है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

इस प्रज्ञा का फंक्शन क्या है? कार्य क्या है? प्रज्ञा तो 'पति ही परमेश्वर' ऐसा माननेवाली वफादार पत्नी का कार्य करती है। आत्मा के संपूर्ण हित को ही दिखलाती है और अहित को छुड़वाती है। जितने-जितने बाह्य संयोग आएँ, उनका समभाव से *निकाल* कर देती है और फिर अपने स्वरूप के ध्यान में बैठ जाती है। अतः अंदर का कार्य भी करती है और बाहर का भी कार्य करती है, इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट की तरह। और वह भी तभी तक, जब तक कि फुल्ली इन्डिपेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट स्थापित नहीं हो जाती।

प्रज्ञा क्या है? आत्मा से जो पराया है, उसे कभी भी अपना नहीं बनने देती और जो खुद का है, उसे पराया नहीं मानने देती, वही प्रज्ञा। प्रज्ञा तो आत्मा का ही अंग है और वह निरंतर आत्मा को मुक्ति दिलाने का कार्य करती है। जैसे-जैसे प्रज्ञा खिलती जाती है, वैसे-वैसे बर्ताव में बदलाव आता जाता है। जब बर्ताव बदलता है, तब भार कम लगता है। 'स्वयं का' और 'पराया', इस प्रकार होम डिपार्टमेन्ट और फॉरेन डिपार्टमेन्ट दोनों को अलग ही रखती है, वही प्रज्ञा है, वही आत्मा है, वही चारित्र है। बर्ताव ही चारित्र। बर्ताव अर्थात् वह कि 'स्व' और 'पर' को एकाकार नहीं होने दे।

हम जब ज्ञान देते हैं, तब सीधी अनुभूति ही हो जाती है, उसे परमार्थ समकित कहते हैं। इससे आपको उसी समय प्रज्ञा भाव उत्पन्न हो जाता है। सारा संसार जो चल रहा है, वह सब चंचल भाग है, जबकि प्रज्ञाभाव वह स्थायी रह सके, ऐसा भाव

है। जब प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है, तब सीढ़ियाँ नहीं चढ़नी पड़तीं, लेकिन सीधे ही ऊपर पहुँच जाते हैं। प्रज्ञा के अलावा सारे भाव जो हैं, वे भावाभाव माने जाते हैं और वे सभी चंचल भाग में आते हैं। प्रज्ञाभाव को आत्मभाव नहीं कह सकते। प्रज्ञाभाव अचंचल भाग में आता है। प्रज्ञा का कार्य केवलज्ञान होते ही समाप्त हो जाता है। इसलिए उसे आत्मभाव कहा ही नहीं जा सकता। क्योंकि यदि ऐसा कहें, तो वह आत्मा का अन्वय गुण कहलाएगा और अन्वय गुण कहें, तो फिर सिद्धक्षेत्र में विराजमान सिद्ध भगवंतों में भी प्रज्ञा होनी चाहिए, लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ कोई कार्य ही नहीं होता। फुल्ली इन्डिपेन्डेन्ट गवर्नमेन्ट की स्थापना होने के बाद इन्ट्रिम गवर्नमेन्ट अपने आप ही विसर्जित हो जाती है। ऐसा ही प्रज्ञा के लिए है।

हम 'स्वरूपज्ञान' देते हैं, तब प्रज्ञा बैठा देते हैं, फिर वह प्रज्ञा आपको प्रतिक्षण सावधान किया करती है। भरत राजा को तो चौबीसों घंटे (आत्मा में रहने के लिए), खुद को सावधान करने के लिए नौकर रखने पड़ते थे। लेकिन यहाँ तो, चाहे कैसा भी विकट संयोग आए तब हमारा ज्ञान हाज़िर हो जाता है, हमारी वाणी हाज़िर हो जाती है, हम स्वयं हाज़िर हो जाते हैं। और आप जागृति में आ जाते हैं। प्रतिक्षण जागृत रखे, ऐसा हमारा यह 'अक्रम ज्ञान' है। यहाँ काम निकाल लेने जैसा है। यदि एक बार तार जुड़ गया हो, तो सदा के लिए हल निकल आएगा। समस्या सदा के लिए सुलझ जाए, ऐसा है।

इस शरीर में दो विभाग हैं, एक चंचल विभाग और दूसरा अचंचल विभाग। अचल जो है, वह आत्मा है। आप अपने व्यापार में जितना ध्यान रखते हो, उतनी यदि आत्मा में हो, तो काम की। सभी विषयों में गहराई में उतर सकते हैं, लेकिन इसमें कैसे उतरें? यह तो निर्विषय ज्ञान कहलाता है, लेकिन निर्लेप और निर्विकारी।

हम ज़्यादा मिलावटवाला, हलका सोना लेकर सुनार के पास जाएँ, तब भी वह हमसे नाराज नहीं होता है। वह तो केवल सोने को ही देखता है। लोगों का तो मिलावट करने का ही स्वभाव है, फिर भी, सुनार तो सोने को ही देखता है। ये डॉक्टर तो चिढ़ते हैं कि शरीर का क्यों ख्याल नहीं रखते? लेकिन सुनार नहीं चिढ़ता। ज्ञानीपुरुष भी सुनार की तरह आत्मा को ही देखते हैं, बाहर का माल नहीं देखते। सोने की अवस्थाएँ, बदलती रहती हैं, मिलावट होती है, पिघलाएँ तो द्रव बन जाता है, पाउडर हो जाता है और उसमें से फिर शुद्ध सोना हो जाता है। ऐसे अवस्थाएँ भले बदलती रहें, लेकिन सोना आखिर सोना ही रहता है। सुनार का सोने में जैसा लक्ष्य रहता है, वैसे ही आपको आत्मा का लक्ष्य रहे, तब काम होगा। सुनार सोने में ही लक्ष्य रखता है। बाहर से चाहे कैसा भी मिलावटी दिखाई दे, लेकिन लक्ष्य तो सौ प्रतिशत के सोने में ही रहता है, उसी तरह ज्ञानीपुरुष चेतन में ही लक्ष्य रखते हैं।

कोई व्यक्ति शास्त्र पढ़े, धारण करे, लेकिन समझ तो उसकी अपनी ही है न? लोग अपनी भाषा में समझे हैं। बात सच है जीवाजीव तत्व की, लेकिन लोग खुद की भाषा में समझे हैं। अजीव, तो ना जाने किसको मानते हैं? और जब अजीव ही समझ में नहीं आता, तो जीव तो समझ में आएगा ही कैसे? भगवान हाज़िर थे, तब भी आत्मा का लक्ष्य बैठा नहीं था। लक्ष्य बैठता है, लेकिन वह शब्दब्रह्म का लक्ष्य बैठता है और उसे तो भूल सकते हैं या चूक भी सकते हैं। पढ़े गए वर्णन के शब्दब्रह्म और देखे गए ब्रह्म की बात में बड़ा अंतर है। जिसका वर्णन पढ़ा है, ऐसे खेत का लक्ष्य याद रहे या नहीं भी रहे, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से देखे हुए खेत का लक्ष्य हटता नहीं हैं, उसे भूलते नहीं। यह तो जो शुद्धब्रह्म को देखा है, उसका आनंद रहता है हमारे महात्माओं को।

यदि देह रूपी संयोग ही नहीं मिला होता, तो समसरण मार्ग ही नहीं होता। यह तो पुद्गल के संयोग से बिलीफ ही बदली है और इसलिए ही यह तृतियम् जंतु उत्पन्न हो गए हैं और इसलिए ही अनंत शक्तियाँ आवृत हो गई हैं। जंतु जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं, जब उसी प्रकार विसर्जित हो जाएँगे, तभी आत्मा स्वतंत्र होगा। ज्ञानीपुरुष तो समसरण मार्ग का अंत है। वे तो चरम निमित्त हैं, मुक्ति के! धर्म प्राप्ति के लिए!

'जेणे आप्युं भान निज, तेने आत्म अभिनंदन,
रणके घंट-घंटडीओ, जय सच्चिदानंद।'

जिसने दिया भान निज, उन्हें आत्म अभिनंदन,
बाजे घंटे घंटियाँ, जय सच्चिदानंद।

जय सच्चिदानंद

प्राप्तिस्थान

दादा भगवान परिवार

अडालज :	त्रिमंदिर संकुल, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद- कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, E-mail : info@dadabhagwan.org
अहमदाबाद :	दादा दर्शन, ५, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408
राजकोट :	त्रिमंदिर, अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9274111393
मोरबी :	त्रिमंदिर, मोरबी-नवलखी हाईवे, पो- जेपुर, ता-मोरबी, जि.-राजकोट. फोन : (02822) 297097
भुज :	त्रिमंदिर, हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123
गोधरा :	त्रिमंदिर, भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300
वडोदरा :	दादा मंदिर, १७, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335

मुंबई	: 9323528901	**दिल्ली**	: 9810098564
कोलकता	: 033-32933885	**चेन्नई**	: 9380159957
जयपुर	: 9351408285	**भोपाल**	: 9425024405
इन्दौर	: 9893545351	**जबलपुर**	: 9425160428
रायपुर	: 9329523737	**भिलाई**	: 9827481336
पटना	: 9431015601	**अमरावती**	: 9422915064
बेंगलूर	: 9590979099	**हैदराबाद**	: 9989877786
पूना	: 9422660497	**जलंधर**	: 9814063043

U.S.A. : **Dada Bhagwan Vignan Institute** :
100, SW Redbud Lane, Topeka, Kansas 66606
Tel. : +1 877-505-DADA (3232) ,
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. :	+44 330 111 DADA (3232)	**UAE :**	+971 557316937
Kenya :	+254 722 722 063	**Singapore :**	+65 81129229
Australia :	+61 421127947	**New Zealand:**	+64 21 0376434

Website : www.dadabhagwan.org

ज्ञान स्थापना युगों-युगों तक, आप्तवाणी द्वारा!

जगत् के बारे में 'जैसा है वैसा', सभी स्पष्ट हुआ है। सभी स्पष्ट हो जाने दो। जितनी वाणी निकल जाए, उतनी एक बार निकल जाने दो। लोग पूछते जाएँगे और नये-नये स्पष्टीकरण निकलते जाएँगे। रोज़ाना निकलते हैं। वह सभी छप जाएगा, तब फिर बाद में लोग उसमें से सारा निष्कर्ष निकालकर ज्ञान का स्थापन करेंगे। अत: आप्तवाणियों में तो आत्मा का अनुभव कहा गया है। इनमें सब कुछ आ जाता है।

मैं जो बोलता हूँ, उसमें से एक शब्द भी 'इन्होंने' गँवाया नहीं है। सारे शब्द टेपरिकॉर्डर में संग्रह करके रखे हैं और यह तो विज्ञान है न! इस दुनिया में जितने भी शास्त्र हैं, जो पुस्तकें हैं, वे सारे ज्ञानमय हैं, यह अकेला विज्ञानमय है। विज्ञान अर्थात् इटसेल्फ (स्वयं) क्रियाकारी! शीघ्र फल देनेवाला है, तुरंत ही मोक्ष देता है!

– दादाश्री

दादा भगवानना असीम जय जयकार हो

ISBN 978-81-89933-50-0

Rs. 40/-